हार्दिक शुभकामनाओं सहित

राजस्थान चैम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री व स्वि
एजेन्सी फॉर डेवलपमेन्ट एण्ड कोआपरेशन द्वारा संचालि

राजस्थान औद्योगिक विकास व व्यापार सूचना केन्द्र द्वारा प्रदत सुविधायें

आयात-निर्यात सूचना सेवायें, व्यापारिक प्रदर्शनियां,
व्यापारिक सम्मेलन, सेमीनार आयोजन
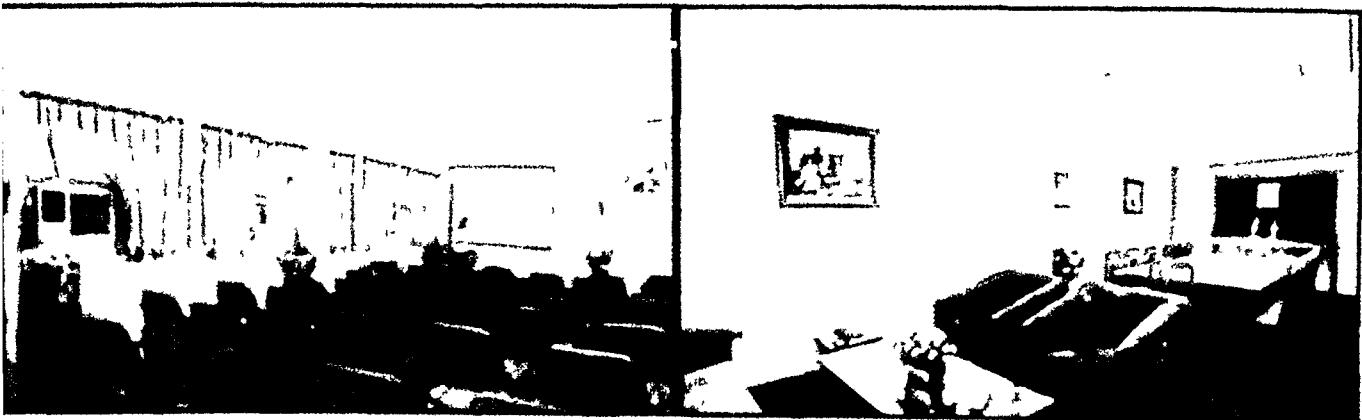
बोर्ड मीटिंग, साक्षात्कार आयोजन,
सूचना- संचार सेवाएँ

सभी कार्यालयी सुविधाएँ, वातानुकूलित
सभागार, कैटरिंग सेवाएँ

चैम्बर भवन, एम. आई. रोड, जयपुर

फोन : 562561, 562189, फैक्स : 562610
ई-मेल : info@rajchamber.com
website : www.rajchamber.com

मालपुरा तीर्थ पर ता 1-12-1989 से ता 20-1-1990 तक
टोंक निवासी श्रेष्ठिवय श्री सोभागमल जी लोढ़ा द्वारा आयोजित
महामंगलकारी उपधान तप की पावन स्मृति मे प्रकाशित

सानिध्य

प पू गुरुदेव गणिवर्य श्री मणिप्रभसागर जी म सा

निर्देशन

पू मुनि श्री मुक्तिप्रभसागर जी म सा

प्रेरणा

पू साध्वी श्री शशिप्रभा श्री जी म

सयोजन

सुनील कुमार लोढ़ा, टोंक

आवरण फोटो मुद्रण
मणिधारी ऑफसेट प्रेस
दिल्ली-6

मुद्रक
कलायन प्रिंटस
जयपुर-3

प्रकाशक

लोढ़ा उपधान स्मृति ग्रन्थ प्रकाशन समिति, मालपुरा

आवरण— दादा श्री जिनकुशलसूरि चरण, मालपुरा

लोढ़ा उपधान स्मृति ग्रन्थ

(वि. सं. २०४६)

□

संपादन

साध्वी सम्यक्दर्शना

समर्पण

जिनकी वात्सल्यमयी पावन निश्रा में

उपधान तपाराधन सानन्द

संपन्न हुआ उन

पूज्यपाद महामहिम गुरुदेव

गणिवर्य श्री

मणिप्रभसागर जी म. सा.

को

सादर........

—साध्वी सम्यक्दर्शना

दादा जिन कुशल सूरि सद्गुरुभ्यो नम

परमात्मने नमः

पू. प्रधान सा. अविचल श्री जी म

पू. साध्वी श्री म... र्शना श्री जी म

...ति श्री सोभागमल जी लोढ़ा

सौ. शान्तादेवी लोढा

पूज्य आचार्य श्री जिनकान्तिसागर सूरीश्वर
जी म.सा.
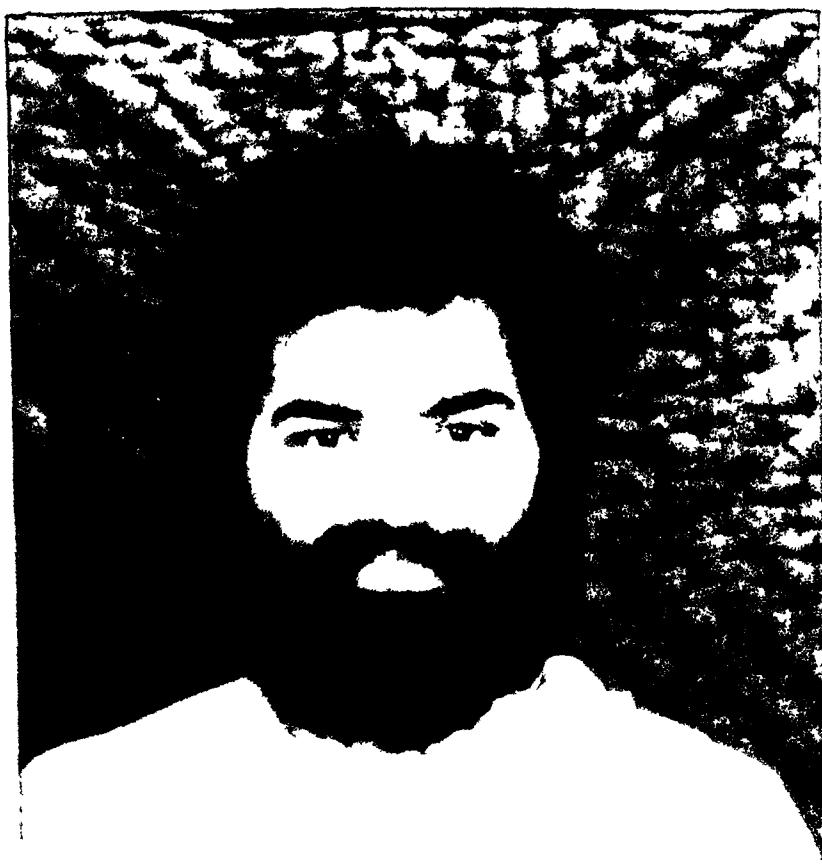
पूज्य गुरुदेव गणिवर्य श्री मणिप्रभसागर जी
म.सा.

प्रार्थना

जय बोलो कुशल सूरीश्वर की।
हितकारी कुशल गुरूवर की ॥

दादा भक्तो के रखवाले,
अति विकट विकट संकट टाले,
सुखशान्ति प्रदायक ईश्वर की ॥ जय बोलो० ॥

दुखियो के कष्ट सभी मिटते।
जो कुशल कुशल गुरू को रटते।
उपकारी दादा दुखहर की, जय बोलो० ॥

यह मालपुरा है चमत्कारी।
दादा की महिमा है भारी।
तमनाशक दादा दिनकर की, जय बोलो० ॥

हम दास तुम्हारे हैं दादा,
चरणो में आन पडे दादा,
विनती सुन लेना अन्तर की, जय बोलो० ॥

दिल मे गुरू नाम तुम्हारा है,
तेरा ही हमे सहारा है,
सुध लेना मणिप्रभसागर की, जय बोलो० ॥

— मणिप्रभसागर

मुनिमंडल
बाये से पू. मुनि श्री मनोज्ञसागरजी म., पू. गणि श्री मणिप्रभसागर जी म. पू. मुनि श्री मुक्ति प्रभसागरजी म. पू. मुनि श्री मनीषप्रभसागरजी म.।
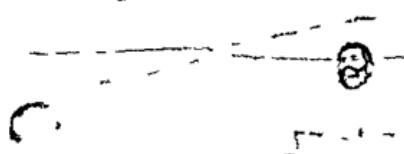
गणिवर्य श्री उपधान विधि का विश्लेषण करते हुए

पूज्य गणिवर्य श्री पू. साध्वी श्री सम्यक्दर्शना श्री जी म. को निर्देश देते हुए।
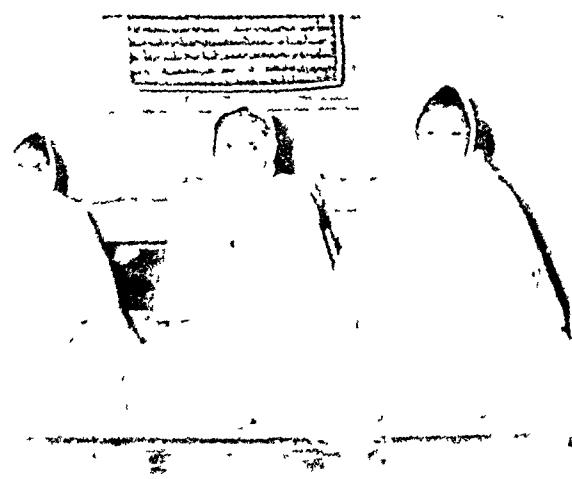
साध्वी मंडल जिनकी निश्रा में आराधना सम्पन्न हुई।

मंच पर पू. गणिवर्य श्री का उद्बोधन, उपधानपति श्री लोढ़ाजी व उनकी धर्मपत्नी मंच पर विराजे हैं।

धानपति श्री लोढ़ा जी के साथ वार्तालाप

उपधानपति श्री लोढ़ा जी के सुपुत्र [illegible]

ात्मा के समक्ष माल परिधान का विधान करते हुए आराधक गण।
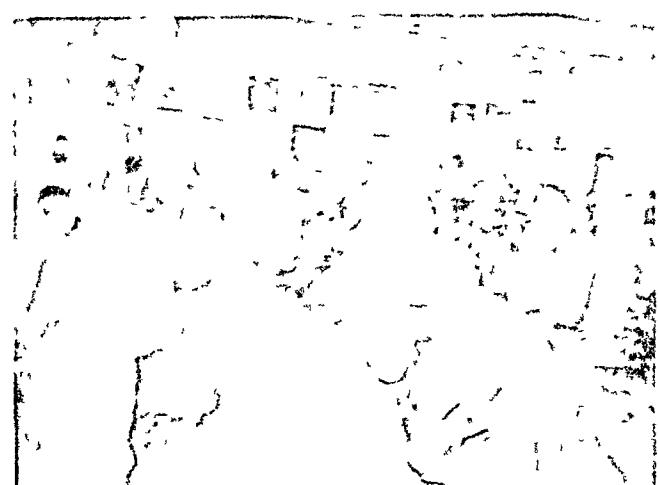
उपधान तप की सामूहिक क्रिया।

मोक्ष माला का भव्य वरघोड़ा.
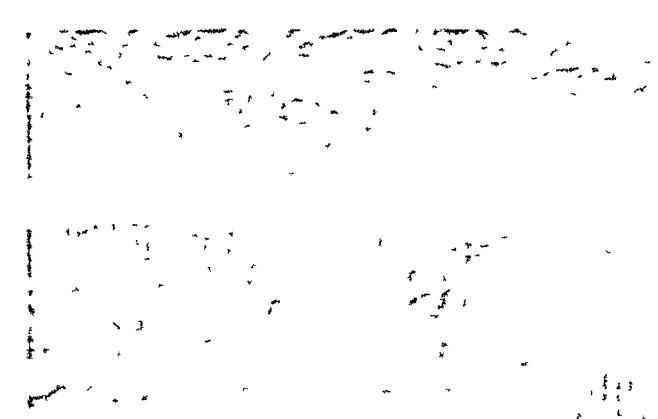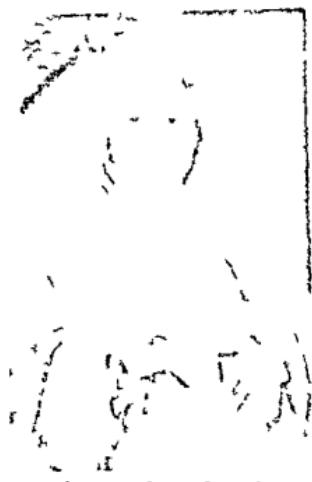
मोक्ष माला का भव्य वरघोड़ा.

मोक्ष माला का भव्य वरघोड़ा.

मोक्ष माला परिधान दिवस का दृश्य।

श्रीमति सुधा लोढा (पुत्रवधु)
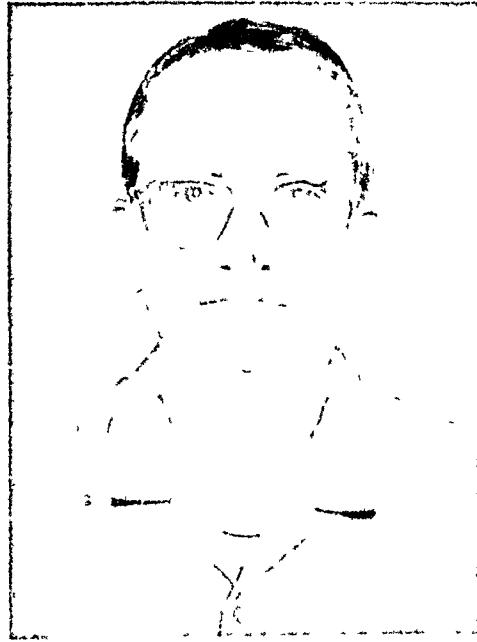
श्री देवराज जी छाजेड (दामाद)

श्रीमति महेन्द्री छाजेड (पुत्री)

श्री पारसमल जी राका (दामाद)

श्रीमति निर्मला राका (पुत्री)

श्री उम्मेदमल जी वैद (दामाद)

सम्पादकीय

अगणित समावनाओ को अपने भीतर समेट मानव जीवन की सार्थकता उन समावनाओ का साकार और मूर्त रूप देने मे ही है। अगर हम अपनी छुपी सपदा को प्रकट कर देते हैं तो हमारी यह मानवीय शरीर सम्बन्धी सारी उपलब्धिया कृतार्थ हो जाती है। मानव जीवन की सार्थकता भौतिक या बाह्य उपकरणो मे नही अपितु आध्यात्मिक वैभव की प्राप्ति मे है। हमने आज तक यही जाना और समझा है कि जिस समय मे व्यापारिक उपलब्धिया हो, पारिवारिक उपलब्धिया हो, सामाजिक उपलब्धियाँ हो, वह समय और वह पुरुषार्थ सार्थक ह अन्य सारा व्यय है।

हमे इस समीकरण को बदलना होगा। कि बाह्य उपलब्धियाँ ही सब कुछ हैं। दीर्घकाल से हम बाह्य पुद्गल और बाह्य उपकरणो की सगति मे रहने के कारण इन्ही को हमने "स्व" समझ लिया है जबकि यह नितात और झूठा भ्रम मात्र है। स्व तो कुछ दूसरा ही है। तब 'स्व' कौन है? क्या है? इस जिज्ञासा की उत्पत्ति और इसकी खोज ही हमारे जीवन की सार्थकता का स्रोत है।

अगर भीतर मे स्व खोज की जिज्ञासा और प्यास वह भी तीव्रतम पैदा हो गई तो निश्चित ही पुरुषार्थ भी हमारा इसी दिशा की ओर सक्रिय बनेगा। जब लक्ष्य के प्रति सपूर्णता सक्रियता से हम जुड जायेंगे तो मजिल हमसे दूर नही।

'स्व" से हम जुडें आत्मा के समीप हम पहुचें इसी लक्ष्य और इसी दृष्टिकोण से आत्मनिष्ठ श्रेष्ठिवर्य श्री सौभाग्यमल जी ने पू० गणिवर्य श्री के निर्देशन मे उपधान तप का आयोजन करवाया। आत्मरमण निमग्ना गुरुवर्या स्व० प्रवर्तिनी जी श्री सज्जन श्री जी म सा एव वर्तमान म हमारे मडल की सफल नेत्री वात्सल्यमयी श्री शशिप्रभा श्री जी म सा के आदेशानुसार बहिनो की क्रिया व्यवस्था हतु हमे भी मालपुरा उपधान म सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अनुकरणीय थी उपधान की व्यवस्था, अनुपम थी उपधान की व्याख्या और हृदयग्राही थी विधिविधान की शैली। मैं आज भी आनन्दित बन जाती हू उस आराधना की स्मृति मात्र से।

मेरे मानस मे एक भावना जगी कि इसे शब्दो का जामा पहनाऊँ। इससे दो फायदे होंगे – एक तो दूर-सुदूर के आत्म जिज्ञासु वृन्द इस सफल अनुष्ठान से अवगत होंगे और दूसरा आने वाली पीढी के लिए यह ऐतिहासिक दस्तावेज बनेगा।

मंगलकारी उपधान विधान जिनकी निश्रा में सम्पन्न हुआ

पावन सानिध्यता

परम पूज्य गुरुदेव, प्रज्ञापुरुष, युगप्रभावक स्व. आचार्य श्री जिनकान्तिसागर सूरीश्वर जी म. सा. के प्रधान शिष्य

- पूज्य गणिवर्य श्री गणिप्रभसागर जी म. सा.
- पूज्य मुनि श्री मनोज्ञसागर जी म.
- पूज्य मुनि श्री मुक्तिप्रभसागर जी म.
- पूज्य मुनि श्री सुयशप्रभसागर जी म.
- पूज्य मुनि श्री मनीषप्रभसागर जी म.

साध्वी मण्डल

पूजनीया आगमज्योति स्व. प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्री जी म. सा. की शिष्याएँ

- पूजनीया विदुषी साध्वी श्री प्रियदर्शना श्री जी म.
- पूजनीया विदुषी साध्वी श्री दिव्यदर्शना श्री जी म.
- पूजनीया विदुषी साध्वी श्री सम्यक्दर्शना श्री जी म.
- पूजनीया साध्वी श्री मुदितप्रज्ञा श्री जी म.
- पूजनीया साध्वी श्री सौम्यगुणा श्री जी म.
- पूजनीया साध्वी श्री कनकप्रभा श्री जी म.

कृतज्ञता - ज्ञापन

जिनेश्वर परमात्मा का दशन त्याग तप की मजबूत आधारशिला पर टिका है । तपश्चरण आत्मशुद्धि का अनन्य उपाय है । तप ही ऐसी आग है जो घोर कर्मों को भी ईंधन की तरह जलाकर भस्म कर देती है ।

पूज्य गुरुदेव, प्रतापुरुष, युगप्रभावक स्व० आचार्य श्री जिन कान्तिसागर सूरीश्वर जी म सा के प्रधान शिष्य पूज्य गणिवर्य श्री मणिप्रभ सागर जी म सा की पावन निश्रा मे मालपुरा तीर्थ पर महामंगलकारी उपधान तप सानन्द सम्पन्न हुआ ।

दादागुरुदेव श्री जिनकुशल सूरीश्वर जी म सा की साक्षात् छत्र छाँव मे सभी आराधको ने परम शाति का अनुभव किया । पूजनीय पिता जी श्री सौभागमल जी सा लोढा व माता जी सौ शान्ता देवी लोढा आयोजक होने के साथ-२ आराधक भी बने, यह हमारे परिवार के लिए परम सौभाग्य, मागल्य का विषय था । उपधान की पूर्ण सफलता के पीछे पूज्य गुरुदेव गणिवर्य श्री का ही निर्देशन कारण बना । उनके क्रिया कराने का ढग, उपधान वाहियो का नियन्त्रण कर विधि मार्ग मे प्रवृत्त करने का ढग, हर विधि का वैज्ञानिक/आध्यात्मिक पहलू व इस प्रकार प्रस्तुत करते थे कि हर आराधक रोम रोम मे आनन्द से भर उठता ।

मालपुरा तीर्थ की परम पावनी धरा पर उपधान तप का यह पहला आयोजन इतिहास का सुवर्ण पृष्ठ बन गया । इस पूरे क्षेत्र म यह आयोजन अनूठी याद युगो युगो तक याद दिलाता रहेगा । उपधान तपश्चरण के पूर्ण कायकाल मे पूजनीया प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म सा के आशीर्वाद व आदेश से पूजनीया साध्वी श्री दिव्यदर्शना श्री जी म पूज्यनीया विदुषी आर्या रत्न श्री सम्यक दर्शना श्री जी म सा, पूज्य साध्वी जी कनकप्रभा श्री जी म सा ने बाईयो के विधि विधान व क्रिया पूर्ण निर्देशन दिया ।

बीकानेर निवासी श्री चादरतन जी पारख व श्री वशीलाल जी बोथरा का आभार किस प्रकार अभिव्यक्त करूँ ? जिन्होंने पूज्य गुरुदेव श्री के आदेश को स्वीकार कर सारी व्यवस्था बडी जिम्मेदारी के साथ सभाली ।

साथ ही बीकानेर निवासी श्री पन्नालाल जी खजाची, श्री धनपतसिंह जी खजाची, श्री सूरजमल जी पुगलिया, श्री दिलीप बोथरा आदि का भी हार्दिक आभार प्रकट करता हू जिन्होंने समय-समय पर व्यवस्था सम्बन्धी निर्देश दिये, साथ ही माला महोत्सव की व्यवस्था सभाली ।

मैंने अपनी इस भावना को सर्वप्रथम सुनील जी के समक्ष प्रकट किया। वे तुरन्त सहमत हो गये परन्तु गणिवर्य श्री की सहमती सर्वप्रथम आवश्यक थी।

मैंने सोचा– गणिवर्य श्री को कहना तो होगा ही पर कहने का साहस तुरंत नही जुटा सकी। एक दिन स्वयं उन्होंने भांप ही लिया कि मुझे कुछ कहना है और साथ ही हल्की सी भनक भी उन्हे लग चुकी थी स्मारिका के बारे मे।

उन्होंने पूछा तो मैंने कह दिया। सुनकर वे मुस्कराये और मैं समझ गयी कि उस मुस्कान मे कुछ पुट उपहास का शामिल था परन्तु मेरी भावना कोई पानी मे उठते क्षणिक बुल-बुले की तरह तो थी नहीं जो तुरन्त समाप्त हो जाती। मुझे मेरी पथ प्रदर्शिका श्री शशिप्रभा जी म. सा. एवं अपनी बड़ी बहिन तुल्या, गुरुभगिनी श्री प्रियदर्शना श्री जी म. सा. के निर्देशन और सहयोग पर पूर्ण आस्था थी।

श्री प्रियदर्शना श्री जी म. सा. भी उपधान के अन्त तक पधार कर चुके थे। सम्पादन का कार्य त्वरित गति से बढ़ता रहा। स्थान-स्थान पर सुयोग्य लेखको से लेख भेजने हेतु पेम्पलेट भेजे गये। श्री सुनील जी विज्ञापन एकत्रित करने मे जुट गये। कार्य प्रगति पथ पर अग्रसर होता गया।

मुझे इस अनुभूति से परम अह्लाद हो रहा है कि मेरा यह प्रयास जो कि प्रथम है आज स्मारिका के रूप मे साकार हो रहा है।

प्रस्तुत स्मारिका लेख संग्रह, साज सज्जा आदि की दृष्टि से इतनी आकर्षक व नयनरम्य बन सके इसके लिए मैं सर्वप्रथम गणिवर्य श्री की आभारी हूं जिन्होने मेरे उत्साह को देखते हुए गंभीरता पूर्वक निर्देश देते हुए मेरा सम्पादन का पथ प्रशस्त किया।

साथ ही मैं अपनी स्वर्गीया गुरुवर्या श्री की कृपापूर्ण अमीदृष्टि के प्रति कृतज्ञ हूं जिनके दिव्याशीष की अनुभूति मैं प्रतिपल अपने अन्तर मे करती हूं।

मैं अपनी मातृरूपा, कुशल संचालिका श्री शशिप्रभा श्री जी म. सा. एवं मेरी प्रत्येक क्रिया की अनन्य सहयोगीनी कोकिल कंठी प्रियदर्शना श्री जी म. सा. के कृपा प्रसाद को आभार का जामा पहनाकर अवमूल्यन नही करना चाहती।

मुझे परम विश्वास है कि भविष्य में भी मुझे इसी प्रकार से इनका आशीर्वाद व कृपा प्रसाद मिलता रहेगा।

—साध्वी सम्यक्दर्शना

इस उपधान तप की विशिष्टताये

- मालपुरा के महान् तीर्थ पर पहला उपधान
- उपधान पति द्वारा सपत्नीक (मजोटे) उपधान की आराधना
- पूरी तपश्चर्या मे पूर्ण मौन का वातावरण
- सम्पूर्ण मौन के साथ एकासणा
- उपधान तप मे 15 पुरुषो व 75 महिलाओ द्वारा भव्य आराधना
- 35 दिनो का अखण्ड नवकार महामन्त्र का जाप
- पूज्य गणिवय श्री द्वारा जैन तत्व की विशिष्ट वाचना जिसमें पैंतीस बोलो का विवेचन हुआ।
- बारह व्रतो का पूर्ण विवेचन
- लगभग हर उपधानवाही द्वारा एक या एकाधिक व्रतो का ग्रहण
- भव आलोयणा का भव्य आयोजन
- पुद्गल वासिराने की विधि का सुन्दर सयोजन
- टोंक, जयपुर, मालपुरा, केकडी, बीकानेर आदि विभिन्न सघो/सस्थाओ द्वारा उपधानपति का भव्य अभिनन्दन

  उपधानपति श्री लोटा जी के सुपुत्र श्री सुनील जी द्वारा हर उपधानवाही की सेवा/सहयोग
- माम महोत्सव का भव्य वरघोडा मालपुरा के इतिहास मे पहली बार
- सुव्यवस्थित मालारोपण का भव्य विधान
- आधे मे ज्यादा आराधको द्वारा तेला तप करके माला परिधान
- उपधानवाही श्री इन्द्र चन्द जी भडारी जयपुर द्वारा केशलोच

स्थानीय मालपुर जैन समाज, नवयुवक मंडल, टोंक मण्डल, आदि सभी को हार्दिक साधुवाद देता हूँ। जिन्होंने इस आयोजन में अपना पूर्ण योगदान अर्पण किया।

पूजनीया विदुषी आर्या रत्न श्री सम्यक् दर्शना श्री जी म.सा. ने इस ग्रन्थ का सम्पादन परम कुशलता के साथ किया है। निश्चित ही यह ग्रन्थ समाज को नई आध्यात्मिक दिशा देगा।

टोंक
महावीर जयन्ती, १९९०

— सुनील लोढ़ा
संयोजक

सपूण दुनिया को जानता है तो इससे हम क्या एतराज है। हम एतराज इसी बात से है कि धर्म तत्व को कोइ जानता है।[2]

इससे स्पष्ट ज्ञान होता है कि मीमामका ने धमन व सवन के मध्य एक प्रकार की भेद रेखा बना दी है। वेद को वे मानव रचित भी नही मानते। उनके अनुसार वेद अपौरुषेय है। कुछ समय के लिए मान लिया जाय कि वेद अपौरुषेय है पर उसका जय प्रकाशन करन वाला तो आखिर पुरुष है। उसे रागद्वेष क्या आवृत्त नही करेगा? इस प्रश्न का समाधान मीमासका के पास नही है।

बौद्ध व सवज्ञ— बौद्ध ग्रन्थो के अध्ययन मे पता चलता है कि प्राचीन बौद्धग्रन्थो म बुद्ध के लिए सवन शब्द का उपयोग उपलब्ध नही होता। मात्र बुद्ध को धर्मोपदेशक के रूप मे ही सम्बोधित किया है। परन्तु उत्तरकालीन दाशनिको ने उसे धमज्ञ के साथ-साथ सवन के रूप मे भी सम्बोधित किया है। जिनेश्वर परमात्मा ऋषभदेव अथवा महावीर स्वामी का तो उनकी उपस्थिति मे भी उनके अनुयायी सवन रूप म ही सम्बोधित करत थे।

पालीनिपीटको म सवन प्रकरण मे सर्वन की चर्चा का विषय जब आता है तब वहा भले उपहास रूप से ही पर सर्वज्ञ शब्द का प्रयोग अवश्य आता है। धमकीर्ति ने दृष्टानामामा के उदाहरण म ऋषभ और महावीर की सवज्ञता का उल्लेख इस प्रकार किया है।[3]

आनद आदि किसी भी शिष्य न बुद्ध से जगत् जीव मोक्ष स्वर्ग नरक आदि के बारे मे जिज्ञासा व्यक्त की तो बुद्ध ने हमेशा उन्हे टाला ही है। इससे यही प्रतीत होता है कि बुद्ध धमज्ञ अवश्य थे पर सर्वज्ञ नही। अत अपने जीवन काल तक व उसके बाद भी कुछ समय तक वे सर्वज्ञ के सम्बोधन से मुक्त ही रहे।

उनके प्रमुख अनुयायी तार्किक धर्मकीर्ति ने भी बुद्ध को धमन ही माना है सर्वज्ञ नहीं। परतु धमकीर्ति द्वारा निर्मित ग्रन्थ प्रमाणवार्तिक के टीकाकार श्री प्रभाकर ने उन्हे सर्वज्ञ भी सिद्ध किया है। उन्होने कहा है—"बुद्ध की तरह अन्य योगी भी सवन हो सकते है। आत्मा के वीतराग हो जाने पर उसमे सभी प्रकार का ज्ञान सभव है। वीतराग पद की प्राप्ति के लिए जैसे प्रयास करते है वैसे सामान्य सा प्रयास भी अगर सवज्ञता प्राप्ति के लिए किया जाय तो वीतरागी आत्मा सर्वज्ञ बन सकती है।[4]

एक शका होती है कि धर्मोपदेशक को क्या सवज्ञ होना आवश्यक है? मोक्षमार्ग का प्रतिपादन तो बिना सवज्ञ बने भी हो सकता है। जिसे आत्मज्ञान हो जाय वही धर्मोपदेश क्यो नही दे सकता। उपदेष्टा मे तो मात्र अपने जरूरत का ज्ञान आवश्यक है इसके अलावा ज्ञान न हो तो क्या? अनुष्ठान।

योग्य ज्ञान अवश्य धर्मोपदेशक मे होना चाहिए। कीटो की सख्या के ज्ञान का क्या उपयोग?[5]

इसका समाधान जन दाशनिक इस प्रकार देत हैं कि आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो जाय तो सब ज्ञान स्वत प्राप्त हो जाता है। उसे पाने के लिये

---

2 धमज्ञत्व निषेधस्तु केवलोत्रो प्रयुज्यत। सव मन्यद्विजानस्तु पुरुष के न वायते॥

3 य सर्वज्ञ आप्तो वा सज्योति ज्ञानादिक मुपदिष्टवान् तद यथाऋषभ वधमानादिरिति। 'न्याय बिंदु'

4 ततोस्य वीतरागत्वे सर्वार्थज्ञान सभव। समाहितस्य सकल चकास्तीति विनिश्चितम्॥ सर्वेषा वीतरागाणामेतत् कस्मानविद्यन। रागादिक्षयमात्रेहि तयत्नस्य प्रवर्त्तनाम्। पुन कालान्तरेतेषा, सवज्ञ गुण रागिणाम्। अल्पयत्नेन सवज्ञ, स्यमिद्धिधारिता॥ 'प्रमाणवार्तिकालकार पृ 224

5 तस्मादनुष्ठेयगत ज्ञानमस्य वीचार्यताम्। कीटसख्यापरिज्ञान तस्यनक्वोप युज्यते। 'प्रवचनसार' 1-49

जैन-दर्शन

□

प्रमोद गुरुचरण रज विद्युत् प्रभाश्री एम. ए.

भारतीय दर्शन मे ही नही विश्व के दार्शनिक मे जैन-दर्शन का महत्वपूर्ण व स्वतंत्र अस्तित्व इसके सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है ही इसका तात्त्विक यात्मिक चिंतन भी दार्शनिकता से परिपूर्ण है। सारे सिद्धान्त प्रमाण की कसौटी पर कसे के बाद परिपूर्ण रूप से निखर उठे हैं। अन्य ान्तों के अतिरिक्त "सर्वज्ञत्व" भी जैन दर्शन मे प्रारम्भिक काल से उपयोगी व चर्चित रहा है।

जैन दर्शन ने सर्वज्ञ को अन्य दार्शनिकों की ह न अस्वीकार किया है, न स्वीकार। जैसे ी ने ईश्वर को सृष्टि के रचयिता के रूप में यता दी है तो अन्य ने एकदम नकार दिया है। जैन-दर्शन दोनों से भिन्न दिखाई पड़ता है। ने ईश्वर को स्वीकार अवश्य किया है पर सृष्टा रूप मे नहीं। जैन-दर्शन का सर्वज्ञ संपूर्ण वीतराग रूप मे ही मान्य स्वीकार किया गया है।

जैन-दर्शन ने आठ प्रकार के कर्म माने है। र घाती व चार अघाती। ज्ञानावरणीय, दर्शना- णीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घाती माने ते है। अवशिष्ट वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ाती। ज्ञान गुण को आवृत करता है वह ज्ञाना- णीय कर्म कहलाता है। कर्मबद्ध आत्मा जब कर्मक्षय नही करती तब तक वह छद्मस्थ लाती है और घाती कर्मों से मुक्त आत्मा सर्वज्ञ अथवा केवली कहलाती है। ज्ञानावरणीय, दर्शना- वरणीय, मोहनीय व अन्तराय इसलिए घाती कह- लाते हैं क्योंकि ये ही वास्तव में आत्मगुणो के शत्रु अथवा घातक हैं। संसार परिभ्रमण का कारण भी यही है। अगर हम इन कर्मो को क्षय करलें तो अवशिष्ट कर्म समय पर उसी जन्म मे क्षय हो ही जाते है। जो आत्मा अपने प्रबल पुरुषार्थ द्वारा घाती कर्मो का क्षय करता है वह केवल ज्ञानी व केवलदर्शी बन जाता है और उन्हे ही सर्वज्ञ कहा गया है।[1]

मीमांसकों ने सर्वज्ञ को स्वीकार अवश्य किया है पर जैन-दर्शन की तरह नही। उनके अनु- सार धर्म जैसे अतीन्द्रिय पदार्थ का ज्ञान पुरुष विशेष को हो ही नही सकता। धर्म का ज्ञान तो मात्र वेद मे ही सन्निहित है। पुरुष का ज्ञान इतना व्यापक हो ही नहीं सकता कि वह धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सके। मनुष्य मात्र राग द्वेष से घिरा हुआ है अत: उसका उपदेश व ज्ञान निर्दोष हो ही नही सकता।

शाबर स्वामी ने शाबर भाष्य में स्पष्ट कहा है कि वेद भूत, भविष्य व वर्तमान का ज्ञान देने में परिपूर्ण रूप से सक्षम है।

उनके उत्तरवर्ती श्री कुमारिल ने धर्मज्ञ और सर्वज्ञ को भिन्न करते हुए कहा, "प्रमाण निषेध सर्वज्ञ से है धर्मज्ञ से नहीं। अगर कोई व्यक्ति

---

1. [illegible] पृ. स. 27।

सवन दो प्रकार के हाते हैं। सामान्य मर्वन व तीथकर नवन। तीथकर सवन का तीर्थकर नाम कम का।

विशेष कम उदय मे होने से मा के गभ से लेकर मुक्ति तक की समस्त प्रक्रियाओ मे विशेपता झलकती है। जसे वे जन्म समय स ही मतिश्रुत अवधिज्ञान सहित होते हैं। जन्म समय इन्द्रादि दवी-देवता द्वारा उत्सव होते हैं। स्वय सयम का समय जानत हैं पर मर्यादानुसार लोकान्तिक दवो द्वारा सयम हेतु निवदन किया जाता है। केवलज्ञान पर्यत मौन मे ही लगभग रहते हैं केवल ज्ञान पश्चात चौतिश अतिशय प्रक्ट होते हैं। साधु साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघ की स्थापना करते हैं अत तीर्थंकर कहलाते हैं।

इतना होन पर भी सामान्य सवज्ञ के व तीथकर सवन के ज्ञान मे कोई भेद नही होता। सभी का ज्ञान व पदाथ स्वरूप का विवेचन समान होता है।

अतीत म हुए भगवान ने जो कुछ कहा उसी को उन सवन ने भी देखा। उसी सवन भाषित ज्ञान को अन्य द्वारा भिन्न रूप से प्रतिपादित करते किसी न कभी भी नही देखा। षड्द्रव्य को अपनी समस्त पर्याय सहित उसी प्रकार से भी जानते हैं।[10]

गीतादर्शन जन दशन का एक मतभेद यह भी है कि जनदशन की मान्यता है कि सवन के बाकी चार कम क्षय होने पर व सिद्ध बन जाते हैं। मसार मे पुन कभी नही आते जैन दशन इस बात पर एक मत है कि एक बार मोक्ष मे जाकर कोई पुन ससार मे लौटता नही है।

गीता मे स्पष्ट है कि, जब जब इस भू भाग पर अधम और दुराचार फैलेगा तब तब मैं जन्म अवश्य लू गा।[11]

सर्वज्ञ सपूर्ण वीतराग होते हैं। वे न किसी को आशीर्वाद देते हैं न अभिशाप। जैसा जीवन शुभाशुभ बधन बाधता है वैसा ही उसे भोगना पडता है। सभी अपनी अपनी कमजोरी मे बधे हैं। 'यद्यपि वीतराग होने के कारण वे न किसी को पुण्य मे युक्त करते हैं न पाप से वियुक्त। परन्तु भक्ति के आलोक म स्वय के अध्यवसाय विशुद्ध होने से पुण्य कम का बधन होता है। अविनय से अपनी ही भावना की मलिनता के कारण पाप युक्त होते हैं।"[12]

सुखस्य दु खस्य न कोऽपि दाता
परोददातीति कुबुद्धिलेशा। अह करोमीति वृथाभिमान, स्वकम सूत्रे ग्रथितोहिलोका॥

जैन दशन का सर्वव्यापी श्रद्धास्पद नमस्कार महामन्त्र म प्रथम स्थान अरिहतो को व दूसरा स्थान सिद्धो को दिया गया है।

"णमो अरिहताण। णमो सिद्धाण'

प्रख्यात तार्किक श्री समतभद्र ने प्रश्न किया कि हम सवज्ञ किसे कहे? और क्या कहे? आप्त मीमासा म उन्होने इसका विस्तृत समाधान किया

10 विवभिर्नेन भगवता ये केचनापरे केवलिन समुपलब्धास्ते तन्मात्रार्थ ग्रहिणो दृष्टा, अन्यैरप्येतदानिरिक्तमय प्रतिपद्यमान कदाचित् केन चित् कश्चिनदृष्ट इति द्रव्यपर्यट स्वपर्यायकोडी कृत स्वरूप मेतावदव कृत्स्न मितमवगम्यन। उत्पादित पृ 219

11 यदा-यदा हि धमस्य ग्लानिभवति भारते। 'भगवदगीता।

12 यद्यप्यय वीतरागतया न कमपि पूण्यापूण्य युक्त कराति तथापि तद्भक्तिभाज स्वकीय विशुद्धाध्यवसायवशात् पूण्येन युज्यन्ते दुष्टात्मान स्तत् विशेषमविशन्त पापेन। "उत्पादादि" पृ 211

ास करने की आवश्यकता नहीं है। दर्पण चाहे ,वा नहीं पर अगर वह स्वच्छ है तो आने-जाने ज़ों का प्रतिविम्ब उसमें झलकता ही है। आत्म न प्राप्त करने वाला सर्वज्ञ होता है ही। "एक व जिसने देख लिया है सभी भाव उसके द्वारा ा लिये गये हैं। सभी भावों को जिसने देख लिया उसने एक भाव को अच्छी तरह देख लिया ।"[6]

श्री कुन्द कुन्दाचार्य ने केवली की सर्वज्ञता निश्चयनय की दृष्टि से मात्र आत्मा को जानने अर्थ मे व व्यवहारिक दृष्टि से सभी पदार्थो को ाकी पर्याय सहित जानने अर्थ मे स्पष्ट किया ।"[7]

इसका तात्पर्य यह नही कि सर्वज्ञ और र्वज्ञ अलग-अलग होता है व सर्वज्ञ मात्र आत्मज्ञ होता है क्योकि इसे कुन्द कुन्दाचार्य ने और भी ाष्ट कर दिया है।

"जो अनंत पर्याय युक्त एक आत्म-द्रव्य को ही जानता वह अनंत पर्याय युक्त अनंत द्रव्यों को से जानेगा ?"[8]

"निश्चय नय से आत्मा को सर्वज्ञ जानते ।"

इसका अभिप्राय यह है कि इसमें आत्मा ुख्य होती है, अन्य वस्तुएँ गौण हो जाती हैं और यवहार नय से संसार को जानने मे तात्पर्य यही है कि उसमें पदार्थ को जानना मुख्य है। आत्मज्ञ और सर्वज्ञ एक दूसरे से भिन्न नही है अपितु पर्याय-वाची ही है।

किसी भी आत्मा का पुरुषार्थ मात्र अपने आपको जानने से व पाने से है। आत्मस्वरूप को प्रकट करने के अभिप्रेत से ही कोई घोर साधना करता है। ज्ञान, दर्शन चारित्र आत्मा के मूल स्वभाव हैं। ज्ञान गुण ज्ञानावरणीय, दर्शन गुण दर्शनावरणीय, व चरित्र गुण को मोहनीय कर्म आवृत्त करता है। ये आवरण ज्योही दूर होते हैं त्योही आत्मा का मूल स्वरूप प्रस्फुटित हो जाता है। जैसे सूर्य का मूल स्वभाव प्रकाश करना है पर वादलों का आवरण आने पर प्रकाश गुण प्रस्फुटित हो जाता है।

आत्मा का आवरण हटते ही वह आत्मज्ञ और सर्वज्ञ वन जाती है। धर्मज्ञता सर्वज्ञता मे और सर्वज्ञता धर्मज्ञता मे फलित होती है।

जैन-दर्शन की यह भी एक मौलिकता है कि इसने एक ही आत्मा को सर्वज्ञ के रूप मे स्था-पित नही किया, "हमारा कोई निश्चित सर्वज्ञ नही है। जिसने भी आवरण का क्षय कर लिया वे सभी आत्मा सर्वज्ञ हैं।[9]

अद्य पर्यन्त अनंत आत्माओ ने स्व स्वरूप को प्राप्त किया। वर्तमान मे भी महाविदेह क्षेत्र मे कर रही है और भविष्य मे भी करेंगी।

---

6. एको: भाव: सर्वथा येन दृष्ट, सर्वेभावा: सर्वथा तेन दृष्टा:।
   सर्वे भावा: सर्वथा येन दृष्टा, एको भाव: सर्वथा तेन दृष्ट: ॥
7. जाणादि पस्सदि सव्वं, ववहारणएणं केवली भगवं। केवलणाणी जाणदि, पस्सदि णियमेण अप्पाणं।
   "नियमसार" गा. 154
8. दव्वं अणंतपज्जयमेगं, मणंताणि दव्व जादीणि। ण विजाणदि जदि जुगवं, किध सो सव्वाणि जाणादि ॥
   "प्रवचनसार" 1-49
9. इयमत्रार्थेन कश्चिन् सर्वज्ञः, यस्य यस्यावरण प्रहान सामर्थ्य भवति स स सर्वज्ञ इतिप्रज्ञा।
   "स्याद्वादि" पृ. 221

प्रार्थना के प्रकार

◻

नीरज कुमार लोढा, केकड़ी (राजस्थान)

प्रार्थना का विषय एवं तत्त्व जानना, प्रार्थना करने वालों के लिये परम आवश्यक है। प्रार्थना क्या है और क्यों की जाती है? प्रार्थना का उत्तर मिलता है या नहीं? यदि मिलता है तो किस प्रकार, और यदि नहीं, तो उत्तर न मिलने का क्या कारण है? प्रार्थना का अर्थ है—किसी अर्थ की याचना करना या किसी कमी या अभाव की पूर्ति के लिये सहायता प्राप्त करना। प्रार्थना के तीन प्रयोजन विशेषकर होते हैं—

(1) सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के हेतु या किसी स्थूल अभाव की पूर्ति के निमित्त प्रार्थना की जाती है, जैसे अन्न, वस्त्र नौकरी, धन, स्त्री, पुत्र प्राप्ति के लिये रोग निवारण के लिये, किसी दुःख से पीछा छुटाने के लिये, आपत्ति दूर करने के लिए, सम्मान प्राप्ति के लिए, परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिए विद्या प्राप्ति के लिए और समस्त व्यावहारिक सिद्धी के लिये ही प्रार्थना की जाती है।

(2) आत्मिक उन्नति के लिये, काम-क्रोध-राग द्वेष आदि मानसिक विकारों पर जय प्राप्त करने के लिए। आत्मा क्या है? ईश्वर क्या है? मृत्यु क्या है? और मृत्यु के बाद क्या होता है? सृष्टि क्या है? इत्यादि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, मानसिक और बौद्धिक उन्नति के लिये आध्यात्म-ज्ञान और यथार्थ साधन जानने के लिए ही यह प्रार्थना की जाती है।

(3) तीसरे प्रकार के वे सच्चे प्रार्थना करने वाले भक्त होते हैं जिन्हें कुछ मांगना नहीं है केवल उस महाप्रभु के ध्यान और प्रेम में वे निरंतर लीन रहना चाहते हैं, या उस प्रियतम में एक होने के लिए अपने खुद को मिटा देते हैं ईश्वर दर्शन या आत्मा साक्षात्कार करने के लिये जिन्हें अतीव हार्दिक उत्कण्ठा होती है—सर्वोत्कृष्ट, प्रार्थना है।

सारे धर्मों का उद्देश्य आत्मा की शुद्धता उपलब्ध करने का है। केवल नाम और बाह्य क्रियाकाण्डों का भेद है पर मूल में तो वही तत्त्व है।

विश्व धर्म का लेकर अशांति इसी कारण से है कि हमारे हृदय में असहिष्णुता का साम्राज्य स्थापित हो गया है।

—गणि मणिप्रभसागर

है। वे कहते हैं कि हम आपको इसलिए सर्वज्ञ नही कहते कि आपके पास देवों का आगमन व विशिष्ट अतिशय है क्योंकि ये तो मायावी पुरुषों मे दिखाई दे सकते है। आपका अन्तरंग वहिरंग व्यक्तित्व अत्यंत उज्जवल व देदिप्यमान है परंतु हम उससे भी मुग्ध नही है। वह तो अतिशक्ति सम्पन्न देवो मे भी पाया जाता है। अगर हम देवादिको के आगमन से समवसरण की अभूतपूर्व रचना के कारण ही आपको सर्वज्ञ कहे तो, एन्द्रजालिक, देवगण सभी सर्वज्ञ की पक्ति मे आ खड़े होगे। तो क्या हम उन्हे इसलिए सर्वज्ञ मानते है कि उन्होने हमारी डूबती नैया को उपदेशो का अवलम्बन देकर बचाया है, पर उन्हें उपदेशक होने के कारण भी मैं सर्वज्ञ मानने को तैयार नही हूँ। क्योंकि उपदेश तो मनु, याज्ञवल्क्य, सुगत आदि सभी ने दिया। तो क्या हम उन्हें सर्वज्ञ मानेगे नही ? क्योंकि अगर ये सभी महावीरादि की तरह सर्वज्ञ होते तो उनकी मान्यता मे भिन्नता अथवा परस्पर विरोध नही होता। अन्त मे समतभद्र कहते है—मैं आपको इसलिए सर्वज्ञ मानता हूँ कि आपके वचन युक्ति और आगमन से अविरोधी है। आपका इष्ट तत्त्व मोक्ष है। और किसी भी प्रमाण से वह बाधित नही है अतः आपके वचन युक्ति व आगमन अविरोधी होने के कारण आप ही सर्वज्ञ है।[13]

---

13. स त्वमेव सि निर्दोषो, युक्ति शास्त्र विरोधीवाक् अविरोधी यदिष्टते, प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥

चेतना ही जीवन की समग्रता है। चेतना के अभाव मे आखिर जीवन का महत्त्व ही क्या है ?

चेतना आत्मा का स्वरूप है। अज्ञान की परतों के कारण हम प्रायः उन्माद की निन्द्रा मे खोये हुए हैं, भटके हुए है। हमे आवश्यकता है उस जागृति की, चेतना की, जिससे जीवन ज्योतिर्मय हो सके। जीवन का हर क्षण आलोकित हो सके।

[ ]

प्रवचन देना या सुनना हमारे गंतव्य की पूर्णता नहीं है।
प्रवचन, कर्तव्य-चिन्तन, मनन का मात्र माध्यम है।

[illegible] जीवन को [illegible] की दिशा अपनाने में ही प्रवचन की सार्थकता है। [illegible] के संदर्भ में प्रवचन की [illegible] जाता है।

—गणि ललितप्रभसागर

जिसे वाणी के पीछे कोई विचार न हों वह मूर्खों की वाणी होती है। बुद्धिमान बोलने के पहले सोचता है जबकि मूख बोलने के बाद सोचने बैठना है इसलिए वाणी म तोल और विवेक हर समय आवश्यक है।

(8) "मधुरम" अथात् मधुरता। वाणी मे मधुरता का वही स्थान है जा दूध में शक्कर का। सत्य बात भी यदि कडवे रूप मे कह दी जाय तो सुनने वाला उसे खुश होकर ग्रहण नही करता है। इसलिए वाणी म सत्यता के साथ माधुय का होना आवश्यक है। मीठी वाणी स्वय एक जाद है जो मानव मात्र को अपनी ओर आकर्षित करती है।

श्रावकों के गुणो मे एक गुण प्रिय भाषण है। वाणी मे अविवेक दो दिलो के बीच दीवार खीच देता है, घृणा और ईर्ष्या की आग लगा देता है और इसमे एक आदमी ही नही सारा परिवार सारा समाज और कभी कभी तो सारा राष्ट्र जल उठता है। अत व्यक्ति को चाहिये कि वह बोलने के पहले तोले तथा वाणी मे आकषण तथा शक्ति का प्रवाह करे।

समपण, सजगता की निशानी है, समता सागर है। समपण सहज नही है, अभ्याससाध्य है। आप परमात्मा को भी आदेश दे सकते हैं परन्तु इसके लिए आपको परमात्मा के प्रति समर्पित होना पडेगा। राम हमारे जीवन के आदश हैं। रामायण के द्वारा हम जीवन के हर पहलू का कर्तव्यबोध होता है।

□

हमारी हर क्रिया के पीछे तुच्छ स्वार्थों का घेरा रहता है। इन्ही तुच्छ स्वार्थों के कारण हमारे सदगुणो का स्तर उन्नत नही बन पाता। आज मनुष्य स्वाथ के वशीभूत होकर विपरीत दिशा म बढ रहा है। इन तुच्छ स्वार्थो से मानवता का ह्रास हो रहा है। देखने म आता है कि मनुष्य तुच्छ स्वाथ के कारण चरित्र तथा नतिकता त्याग देता है।

मनुष्य को स्वार्थों स ऊपर उठकर परोपकार, मानव सेवा और नीतिगत आयामो से अपने आप को जोडना चाहिए।

—गणि मणिप्रभासागर

वाणी के गुण

□

प्रकाश चन्द्र जैन

मानव को पशु जगत् से पृथक् करने वाली शक्ति वाणी ही है, मानव अपने अन्तर्मन के विचारों को वाणी के माध्यम से व्यक्त करता है। मधुर वाणी मानव की सम्पत्ति है।

मधुर वाणी ही आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है इसके अभाव में संसार के सारे सौन्दर्य फीके हैं वाणी से मानव की परीक्षा भी हो जाती है। जैसे कुम्हार के यहा टकडण द्वारा कलश की परीक्षा की जाती है उसी प्रकार मानव की वाणी यह प्रकट कर देती है कि वह बुद्धिमान है या मूर्ख। जीभ से शरीर के भीतरी हालात का पता लगाया जा सकता है जैसे जीभ को गंदा देखकर डॉक्टर कह देता है कि तुम्हारा पेट ठीक नही है उसी प्रकार जीभ से बोले गए कटु शब्द मन की कटुता प्रकट करते है।

मनुष्य को वाणी के साथ विवेक का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। मधुर वाणी से मित्रो की और कटु वाणी से शत्रुओं की संख्या बढ़ाई जा सकती है।

विद्वानों ने वाणी के आठ गुण बताए हैं जो इस प्रकार है—

(1) "कार्य पतितं" अर्थात् आवश्यकता हो तभी बोले अन्यथा मौन रहे। मौन के द्वारा शक्ति का संचय होता है सदा अनर्गल भाषण से वाणी की शक्ति क्षीण होती है, बोलना चांदी है तो मौन सोना है।

(2) "गर्व रहितम्" अर्थात् बोलते समय अपने मुह से अपनी प्रशंसा के शब्द नही आने चाहिए। अपने मुंह से अपनी ही प्रशंसा करना शोभा नहीं देता है।

(3) "अतुच्छम्" अर्थात् वाणी मे सभ्यता होनी चाहिये व्यक्ति को वार्त्तालाप में सदा उच्च शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। तुच्छ वाणी हृदय की तुच्छता दर्शाती है।

(4) "धर्म संयुक्तम्" अर्थात् वाणी धर्म से समवेत होनी चाहिये। जीभ से यदि दूसरों की निन्दा के शब्द निकलते है तो हम अपनी वाणी की पवित्रता को समाप्त करते हैं। धिक्कार, तिरस्कार और अविचार, ये वाणी के विकार है इनसे बचना चाहिए।

(5) "निपुणम्" अर्थात् वाक् चातुर्य। बोलने के अवसर पर मौन रहना और मौन रहने के अवसर पर बोलना भी अपने प्रभाव को खो देता है। वाणी की निपुणता व्यक्ति के दिल को जीत लेती है।

(6) "स्तोक" अर्थात् बात को थोड़े में निपटा देना। विस्तार यनि वाणी का दूषण है। संक्षिप्त बात में एक तेज और माधुर्य रहता है जो विस्तार में कायम नहीं रहता है।

(7) "पूर्व संकलितम्" अर्थात् वाणी को विचार की तुला पर तोल कर ही बोलना चाहिए

छलकती हो। गाव गाव घूमने के बाद भी चित्रकार को ऐसा क्रूर दुष्ट चेहरा नही मिला तो वह इटली की जेल म गया और जेल अधिकारियो से अपनी योजना बताई। जेल अधिकारियो ने उसे एक खतरनाक कैदी से मिलवाया। चित्रकार ने देखते ही कहा बस, ठीक है यही मेरी कल्पना का वह पुरुष है जो साक्षात् जुडास का प्रतिरूप है। जब उस कैदी को सामने बिठाकर चित्रकार ने अपनी तूली चलाई तो कैदी ने पूछा– आखिर तुम मेरा चित्र बनाकर क्या करना चाहते हो? चित्रकार ने कहा– मैंने बारह वर्ष पूर्व एक व्यक्ति का चित्र बनाया था जो साक्षात् प्रेम के अवतार ईसा क्राइस्ट जैसा लगता है और अब तुम्हारा चित्र बनाना चाहता हूं जो घृणा और क्रूरता का साक्षात् रूप होगा।

उस कैदी ने कहा– जरा अपना चित्र दिखायेंगे?

चित्रकार ने अपना 'प्रेम अवतार' दिखाया तो, कैदी की आखें डबडबा आईं, वह फफक फफक कर रो उठा।

चित्रकार ने आश्चर्य के साथ पूछा तुम क्यो रोने लगे? तुम इस व्यक्ति को पहचानते हो?

कैदी ने कहा– बारह साल पहले आपने जिस युवक का चित्र बनाया वह और कोई नही, मैं ही हू। उस दिन मैं ही प्रेम का अवतार ईशु क्राइस्ट था और आज घृणा की मूर्ति जुडास का रूप भी मुझ मे ही दीख रहा है, सगति और वातावरण ने मुझे ही भगवान से शैतान बना दिया।

भगवान महावीर की वाणी यहा अक्षरश सत्य अनुभव होती है। नरक और स्वर्ग दोनो ही रूप तुम्हारे व्यक्तित्व के भीतर छुपे है। तुम चाहो तो प्रेम अवतार बन सकते हो, चाहो तो क्रूरता के कस!

नोट –(जुडास ईशु क्राइस्ट का परम विश्वसनीय साथी था उसी ने भयकर धोखा करके ईशु को क्रौस पर चढवाया था)

हमारे पास अनत सम्पदा होने पर भी हम उससे वचित हैं और दरिद्रता भरा जीवन जी रहे हैं।

किसी व्यक्ति से यह कहा जाये कि तुम अपनी आखें दे दो, तुम्हे पांच लाख दिये जायेंगे, वह व्यक्ति इन्कार कर देगा। इसी प्रकार हाथ व पैर मागने पर भी इन्कार ही करेगा। देखो! इतना मूल्यवान शरीर हमारे पास है परन्तु हम उसका समुचित उपयोग नही कर पा रहे हैं, यही दरिद्रता का मूल कारण है।

—गणि मणिप्रभसागर

दोनों रूप तुम्हारे भीतर

□

उपाध्याय केवल मुनि

उत्तराध्ययन सूत्रों मे एक जगह कहा है आत्मा ही कूट शामली वृक्ष है, और आत्मा ही नदन वन है। अप्पा में कूड सामली...अप्पा मे नदणं वणं...

नरक मे कूटशामली वृक्ष है– जिसके पत्ते इतनी तीक्ष्ण धार वाले है कि जब किसी पर गिरते हैं तो तलवार की तरह उसको चीर-चीर कर देते हैं।

नंदन वन तो देवताओ का आनंद केन्द्र है ही! मनुष्य की आत्मा में दोनों रूप हैं– वह कूट शामली वृक्ष की तरह घात और अनिष्ट करने वाली भी है और नंदन वन की भांति आनंद सुख प्रदान करने वाली भी।

मानव-इतिहास मे सदा से उसके दो रूप सामने आते रहे है- एक असुर-एक सुर! एक दानव एक देव। राम और रावण, कृष्ण और कंस, गांधी और गोड्से, दो प्रकार की वृत्तियो के प्रतीक हैं। ये महावीर और गोशालक, बुद्ध और देवदत्त एक ही युग मे पैदा हुए तो ईसा और क्राईस्ट जुडास भी एक ही युग मे हुए।

भलाई का मधुर फूल जिस वृक्ष पर खिलता है, उसी की दूसरी डाल पर बुराई की फूल भी उगती है। दोनों ही प्रकार के संस्कार मनुष्य के अन्दर में विद्यमान हैं। वातावरण, संग और संस्कारों के बल पर राक्षस देवता बन जाता है, देव राक्षस का रूप धारण कर लेता है।

प्रतिदिन सात-सात मानवों की हत्या करने वाले अर्जुन के भीतर भी एक साधु का रूप छिपा था जिसे महावीर की वाणी ने जगा दिया। मनुष्य की अगुलियों की मुंडमाल पहने, घूमने वाला अगुलिमाल भी एक दिन बुद्ध के वचनो से उद्‌बुद्ध होकर अपने दुष्कृत्य पर फूट फूटकर रो उठा। दृढप्रहरी जैसा दस्युराज, रोहिणेय जैसा तस्कर सम्राट् भी आखिर अपनी आत्मा को जगाकर करुण और सत्य की साधना मे जुट गये और बुरा वातावरण पाकर एक राजकुमार भी प्रभव जैसा नामी तस्कर बन गया था।

एक बार इटली के एक प्रसिद्ध चित्रकार को एक ऐसा चित्र बनाने की सूझी जो देखने मे प्रेम का अवतार ईसा जैसा हो, जिसकी आखों मे प्रेम बरसता हो, जिसके रोम-रोम से दया और सेवा की सुवास आती हो, बहुत खोज-बीन के बाद उसे एक व्यक्तित्व मे ये सब गुण झलक रहे थे। सरलता, सौम्यता, स्नेह शीलता। चित्रकार ने उस युवक को अपने सामने बिठाया और एक ऐसा सुन्दर भव्य चित्र बनाया जो जीवन्त ईशु क्राइस्ट जैसा लग रहा था।

एक दिन चित्रकार को फिर एक विचार आया, अब एक ऐसा दुष्ट पुरुष का चित्र बनाऊ जो अपनी आकृति से दुष्ट, जुडास जैसा हो, जिसका चेहरा बड़ा भयंकर, क्रूर और धोखेबाज जैसा लगता हो, जिसकी आंखों से घृणा और क्रूरता

जिस दिन हम अपने बाह्य परिवेश को भुलाकर अंतर्जगत में कदम रख देंगे निश्चित ही वह कदम महावीर बनने की दिशा में हमारा महत्त्वपूर्ण उपक्रम होगा। पर इसके लिए बाह्य वातावरण की भौतिकता से सम्बन्धित उपाधियों का विसर्जन प्रथम शर्त है।

अपने स्वाध्याय के दौरान मैंने किसी स्थान पर एक कहानी पढ़ी थी। बड़ी रोचक और शिक्षाप्रद लगी मुझे वह कहानी।

नोबल पुरस्कार प्राप्त केथोरिन मेन्सफील्ड सफल और प्रसिद्ध लेखिका थी। दर्शन और साधना की गहराइयों को समझने हेतु एक संत गुरजियस के पास गयी। नोबल पुरस्कार की आभा उसके मुखमंडल पर प्रदीप्त हो रही थी। सफल लेखिका होने का गर्व उसके रोम रोम को दपदपा रहा था। यद्यपि अंतर्चेतना में जिज्ञासा थी पर अहं का विसर्जन नहीं था।

एक प्रश्न वायु मंडल में गूंज उठा। संत ने उसके गर्वोन्नत मुख को देखा और पूछा, "आगमन का उद्देश्य ?

'मैं आप श्री से साधना का रहस्य और ध्यान की पद्धति पूछने आयी हूँ।" सभ्यता से नमन मुद्रा में लेखिका ने प्रत्युत्तर दिया।

संत ने कहा 'साधना की गहराइयाँ यहाँ प्राप्त नहीं होगी। तुम जाओ और इतने सूक्ष्म प्रश्नों में मत उलझो। संत ने तो कह दिया पर वह कैसे जाती! संकल्प तो अपने आप में दृढ़ था ही, अब उसके साथ आग्रह भी जुड़ गया। उसने वचन बद्ध होते हुए कहा जितना गहरा प्रश्न होगा उतना आनन्द भी गहरा होगा। आप मुझे शिष्या के रूप में स्वीकार करें और साधना की शिक्षा दें।

संत ने उसे परखना चाहा। विद्यादान में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। अगर जरा सा चूक जाय तो विद्या का दुरुपयोग हो जाता है और जो विद्या विकास का माध्यम होती है वही किसी के विनाश का कारण बन जाती है।

संत ने कहा, "तुम जाओ सड़क पर और मिट्टी को खोदना प्रारम्भ कर दो पर सावधान! तुम अधूरा कार्य छोड़कर स्वतः इच्छानुसार मत आना। जब मैं आवश्यकता समझूंगा, तुम्हें पुकारूंगा और तभी तुम आना। अगर उससे पहले आने का प्रयास किया तो तुम्हें ध्यान की गहराई मैं नहीं समझा पाऊँगा। और इसके लिए उत्तरदायी तुम स्वयं बनोगी।

केथोरिन को क्रोध तो बहुत आया कि यह कैसा संत जो मेरा स्तर भी समझने का प्रयास नहीं करता और मुझसे इस प्रकार का निम्न श्रम करवाना चाहता है परन्तु वह करती भी क्या ?

उसे पाना तो उन्हीं से था। अगर वह संत की शर्त स्वीकार न करे तो वह उनके अनुभव के खजाने के खजाने को बटोर नहीं सके और उसे प्राप्ति हर हालात में करनी थी। उसने संत की शर्त मंजूर कर ली।

प्रथम दिन तो मिट्टी की खुदाई अत्यन्त भयंकर लगी और त्रस्त होकर चाहा कि भाग जाय, पर भागना भी तो उसने नहीं सीखा था। जिस मैदान में वह एक बार कूद पड़ी थी उसे छोड़कर आना तो उसे कायरता लगी और कायर कहलाने की अपेक्षा तो वह मरना पसन्द करती थी।

दूसरे दिन उसे कुछ श्रम कम महसूस हुआ और धीरे धीरे वह उसी में मस्त बन गयी। कितने ही दिनों के अन्तराल बाद उसे अचानक नेपथ्य से आवाज आयी "तुम परीक्षा में तपकर शुद्ध स्वर्ण के रूप में निखर चुकी हो। अब लौट आओ। मैं तुम्हें लेने आया हूँ। आवाज उसने तुरन्त पहचान ली। संत उसे पुकार रहे थे।

वीतरागता की प्राप्ति का उपाय : अहं का विसर्जन

□

प्रमोद गुरुचरण रज विद्युत् प्रभाश्री, एम. ए.

"हमारी आत्मा जो हमारे अति समीप है, पर जिससे हमारा परिचय नही है और अगर है भी तो अधूरा।" कितना तीखा यह उद्बोधन है। यह छोटा-सा वाक्य हमारी समस्त चेतना में एक डंक की तरह चुभता-सा प्रतीत होता है। पर असत्य नही है।

सही मायने में अगर हम सतही तौर पर ही खड़े न रहकर चिन्तन के सागर मे गहरे डूबे तो यह वाक्य सत्य प्रतीत होगा। कितनी भयंकर त्रासदी हमारे जीवन की ! ! ! इससे ज्यादा विडम्बना हमारी बुद्धि की क्या होगी ?

आत्मपरिचय के अभाव में ही हमारा आत्मविश्वास, हमारा साहस और हमारी नैतिकता डाँवाडोल हो रही है। आत्मा की असीम सामर्थ्य को अगर हम समझने का प्रयास करें तो निश्चित ही हमारे स्वयं मे ही नहीं अनेक प्यासे प्राणों में सजीवनी का संचार हो जायेगा।

हमारी आत्मा अगणित सम्भावनाओं का खजाना है। आवश्यकता है उन सम्भावनाओ के खोज की।

आज के इस भौतिकवादी युग में चारों ओर भौतिकता हावी हो रही है और ऐसे में भौतिक वस्तुओं के मोह की दूर कोई [illegible] नजर नहीं आती। पर [illegible] पर [illegible] हमारा [illegible] लगता है अब हमारी बुद्धि, हमारी समस्त चेतना मात्र भौतिकता को ही समर्पित होकर रह जाती है।

आत्मवैभव की पहचान के अभाव मे हम भौतिक परिवेश को ही एक मात्र सुख और शांति का आधार मानकर उसी की शरणागति स्वीकार कर रहे हैं और यही हमारे चिंतन की विकृति है। हमारा मानस आज पंगु और खोखला बनकर रह गया है। काश ! हम अपने वैभव से अनजान न होते।

हर आत्मा मे महावीर बुद्ध, राम कृष्ण बनने की सम्भावनाएँ मौजूद है। कच्चा माल प्रत्येक आत्मा मे समाया हुआ है। आवश्यकता है सामग्री निर्माण की। सामग्री मौजूद होते हुए भी अगर कोई लक्ष्य की सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है तो निश्चित ही उसका दुर्भाग्य है। साथ ही प्राप्त सामग्री का अपमान भी।

महावीर ने कभी भी यह उद्घोष नहीं किया कि मात्र मैं ही महावीरता तक पहुँचा हूँ। तुम मात्र मेरे आराधक बन सकते हो। आराध्य बनने का अधिकार तो, मेरे पास ही सुरक्षित है। इसके स्थान पर उन्होंने तो प्रतिपल इसी गूंज को गुंजित किया कि प्रत्येक आत्मा निर्मल और महावीर बनने की क्षमता रखती है। शक्तियाँ तो [illegible] सब में सुप्त हैं। आवश्यकता है जागृत करने की।

धारण करना बंध तत्त्व है। जैसे—तालाव में नालियों द्वारा जल एकत्रित हो जाता है उसी तरह आत्मा के साथ जो कर्मों का सयोगत्व है वह स्थिति एव अनुभाग जय है अर्थात् जितने समय की उनकी स्थिति होती है फल (शुभा शुभ) दत रहते हैं, इसका नाम बन्ध तत्त्व है।

सवर तत्व—सवर का अथ है कर्मों के आगमन का रुकना, जैसे किसी तालाब म पानी आने की नालियाँ हा उन्हें तोड दिया जावे हटा दिया जावें तो तालाब म पानी आना बन्द हो जाव उसी प्रकार आत्मा के साथ राग द्वेष मोह आदि परिणामा से कर्मों का आश्रव (आगमन) होता था उसे गुपित) समिति, धम अनुप्रेक्षा, परिषयजय एव चरित्र के पालन से रोका जा सकता है। जिसे सवर कहते हैं अब इन सवर के कारणा का सक्षेप से विचार करत ह।

गुप्ति—मन, वचन एव काय की प्रवृत्ति को शुभा शुभ से हटा कर स्वभाव मे लगाना निश्चिन गुप्ति है। व्यवहार स मन वचन काय की प्रवृत्ति को अशुभ म हटा कर शुभ मे लगाना हैं। गुप्ति का अथ ही रक्षा करना है। जयात् अपनी आत्मा का अशुभ म बचाना, रक्षा करना वास्तव में गुप्ति ह।

समिति—समिति पाँच प्रकार से पाली जाती है। इया समिति इधर उधर विचरण करने वाले जीवा की रक्षा हेतु 4 हाथ भूमि देख कर चलना।

भाषा समिति—मन वचन काय की प्रवत्ति को स्वभाव म लगाना तथा व्यवहार की दृष्टि मे हित मित प्रिय वचना का बोलना भाषा समिति हैं।

एषणा समिति—शास्त्रानुसार शुद्ध एव समय पर वत्ति पुरुषा द्वारा निर्दोष आहार ग्रहण करना एषणा समिति है।

आदान निक्षेपण समिति—किसी भी वस्तु को उठाते हुये या रखते हुये देख भाल कर प्रवृत्ति करना।

व्युत्सर्ग समिति—जीवजन्तु रहित प्रासुक भूमि पर मलादि का विक्षेपण करना व्युत्सर्ग समिति है।

धर्म—दश प्रकार के धर्म के पालन से सवर होता है।

क्षमा धर्म—क्रोध, कषाय के निमित्ता का मिलने पर भी किसी प्रकार के दुष्य परिणाम आत्मा मे उत्पन्न नहीं होना क्षमा धर्म है।

मार्दव धर्म—इसी प्रकार मान कषाय के निमित्ता के मिलने पर भी अहकार आदि भाव आत्मा मे उत्पन्न नहीं होना मार्दव भाव है।

आर्जव—माया कषाय के निमित्ता के मिलन पर भी किसी प्रकार के छल कपट के भाव उत्पन्न नहीं होना आर्जव धर्म है।

शौच धम—शौच धम स आत्मा की पवित्रता का सम्बन्ध हैं। राग, द्वेष, मोह आदि का आत्मा के साथ सबन्ध नहीं होना निश्चय शौच धम है। व्यवहार से लोभ-कषाय जय पर वस्तु म सग्रह की परिणति नहीं होना सच्चा शौच धम है। (शरीर आदि की शुद्धि से आत्मा की शुद्धि नहीं होती।)

सत्य धम—सत्य धम आत्मा का स्वभाव है। वस्तु तत्त्व को जैसा ह वसा ही जानकर अनुभव कर प्रकट करना सत्य धम हैं।

सयम धम—इन्द्रिय सयम और प्राणी सयम के भेद से यह सयम दो प्रकार का है। पाचों इन्द्रियों एव मन को वश मे कर प्रवृत्ति करना इन्द्रिय सयम है। तथा छोटे मोटे सभी जीवों की रक्षा करना प्राणी सयम हैं।

वह आश्रम में पहुँची, उसका सारा अभिमान पिघला गया था। अब न वह सफल लेखिका के रूप में गर्वान्वित थी और न आडम्बर और प्रसिद्धि का दर्प था। वह एक सरल सहज आत्मा थी। भीतर के सारे कचरे को उसने बाहर फेंक दिया था।

गुरु का वात्सल्य और उसका समर्पण रंग लाया। पाने के लिए सर्वप्रथम हृदय को कूड़े-कर्कट से खाली करना पडता है। जब तक अहंकार का जहर भीतर रहता है तब तक आत्म-ज्ञान का अमृत नहीं पा सकते।

उपधान भीतर के कचरे को जलाने का, उसे समाप्त करने का एक अमोघ और तीव्र ताप है।

इस उपधानतप के आयोजक हैं सेठ श्री सोभागमलजी लोढा। यद्यपि उनका प्रत्यक्ष परिचय मेरा नहीं है फिर भी मैंने उनके बारे में बहुत कुछ सुना है। और जो सुना है वह गौरवान्वित करने योग्य है।

ज्योंहि मैंने पूज्य गणिवर्य श्री के द्वारा जाना कि इस उपधान के आयोजक लोढाजी स्वयं सपत्नीक आराधक बनने का भी अनूठा आनन्द ले रहे हैं "सचमुच आश्चर्यजनक आल्हाद हुआ। या तो स्वयं आराधक बन सकते हैं या आयोजक, पर आयोजक स्वयं आराधक बनकर अन्य आराधकों के आराधना के सहयात्री बने यह आश्चर्यकारी तो अवश्य है पर सुखद है। और ऐसी घटनाएँ वर्तमान के इतिहास में असंभव तो नहीं पर कठिन अवश्य है।

मै श्री लोढाजी की उदारता और आराधक भावना का हार्दिक अनुमोदन करती हूँ।

इसके निश्रादाता एवं प्रेरक हैं पूज्य गणिवर्य श्री। उनकी आराधना शैली के बारे में मैं क्या कहूँ? आराधना के भावो को वे इतने अनूठे ढंग से बांधे रखते है कि मानसिक या शारीरिक थकान या श्रम कतई महसूस नही होता। मै अपने आपको अत्यन्त सौभाग्यशाली मानती हूँ कि वे मुझे बड़े भैया के रूप में सुयोग्य मार्गदर्शक मिले। है जन्म के साथ ही उनके स्नेह का पावन झरना मेरे लिए बहा है। आज भी कोसों दूर होते हुए भी उस पवित्र झरने की खुशबू मुझे महसूस होती है।

जिस प्रकार आराधकों के आत्मविकास में सहायक बने, एक साधिका के नाते मेरी भी यह कामना है कि वे मेरे भी आत्म सहायक और उज्ज्वल भविष्य के मार्गदर्शक बने।

आयोजक, आराधक व निश्रादाता समस्त के मंगलमय भविष्य की शुभकामना......

अहंकार सद्गुणों का संहार करता है। अहंकार सभी दुर्गुणों का नेता है। जप-तप व आराधना साधना का ध्येय, हृदय की पवित्रता व नम्रता है। यदि हम तप आदि क्रियाओं में अपने अहं का पोषण करने लग जायें तो वे क्रियायें अहंकार की निमित्त बन जाती है।

—गणि मणिप्रभसागर

धम भावना—आत्मा का स्वभाव नान दशनात्मक है। सम्यक् दशन, नान चारित्र दया, सयम आत्मा से भिन्न नही है आत्मा के ही स्वभाव है। अनादिकाल से कर्मो मे लिप्त यह जीव अपने स्वभाव को भूला हुआ है। अत अपने स्वभाव को प्राप्त करने के लिये सम्यग् दशन को प्राप्त कर सयम को धारण करते हुये एव परीषहो को जीतते हुये बारह प्रकार के तप रूप साधना से अपने स्वभाव को प्राप्त करना ही धम भावना है।

चारित्र—जिसके धारण करने से विशेष रूप से कर्मो की निजरा होती है वह चारित्र पाच प्रकार से पाला जाता है '

सामायिक चारित्र—सम्पूण सावद्ययोग का त्याग कर स्वभाव म लीनता सामायिक चारित्र है।

छेदोपस्थापना चारित्र—सामायिक चारित्र को धा ण करते हुयेउसमे किसी कारण दोष लग जावे उन्ह प्रायश्चित्त द्वारा दूर कर पुन सामायिक चारित्र धारण करें।

परिहार विशुद्धि चारित्र—जो जीव 30 वष की अवस्था तक पूण रूप से सुखी जीवन विता कर पश्चात् दीक्षा धारण कर 8 वष पर्यन्त तीथ कर या केवली के समीप प्रत्याख्यान पूव का अध्ययन करें फलस्वरूप उनकी आत्मा मे इतनी शक्ति प्राप्त होती है कि सूक्ष्म जीवो की विराधना ही इनसे नही होती।

सूक्ष्म साम्पराय चारित्र—किंचित् सज्वलन लोभ कषाय का अश रहता है यह अवस्था दसवें गुण स्थान म होती है।

यथाख्यात चारित्र—मोहनीय कम के उपशम या क्षय से स्वभाव म स्थिरता आना यथाख्यात चारित्र है।

निर्जरा तत्त्व—कर्मो का एक देश क्षय का नाम निजरा है जो उपरोक्त उपयोग म आने से ही कर्मों की निजरा होती है।

मोक्ष तत्त्व—सम्पूर्ण कर्मो का क्षय हो जाना ही मोक्ष है। इसे प्राप्त करने पर ससार की पुनरावृत्ति समाप्त हो जाती है। एव अक्षय आनद की प्राप्ति होती है। इस प्रकार सात तत्त्वो का स्वरूप जानना।

पुण्य और पाप—यह जीव पुण्य को सुख का कारण मान रहा है और पाप को दु ख स्वरूप जानता है। प्रथम तो यह विचार करें कि पुण्य उदय से जो सुख प्राप्त है वह शाश्वत नहीं है। इसी प्रकार पाप के उदय से प्राप्त हुआ दु ख शाश्वत नहीं है। जिसे ये सुख समझ रहा है वह सुख तो इन्द्रियो के अधीन हैं। यदि शरीर और इन्द्रिया कमजोर हो जावें तो कितने भी धन, परिवार मित्रगण कुछ भी सुखी नहीं बना सकते हैं। किस जीव के किस समय पूव कम जनित अशुभ कर्मो का उदय आ जावे वह सुख ही दु ख रूप परिणित हो जावे। इसका कुछ भी पता नहीं लगता। जिन साधनो को यह जीव सुख का कारण मानता है व ही क्षण भर मे दु ख के कारण बन जाते हैं। जो पुत्र एव मित्रगण अभी जो सुख पहुँचाते हैं वे ही अपने स्वार्थो की हानि होते ही वदल जाते हैं। जो गाडी (मोटर) घूमने मे और चलन मे जो इज्जत एव शरीर को आराम पहुँचाती है वह मोटर क्षण भर मे मृत्यु का कारण भी बन सकती है। अत जीवो को सासारिक सुख जो प्राप्त है पराश्रित है, परापेक्षित है, परतन्त्र है अथात् दु खरूपी है। यदि गहरे दिल से सोचा जावे जिन्ह हम सुख का कारण समझते हैं वे वास्तव मे दु ख के कारण हैं। और जिन्ह हम सुख दुख स्वरूप मानते है उन्हे मुनीश्वर सुख के साधन समझते है। जैसे सासारिक प्राणी विषयो मे अन्ध हुआ शरीर को सुख पहुँचाने वाले सभी

तप धर्म—संवर के प्रकरण मे तप का विशेप महत्त्व है। संयम की दृढता और कर्मो के विशेप निर्जरा के हेतु तपधर्म का आचरण है।

त्याग धर्म—जिन कारणो से आत्मा मे मलिनता आवे उन कारणों का त्याग करना चाहिये। व्यवहार से यथा शक्ति दानादि का देना त्याग धर्म हैं।

अकिंचन्य धर्म—संसार के सभी पदार्थ निश्चय से भिन्न है मेरा उनसे कोई सम्बन्ध नही अथवा जो भी कुछ प्रतीत होता है। उसके साथ मेरा मात्र सयोग सम्बन्ध है।

ब्रह्मचर्य– ब्रह्म अर्थात् ज्ञान, उसमे विचरण करना उसी मे ठहरना, **ब्रह्मचर्य** है। व्यवहार से काम सेवनादि का त्याग **ब्रह्मचर्य** कहलता है।

अनुप्रेक्षा—(12 भावना)

अनित्य भावना—जिनका कि वार-वार चिन्तन किया जावे उसे भावना कहते है। संसार में सभी पदार्थ अनित्य है, क्षण भगुर है, इनका सम्बन्ध भी पुण्य या पाप के उदय से जीव को मिलता रहता है एवं छूटता रहता है। इसलिए उनमें ममत्व भाव का त्याग करना चाहिये।

अशरण भावना—इस संसार मे कोई भी किसी का शरण नही है। सर्व जीव अपने-अपने कर्मों के उदय से प्राप्त फल को भोगते है। न कोई किसी को मार सकता है न कोई किसी को जिला सकता है। इसलिए ऐसा श्रद्धान् ही अशरण भावना है।

ससार भावना—संसार की दशा बड़ी विचित्र है। इस अनंत संसार मे जीव कभी तो पिता की पर्याय में आता है तथा कभी स्वयं उसका पुत्र बन जाता है, कभी तिर्यंच पर्याय में तो कभी नरकादि गतियों मे अपने-अपने कर्मानुसार मिथ्यात्व के कारण परिभ्रमण कर रहा है।

एकत्व भावना—इस ससार में यह जीव अकेला ही आता है और अकेला ही जाता है, न तो कुछ साथ लाया था न ही कुछ साथ ले जाता है। ऐसा विचार करने पर मोह भाव छूटता है या कम होता है।

अन्यत्व भावना—ससार के सभी पदार्थ निश्चय ही मुझसे भिन्न है और मैं भी उनसे सर्वथा भिन्न हूँ। मात्र वाह्य पदार्थो से हमारा सयोग सम्वन्ध है, ऐसा विचार करने पर उदासीनता आती है।

अशुचि भावना—यह शरीर अत्यन्त अशुचि है तथा इसके सम्वन्ध से अन्य भी अशुचित्व को प्राप्त हो जाते है, आदि-आदि विचार करने पर शरीरादि से रागादि भाव दूर होते है।

आश्रव भावना—मन-वचन-काय की प्रवृत्ति का नाम योग है और वह योग ही चाहे शुभ हो या अशुभ, आश्रव का कारण है। स्वभाव मे रहने से ही आश्रव का अभाव होता हैं।

संवर भावना—आत्मा के स्वभाव में रहने से ही कर्मो का आना छूटेगा अतः स्वभाव मे रहना ही सवर है।

निर्जरा भावना—वैसे तो प्रति समय कर्मों की निर्जरा होती रहती है और नवीन कर्मों का बन्ध होता रहता है किन्तु आत्म-स्वभाव में स्थिरता विशेष निर्जरा का हेतु है।

लोक भावना—तीन लोक सम्बन्धी स्वरूप का चिन्तवन ध्यान एकाग्रता का कारण है एवं वैराग्य की तरफ लक्ष्य बनाता है।

बोधी दुर्लभ—मनुष्य जीवन प्राप्त कर सम्यग्दर्शन को प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि इस अनंत संसार में मानव जीवन पाना ही अत्यन्त दुर्लभ है।

पचमहाव्रत

□

धर्मदत्त कौशिक—व्याख्याता

जैन दशन म पचमहाव्रता का अनुपम महत्त्व है। अन्य धर्मावलम्बी भी इन पचमहाव्रतो को किसी न किसी रूप मे स्वीकार करके इनकी महत्ता को पुष्ट करते हैं। उपनिषद् के प्रणेता ऋषि गण इनका प्रशस्तिगान करते हैं। बौद्ध मतावलम्बी इन्ह पचशील के रूप मे स्वीकार करते हैं। ईसाई धम के जो दश आदेश हैं, वे भी इनस मिलते जुलते हैं।

पचमहाव्रत—(1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) ब्रह्मचय (5) अपरिग्रह।

यद्यपि सभी मतावलम्बी इनकी महत्ता तो प्रतिपादित करत हैं, परन्तु जैन जिस कठोरता से इन व्रतो का पालन करते हैं वैसा अन्यत्र पालन नही मिलता अत जैन धर्मावलम्बी इस क्षेत्र मे स्तुत्य हैं।

(1) अहिंसा—इसका तात्पर्य है प्राणी मात्र की हिंसा न करना। प्राणी मात्र मे तात्पय केवल चेतन गतिशील (जगम) द्रव्यों से ही नही अपितु स्थावर पदार्थो यथा वनस्पति, आकाश, जल आदि अस्तिकाय पदार्थों मे भी प्राणो का अस्तित्व है। जैनो का उद्देश्य है कि स्थावर व जगम (अचल-चल) किसी भी प्राणी की हिंसा न हो।

जैन धम के अनुसार सभी जीव समान हैं। जीवो मे पारस्परिक समादर भाव रहना चाहिए। मनसा, वाचा कमणा अर्थात् मन वचन एव कर्म तीनो स किसी भी प्रकार की हिंसा निकृष्ट है। इनके अभाव मे पूण अहिंसा नही होती।

(2) सत्य—मिथ्या वचन का त्याग। 'प्रिय पथ्य वचस्तथ्य सूनृत व्रतमुच्यते' जो सत्य कल्याण कारी हो, प्रिय हो उसे सूनृत कहते हैं। सत्य व्रत का पालन मनुष्य को लालच भय एव क्रोध रहित करना चाहिए। किसी का उपहास कदापि न होना चाहिए।

(3) अस्तेय—चौरवृत्ति का वर्जन। बिना दिये किसी के द्रव्य को ग्रहण करना अस्तेय है। जीव का प्राण जिस प्रकार पवित्र है उसी प्रकार उसकी धन सम्पत्ति भी है। अत धन सम्पत्ति का अपहरण मानो उसके जीवन का ही अपहरण है। अत प्राणों के आधारभूत धन का अपहरण भी निकृष्ट है। इस प्रकार हम देखते ह कि अहिंसा के साथ अस्तेय का अभेद्य सम्बन्ध है।

(4) ब्रह्मचय—वासनाओ का त्याग—प्राय ब्रह्मचय से तात्पय कौमाय जीवन से लिया जाता है। जैन धम केवल इद्रिय सुखो का ही नही बल्कि सभी प्रकार के कामो का त्याग समझना है। कभी-कभी मनुष्य कम द्वारा तो इद्रिय सुखोपभोग को बन्द कर दता है परन्तु मन और वचन से उन उपभोगो का स्मरण करता है जो कि अति निद्य है। अत मानव को सब प्रकार से कामनाओ का परित्याग वाछनीय है चाहे वे कामनायें मानसिक हो या बाह्य सूक्ष्म हो या स्थूल, ऐहिक हो या पारलौकिक स्वय के लिये हो या दूसरो के लिए।

(5) अपरिग्रह—विषयासक्ति का त्याग—इस व्रत के लिए उन सभी विषयो का त्याग

साधनों को पाकर अपने को सुखी मानता है। मगर योगीजन उसे दुख:रूप मानकर त्याग और तपस्या में लीन है। क्योंकि वे इस पुण्य और पाप के खेल को पुरी तरह अनुभव कर चुके हैं।

अत: आत्मा का सच्चा सुख तो अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यमय है। उसी की प्राप्ति के हेतु उपाय करने चाहिये। अत: मानव जीवन को प्राप्त कर प्रथम सम्यक् दर्शन प्राप्त करना है। सम्यक् दर्शन को प्राप्त किये विना तप संयम होने वाली साधना भी कर्मो से नही छुड़ा सकती।

अहो! जैन धर्म की अपूर्व महिमा है! हे प्रभो! आपने जिस प्रकार कर्मोच्छेदन कर अनन्त सुख को प्राप्त किया है वही मार्ग आपने जीवों को वतलाया है, आपके सिद्धान्त मे जीव भक्त नही भगवान वनता है।

अत: प्रत्येक जीवों को मानव जीवन प्राप्त कर अपना कल्याण करना चाहिये। ऐसी भावना व्यक्त करता हुआ विराम लेता हूँ।

रोग का निदान होने के वाद चिकित्सा की प्रक्रिया से हमें गुजरना ही होगा, अन्यथा रोग वढता ही जायेगा। हमारी आत्मा को अहंकार, वासना, क्रोध, राग-द्वेष, साम्प्रदायिकता आदि अनेक वीमारियो ने घेर रखा है। धर्म की शरण मे पहुँचकर इन वीमारियो को दूर करना होगा, अन्यथा ये दुर्गुण हमारी आत्मा पर अंधेरा वढाते जायेगे। क्षमा, मैत्री, सज्जनता, पवित्रता और सच्चरित्रता को अपनाने मे हृदय शुद्धि होगी, आत्मा में निखार आयेगा।

—गणि मणिप्रभसागर

जैन-दर्शन तीन तत्वों की नींव पर खड़ा है। देवतत्व हमारा साध्य है, गुरुतत्व हमारा पथ-प्रदर्शक तथा धर्मतत्व हमारा साधन है।

—गणि मणिप्रभसागर

जीवन प्रेरक आचरण

□

गुरु विचक्षण विजयेन्द्र चरणानुचरी साध्वी पद्मयशा

जैन आगमो के आचराग सूत्र मे कहा गया है—आचार पग्मो धम—'आत्मोत्थान के लिए आचार धर्म ही प्रथम—सर्वोपरि है। मानव जीवन का प्रेरक शुद्ध आचरण है। आचारण शुद्धि के अभाव म उपदेश प्रवृत्ति और क्रिया आदि जितने भी कम ह वे सभी निष्फन हैं। बिना किसी उद्देश्य स और बिना किमी लक्ष्य स चलना केवल दिग्भ्रम है। प्रयोजन स ही काय निष्पत्ति होती है और ज्ञान पूवक शुद्ध आचारण ही जीवन विकास का हेतु है। एक सूत्र म आलखित किया गया है— ज्ञान क्रियाभ्या मो । ज्ञान के सहित क्रिया करना ही मोक्ष है। यद्यपि ज्ञान एक सूय का प्रकाश है और क्रिया एक जुगनू का उद्योत/प्रकाश। फिर भी दोनो एक दूसरे के पूरक तत्व हैं। सामञ्जस्य रूप है। केवल ज्ञान पगु है और ज्ञान के अभाव म केवल क्रिया अधी है। निस्सन्देह ज्ञान की सबसे पहले आवश्यकता है परन्तु आचरण को ज्ञान से अधिक महत्त्वपूण स्वीकार किया गया है। क्योकि कोई भी कम क्रिया अथवा धम क्रिया सभी आचरण मे ही होती ह। हा! जगत् मे असद-आचरित विद्वान की अपक्षा सद् आचरित अविद्वान को ही सवश्रेष्ठ कोटि म स्वीकारा गया।

आचरण को शुद्ध रखने क लिए बहुत कुछ त्याग करना पडता है सहना पडता है। कष्ट बिना इष्ट की प्राप्ति नही हो सकती है। क्षणिक सुख देने वाली चचल लक्ष्मी के लिए मानव कष्ट व दुख सहने को तत्पर हैं तो शाश्वत सुख हेतु शुद्ध आचरण बनाये रखने मे क्यों भयातुर होता है। मानव को निर्भीक, साहसिक रहना चाहिए। सत्य व सदाचारी जीवन जीना चाहिए। व्यक्ति पद प्रतिष्ठा, मान व नाम के लिए खून का पसीना कर दता है धन को पानी की तरह बहा दता है श्रम करने मे धरती और आसमान एक कर देता है, वैसे ही आत्मसिद्धि के लिए भी घोरातिघोर कष्ट सहना होगा, सहनशील बनना होगा, क्षमावान् बनना साधक इन्द्रियो का दमन, काम विजेता और कषाय विजयी होगा तब ही वह मोक्षाधिकारी है। सीधे अगुली घी नही निकलता ह। परमात्मपद प्राप्त करने के लिए साधक को शुद्ध आचरण ग्राही बनना होगा।

ज्ञान की अपेक्षा आचरण का मूल्याकन अधिक है। ज्ञान का आगार मस्तिष्क है और आचरण का आचार चरण। भक्त भगवान को, गुरु को वन्दन, नमस्कार पहले चरणो मे करता है मस्तिष्क पर नही। अचना पूजा भी चरणों से प्रारम्भ होती है। आचरण चरणो का प्रतीक है क्योकि चलने की क्रिया चरण ही करत हैं। रूढिवाद व परम्परागत चलन की अपेक्षा ज्ञान पूवक आचरण ही श्रेयस्कर ह महापुरुषो पर आचरण का अधिक दायित्व होता है क्योकि अय लोग भी उन्ही का अनुसरण करते हैं इसके अनेक प्रमाण दृष्टिगत होते हैं।

आवश्यक है, जिनसे इंद्रिय सुख की उत्पत्ति होती है। इनके अन्तर्गत सभी प्रकार के शब्द, स्पर्श, रूप, स्वाद तथा गंध है। अत: आसक्ति ही मानव के बंधन का कारण है। फलस्वरूप "पुनर्पि जननं पुनर्पि मरणं" वाली कहावत चरितार्थ होती है। मानव कभी मोक्ष नहीं पा सकता। वह चौरासी के बंधन में फंसकर रह जायगा। अस्तु--

उक्त पाच महाव्रतों का पालन परम ज्ञान की प्राप्ति एवं मुमुक्षुओं के लिए परम आवश्यक है। इन महाव्रतों के पालन से पुद्गल जनित वाधाओं से मुक्त होकर जीव अपने यथार्थ स्वरूप को पुन: पहचान लेता है। मोक्ष की अवस्था परम आह्लाद कारिणी है।

बंधन ग्रस्त सभी जीव महान् तीर्थंकरों की पूजा अर्चना एवं उनके द्वारा दिखलाये मार्ग से उनकी तरह पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति एवं पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकते है।

जैन धर्म केवल उन पुरुषों के लिए है जो वीर और दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। इसका मूल मंत्र स्वावलम्बन है। अत: जैन धर्म में मुक्त आत्मा को 'जिन' और वीर कहा जाता है।

78–बी. ब्लॉक, श्री गंगानगर

वाह्य प्रकाश अन्धकार युक्त है। जबकि भीतर का प्रकाश, केवल प्रकाश है। वहाँ अन्धकार का नामोनिशान नही होता।

वाह्य प्रकाश का सापेक्ष होता है जबकि भीतर का प्रकाश निरपेक्ष होता है। उसका साक्षात्कार होने पर अन्धकार उपस्थित नही रहता। वह प्रकाश ही परमात्मा का प्रकाश है।

□

व्यक्ति के मस्तिष्क में सत और असत् दोनों तरह की विचारधारायें चलती हैं। कुछ पल पूर्व करुणा के विचार आते हैं तो थोड़ी देर बाद हिंसक भावनायें उभरती हैं। दोनों तरह की परस्पर विरोधी धारायें मस्तिष्क में टकराती हैं।

जब कोई विचारधारा सघन बनती है तो वह अन्य विचारधारा पर हावी हो जाती है और सघन विचारधारा आचरण में रूपान्तरित हो जाती है।

धार्मिक प्रवचन, हमारी सद्विचारधारा को प्रोत्साहित करते हैं ताकि असत् विचारधारा शान्त हो जाये।

—मुनि मणिप्रभसागर

सम्यग्दर्शन—स्वरूप और चिन्तन

□

रमेश मुनि शास्त्री

अणु रूप बीज मे विराट् वृक्ष होने की क्षमता है। किन्तु उस की अभिव्यक्ति तभी हो सकती है जब कि उसे अनुकुल जल, प्रकाश और पवन की सम्प्राप्ति होती है। साधना के क्षेत्र मे भी यही ध्रुव सत्य और यही अकाट्य तथ्य है कि आत्मा मे अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य होने पर भी वर्तमान मे उस की अभिव्यक्ति नही हो रही है। इस शक्ति की अनुभूति को साधना कहा जा सकता है। आत्मा का सलक्ष्य अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख प्राप्त करना है वह कैसे हो, इस के लिये रत्नत्रयी की साधना का विधान किया है। रत्नत्रयी का अर्थ है—सम्यग्-दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र। वस्तुत यही मोक्ष मार्ग है और यही मोक्ष प्राप्ति का अमोघ उपाय है।

रत्नत्रयी का नाम ही मोक्ष मार्ग है। मार्ग शब्द का अभिप्राय यहा पर पथ या रास्ता नही है। बल्कि मार्ग का आशय है—साधन एव उपाय। मोक्ष का मार्ग कही बाहर मे नही है, वह साधक के अतर चैतन्य मे। उस की अन्तरात्मा मे ही है। साधक को जो कुछ भी पाना है अपने अन्दर से पाना है। अध्यात्म के क्षेत्र मे सर्वाधिक महत्त्व पूर्ण प्रश्न यह है कि मोक्ष एव मुक्ति आत्मा का स्थान विशेष है या स्थिति विशेष है। सिद्धशिला और सिद्ध लोक जैसे शब्द क्या स्थान विशेष की ओर संकेत करते हैं? व्यवहार नय से यह कथन यथार्थ पूर्ण है। परन्तु निश्चय नय से विचार करने पर मोक्ष आत्मा का स्थान नही है, बल्कि एक स्थिति विशेष है, जहाँ आत्मा है वही उस का मोक्ष है। आत्मा कही न कही तो रहेगी, क्यो कि वह द्रव्य है और जो द्रव्य है वह कही न कही रहेगा। आत्मा नामक द्रव्य जिस किसी भी आकाश देश मे अवस्थित है वही उस का स्थान है और वही उस का धाम है। किन्तु मोक्ष द्रव्य नही है, वह आत्मा का निज स्वरूप है।

सम्यग्दर्शन आत्मसत्ता की अखण्ड आस्था है। वह आत्मा के स्वरूप विषयक एक अविचल निश्चय है। चेतन और अचेतन का विभेद करना यही सम्यग्दर्शन का वास्तविक समुद्देश्य है। आत्मा और शरीर को एक मान लेना आध्यात्मिक क्षेत्र मे सब से बडा अज्ञान है, मिथ्यात्व है। यह अज्ञान सम्यग्दर्शन मूलक सम्यग्ज्ञान से दूर हो सकता है। साधक कही भी जाय और कही पर भी क्यो न रहे उस के चारो ओर नाना प्रकार की चीजो का जमघट लगा रहता है। पुद्गल की सत्ता को कभी मिटाया नही जा सकता। तब भव बन्धन से मुक्ति कैसे हो? यह चिन्तनीय प्रश्न साधक के सम्मुख आकर खडा हो जाता है। उक्त प्रश्न का एक ही समाधान है कि पुद्गल की प्राप्ति की चिन्ता मत करो। साधक को केवल इतना ही सोचना है और समझना है कि आत्मा मे अनादि काल से जो पुद्गल के प्रति ममता है, उस ममता को दूर किया

एक समय लम्बे प्रवास से क्लान्त एक योगी अपने शिष्यवृन्द के साथ किसी गाँव की सीमा पर आराम कर रहे थे। तव उधर से किसी मनुष्य की शवयात्रा निकली। वह योगी तत्काल उसके सम्मान के लिए खडा हो गया। शिष्यों ने कहा—"यह तो एक शवयात्रा है, मृत का क्या सम्मान करना ?" इस पर गुरुदेव योगी ने कहा—अरे! यह मृत कलेवर तो है पर इसमें मानव आकृति व मानव प्रकृति "भी थी। अत: मैंने उसकी मानवता को सम्मानित किया है।" तव सभी शिष्य मंडली ने भी उसको गुणानुवाद के साथ सम्मानित किया।

पर उपदेशे पांडित्यम्—जगत् मे लोग अपने को पंडित वेत्ता मानकर दूसरों को उपदेश वहुत देते हैं परन्तु आचरण से विल्कुल शून्य रहते है। वास्तव मे आचरण करना अत्यधिक दुष्कर है। एक सुन्दर इंगलिश युक्ति है—

I Man of words and Not of deeds.

Is like a gardes full of words.

जो मनुष्य वोलता है पर आचरण नही करता, वह मनुष्य उस वगीचे के समान है जिसमें केवल घास ही घास है।

परिवार अथवा प्रियजन के यहाँ जब किसी की मृत्यु होती है शोक निवारणार्थ लोग उनके घर सान्त्वना देने के लिए जाते हैं। यह एक अच्छी प्रथा है। परन्तु जब अपने ही घर वैसी घटना हो तो वह मन को समझा नही सकता, धैर्य रख नही सकता और आंसुओं को रोक नहीं पाता। यह स्थिति केवल गृहस्थ धर्म में ही नही श्रमण वर्ग मे लगभग ऐसा व्यवहार हो जाता है। देखिये—चरम तीर्थकर भगवान महावीर के चौदह हजार मुनियों मे प्रमुख और प्रथम गणधर गौतम स्वामी की महावीर-निर्वाण के समय क्या स्थित हुई थी? प्रभु के वियोग से रात भर रोये, अत्यधिक विलाप किया और आर्तध्यान से आत्मा कलुपित की। भगवान का वहुत उपदेश सुना, उनके चरणों में ही रहते और स्वयं भी उपदेश देते थे परन्तु उस समय प्रभु विरह मे जगत् स्वभाव को नही पहिचान सके। वे आचरण से दूर थे। ज्योंहि नश्वर देह का ज्ञान हुआ। प्रभु की देशना को आचरण में लिया, उनकी वाणी का अनुसरण किया तव गौतम को तत्काल केवल ज्ञान हो गया। ज्ञान को आत्मसात् करने से ही सिद्धि प्राप्त होती है।

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति सर्व पल्ली डॉ. राधा कृष्णन ने लिखा है—"भारत को शिक्षा की नही चरित्र की आवश्यकता है।" कबीर जी ने अपनी दोहावली मे कहा है—

"करनी करै सो पूत हमारा,
कथनी कथै सो नाती"
रहणी रहै सो गुरु हमारा,
हम रहणी के साथी।"

कथनीवत् करनी ही जीवन का सफल आचरण है और वही आत्मा सिद्ध अधिकारी है।

●●

आत्मा ज्ञाता है, द्रष्टा है इस मौलिक तत्त्व को निश्चित जानकर जीवन में एक ऐसी ज्योति जलाओ जिससे अन्तरात्मा की कुण्ठित [illegible] नष्ट हो जावे। कर्मों का बंधन काफूर हो जावे, आत्म बोध का सूर्योदय हो जावे।

—मुनि मणिप्रभसागर

इसी सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि अध्यात्मवादी मानव का जीवन ऊर्ध्वमुखी होता है। और भोगवादी व्यक्ति का जीवन अधोमुखी होता है। भोगवादी व्यक्ति संसार को भोग की दृष्टि से देखता है और अध्यात्मवादी व्यक्ति इस संसार को वैराग्य की दृष्टि से देखता है। अपामार्ग एक प्रकार की औषधि होती है इसी को आँधा काटा भी कहते हैं। उस में काटे भरे रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने हाथ में इस की शाखा को पकड़ कर अपने हाथ को उस के नीचे की ओर ले जाए तो उसका हाथ काटों से छिलता चला जाएगा, उसका हाथ लहूलुहान हो जाएगा। और यदि उसकी टहनी को पकड़ कर अपने हाथ को नीचे से ऊपर की ओर ले जाए तो उसके हाथ में एक भी काटा नहीं लगेगा। यह जीवन का एक मर्म भरा गम्भीर रहस्य है। सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के जीवन में यही सब कुछ घटित होता है। मिथ्यादृष्टि अधोमुखी है वह संसार और परिवार के सुख दुखात्मक हजारों हजारों काटों में घिरता रहता है और छिलता रहता है। परन्तु सम्यग्दृष्टि इस संसार और परिवार में ऊर्ध्वमुखी होकर रहता है। जिस से संसार के सुख-दु खात्मक अपामार्ग के नुकीले काटों का उस के आध्यात्मिक जीवन पर जरासा भी प्रभाव नहीं पड़ पाता। अध्यात्म जीवन की सबसे बड़ी कला है। जीवन की इस विशिष्ट कला को सम्यग्दर्शन कहा जाता है। मिथ्यादृष्टि आत्मा स्वर्ग में ऊँचे चढ़कर भी नीचे गिरता है और सम्यग्दृष्टि आत्मा नरक में जाकर भी अपने ऊर्ध्वमुखी जीवन के कारण नीचे से ऊँचे की ओर अग्रसर होता रहता है। यह सब कुछ सम्यग्दर्शन और मिथ्या दर्शन का अपना अपना स्वरूप है और दृष्टि की अपनी अपनी सृष्टि है। सम्यग्दर्शन चिंतामणि रत्न के समान है। जिस मानव के पास चिंतामणि रत्न को उसे कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। वह चिन्तामणि रत्न के अचिन्त्य प्रभाव से चाहे जो वस्तु प्राप्त कर सकता है। वैसे ही सम्यग्दर्शन से आध्यात्मिक-अभ्युदय जो भी करना चाहे, कर सकता है। सम्यग्दर्शन जिसे प्राप्त हो चुका है, वह नरक गति में रहकर भी स्वर्ग से भी अधिक सुख प्राप्त कर सकता है। उस का अनुभव कर लेता है। बाहरी वेदनाएँ होने पर भी निज स्वरूप में रमण करता है। वह प्रतिकूलता में भी अनुकूलता को निहारता है। उसका चिन्तन अधोमुखी न होकर ऊर्ध्वमुखी होता है। वह संयोग में हर्षित नहीं होता है और वियोग में भी खिन्न नहीं होता है उसका सम्बन्ध आत्म केन्द्र में होता है। रणक्षेत्र में वही सेना विजय वैजयन्ती फहरा सकती है। जिसका सम्बन्ध मूल केन्द्र से रहता है। भले ही वह सेना कितनी ही दूर चली जाए। वह कभी भी पराजित नहीं हो सकती। चतुर सेनापति वही है जो मूल-केन्द्र से सदा सम्बन्ध बनाये रखे। जिस का सम्यग्दर्शन रूपी मूल-केन्द्र से सम्बन्ध है, वह संसार में रहकर भी संसार से उसी तरह अलग अलग रहता है जैसे कीचड़ के बीच कमल रहता है। कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है, कीचड़ में रहता है। उस के चारों ओर जल होता है पर वह जल से अलग थलग रहता है। वैसे ही सम्यग्दृष्टि व्यक्ति संसार रूपी कीचड़ से उपरत रहता है।

सम्यग्दृष्टि मानव का शरीर संसार में रहता है, किन्तु मन मोक्ष की ओर रहता है। सम्यग्दर्शन वह अद्भुत शक्ति है जिस के संस्पर्श से अनुकूलता व प्रतिकूलता में हर्ष व विषाद नहीं होता। अनन्त असीम आकाश मण्डल में उमड़ घुमड़ कर घटाएँ आती हैं, किन्तु उन घटाओं का गगन पर असर नहीं पड़ता। वैसे सम्यग्दृष्टि के मानस रूपी गगन पर अनुकूलता और प्रतिकूलता का प्रभाव नहीं पड़ता है वह दु ख के जहर को पीकर भी अचल अडोल व अडिग रहता। वह विष उस पर कोई प्रभाव नहीं डालता। वह कष्टों का अनुभव करते हुए भी यह सोचता है कि ये दु ख के काटे मैंने ही बोये हैं मेरे कर्म के फल हैं। फिर

जाय और जब पुद्गल की ममता दूर हो गई तो फिर वे आत्मा का कुछ भी नही बिगाड़ सकते। यह एक ध्रुव सत्य है।

इसी सन्दर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि सम्यग्दर्शन मिथ्याज्ञान को भी सम्यग् ज्ञान बना देता है। अनन्त असीम नभो मण्डल में स्थित सहस्र किरण दिनकर जब मेघों से आच्छादित हो जाता है, तब यह नहीं सोचना चाहिये कि अब अनन्त आकाश मे सूर्य की सत्ता नही रह गई है। सूर्य की सत्ता तो है, किन्तु बादलों के कारण उस की अभिव्यक्ति नही हो पाती है। परन्तु जैसे ही सूर्य पर छाये हुए बादल हटने लगते है तो सूर्य का दिव्य प्रकाश और प्रचण्ड आतप एक साथ गगन-मण्डल और पृथ्वी-मण्डल पर फैल जाता है। ऐसा मत समझिये कि पहले प्रकाश आता है और बाद में आतप आता है। अथवा पहले आतप आता है और बाद मे प्रकाश आता है। ये दोनों एक साथ प्रगट होते हैं। इसी प्रकार जैसे ही सम्यग्दर्शन होता है। वैसे ही तत्काल सम्यग्ज्ञान हो जाता है। इन दोनो के प्रगट होने में क्षणमात्र का भी अन्तर नही रह जाता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनो साधनों की परिपूर्णता का नाम ही मोक्ष एवं मुक्ति है। यही अध्यात्म-प्रधान जीवन का चरम विकास है।

अध्यात्म साधना का मूलभूत आधार सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन का अर्थ है—सम्यक्त्व ! सम्यक्त्व का अर्थ है—सत्य दृष्टि ! सामान्य भाषा में आस्था, निष्ठा, श्रद्धा व विश्वास भी इसी को कहा जाता है। अध्यात्मक साधना का मूलभूत आधार सम्यग्दर्शन क्यों है ? इस अति महत्त्वपूर्ण प्रश्न के समाधान में यही कहा जा सकता है कि मानव-जीवन में दो प्रधान तत्त्व हैं—दृष्टि और सृष्टि ! दृष्टि का अर्थ है—बोध, विवेक, विश्वास और विचार ! सृष्टि का अर्थ है—क्रिया, कृति, संयम एवं आचार ! किन्तु मानव का आचार कैसा होता है ? इस को परखने की कसौटी, उसका विचार और विश्वास होता है। मानव क्या है ? वह अपने विश्वास, विचार और आचार का प्रतिफल होता है। दृष्टि की विमलता से ही जीवन विमल और धवल बनता है। यही प्रमुख कारण है कि विचार और आचार इन दोनो से पहले दृष्टि की शुद्धि का महत्त्व है।

आत्मा की अपनी शक्ति जो विस्मृत हो गई है, उसे दूर किया जाय। सम्यग्दर्शन सम्प्राप्त करने का अर्थ यह नही है कि पहले कभी दर्शन नही था और अब नया उत्पन्न हो गया है। दर्शन को मूलतः समुत्पन्न मानने का अभिप्राय यह होगा कि एक दिन उस का विनाश भी हो सकता है। सम्यग्दर्शन की समुत्पत्ति का अर्थ इतना ही है कि वह विकृत से अविकृत हो गया है, पराभिमुख से स्वाभिमुख हो गया है। मिथ्या से सम्यक् हो गया है। जब हम यह कहते है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। तब केवल इसका अर्थ इतना ही है कि आत्मा का जो दर्शन गुण आत्मा में अनन्त काल से था। यह दर्शन गुण की मिथ्यात्व पर्याय को त्याग कर, उस की सम्यक् पर्याय को प्राप्त कर लिया है। सम्यग्दर्शन की साधना एक ऐसी विशिष्ट-साधना है कि जिसके द्वारा साधक अपने आप को समझने का सफल प्रयत्न करता है। अचेतन सत्ता पर विश्वास करना ही सम्यग्दर्शन नहीं है। बल्कि आत्मा पर अविचल रूप से विश्वास करना सम्यग्दर्शन है। इसके दिव्य आलोक में बाह्य दुःखों के बीच भी आन्तरिक सुखों के अजस्र-स्रोत फूटेंगे। जीवन में कदम-कदम पर आध्यात्मिक अक्षय आनन्द एवं सुख शान्ति की अनुभूति होगी। सम्यग्दर्शन रूपी दिव्य रत्न के अचिन्त्य-प्रभाव से व्यक्ति प्रतिकूलता में अनुकूलता का अनुभव करता है, सम्यग्दृष्टि आत्मा कहीं रहे भी रहती है, सदा सुखी व शान्त रहती है।

शुद्ध स्वरूप को समझ कर जब साधक इस म स्थिर हा जाता ह तब उस सच्चे सुख का अनुभव होता है। अनादि काल से जो जन्म मृत्यु की परम्परा चल रही ह, उस परम्परा का सम्यग्दर्शन विनष्ट कर देता ह। सम्यग्दर्शन के अभाव मे भव-परम्परा का भी उच्छेद नही हो सकता ह। जब सम्यग्दर्शन समुत्पन्न हाता है ता अनन्त काल मे रहा हुआ अज्ञान उसी क्षण ज्ञान म परिवर्तित हा जाता ह। उस अज्ञान म से आग्रह बुद्धि निकल जाती है। जिस से उसे यथार्थ ज्ञान हा जाता है और परम सत्य का साक्षात्कार हो जाता ह। जो अज्ञान वचारिक आग्रह से आध्यात्मिक समुत्कर्ष को कुठित करता था, पर सम्यग्दर्शन रूपी दिव्य रत्न की प्राप्ति हात ही उस का ज्ञान अनाग्रही हा जाता ह। उस के जीवन म समता की निर्मल ज्योति जगमगाने लगती है राग द्वेष की ज्वालाएँ उपशान्त हो जाती ह, उस मे वैराग्य और विवेक की सरस-सरिता प्रवहमान हाने लगती है। स्पष्ट ह कि सम्यग्दृष्टि आत्मा और अनात्मा के अन्तर को समझने लगता है, अभी तक पर-रूप म जो स्व स्वरूप की भ्रान्ति थी, वह दूर हो जाती है। उस की गति असत्य म सत्य की ओर, अतथ्य से तथ्य की ओर एव कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर हा जाती है।

सारपूर्ण भाषा म यही कहा जा सकता ह कि आत्मा के सर्वतोमुखी अभ्युदय का प्रधान आधार "सम्यग्दर्शन" है। सम्यग्दर्शन की आधार शिला पर विकसित सद्विचार और सदाचार जीवन का नियामक एव आदर्श होता है।

पर्युषण महापर्व, मनाना तभी सार्थक हा सकता है जब हम अपने कट्टर से कट्टर शत्रु को क्षमा कर दें। वर, विरोध समाप्त कर जीवन का नया अध्याय शुरू करें।

केवल तिलक लगा देने या बाह्य क्रियाओ से ही पर्युषण नही मनाया जाता। हृदय के भीतर बसे हुए समस्त दुर्गुणो को बाहर निकाल कर वहाँ प्रेम की गगा प्रवाहित करनी होगी।

आचरणो पर अहिंसा का अकुश लगाना चाहिये तथा भाषा म सभ्यता प्रियता, मधुरता का सामञ्जस्य होना चाहिये।

□

दूध से भरे पात्र में नीबू का थोडा सा रस डाल दिया जाये तो सारा दूध फट जाता है। उसी प्रकार आराधना म विराधना का थोडा सा अश भी विकृति पैदा कर देता है।

पर्युषण के आठो दिन अहिंसा और मैत्री की आराधना के दिन हैं। पर्युषण हमारा सबसे महगा मेहमान है। उसे हृदय के सिंहासन पर बिठाने के लिये हृदय की सफाई करनी हागी। वहा प्रेम का पानी छिडकना होगा, क्षमा की अगरबत्ती जलानी होगी, मैत्री का आसन बिछाना होगा।

—गणि मणिप्रभसागर

मै क्यो घबराता हूँ। जो मानव सरोवर मे गहरी डुबकी लगाता है, उस व्यक्ति को उस समय गर्म लू का असर नही होता। जो साधक सम्यग्दर्शन रूपी सरोवर में अवगाहन करता हो, उस पर भव-ताप का असर नही होता है। यह एक तथ्यपूर्ण कथ्य है कि किसी भी सुरम्य प्रासाद की सुन्दरता, विशालता और कलात्मकता को देख कर दर्शक प्रायः मुग्ध होकर उसकी प्रशसा करने लगते हैं। पर भवन-निर्माण की कला-वास्तु कला का विशेषज्ञ केवल उसकी बाहरी विशालता और रमणीयता पर रीझ कर ही नही रह जाता, वह उसके निर्माण के मूलाधार-नीव पर तथा निर्माण में प्रयुक्त सामग्री आदि के सम्बन्ध मे गहराई से देखता है और उसी प्रधान आधार पर उस की सराहना करता है।

जैन साधना पद्धति का मूल आधार भी सम्यग्दर्शन है। जैन आचार का प्राण-स्वरूप तत्त्व सम्यग्दर्शन है। उसका अन्तर्हृदय श्रद्धा मे रहा हुआ है। जितनी हमारी निष्ठा, सद्भावनाएँ पवित्र आचरण के प्रति होंगी, लक्ष्य के प्रति होंगी, उतना ही जीवन चमक उठेगा, अध्यात्म साधना खिल उठेगी। सम्यग्दर्शन मे सत्य-तत्त्व का परिबोध भी रहता है और उस पर दृढ आस्था भी। बोध विचार है, विचार परिपक्व होने पर, आचार का रूप लेता है, इसलिये सत्योन्मुखी विश्वास को आचार का प्रमुख आधार मानना दर्शन और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सर्वथा संगत है। यह ध्रुव सत्य है कि सम्यग्दर्शन एक महान्-शक्ति है। ज्यो ही सम्यग्-दर्शन का संस्पर्श होता है, त्यो ही अज्ञान-ज्ञान के रूप मे, दुराचार सदाचार के रूप मे एवं मिथ्याचार सम्यक् आचार के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। सम्यग् दर्शन के अभाव मे विचार मे निर्मलता और [illegible] नहीं आ सकती। विचार, निर्मल बने बिना आचार मे पवित्रता नही आ सकती। [illegible] की [illegible] पर सर्वप्रथम [illegible] होता है। तभी विचारों को जीवन की धरती पर उतारा जा सकता है। विचार से आचार बनता है और विश्वास से विचार बनता है। पर विश्वास, विचार और आचार ये कहीं बाहर से नही आते है। वे तो आत्मा के निज गुण है। उन गुणो का विकास करना जो गुण आच्छन्न है, प्रकाश मे लाना ही स्वरूप की उपलब्धि है। और जब स्व-स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है, तब साधना सिद्धि मे बदल जाती है।

इसी सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि मुख्य तत्त्व दो है—जड़ और चेतन। इन दोनो मे भेद विज्ञान करना ही सम्यग्दर्शन है। वही तत्त्व का यथार्थ शब्दार्थ है, स्वरूप है। स्व और पर का आत्मा और अनात्मा का, चेतन्य और जड़ का जब तक भेद विज्ञान नही होता है। वहाँ तक स्व-स्वरूप की उपलब्धि नही होती। जब स्व-स्वरूप की उपलब्धि होती है, तभी उसे यह परिज्ञान होता है कि मैं शरीर नही हूँ, इन्द्रियाँ नही हूँ। और न मन ही हूँ। ये सभी भौतिक है। पुद्गल हैं, और जो पुद्गल है, वे जड़ है। पुद्गल अलग है, आत्मा अलग है। पुद्गल की सत्ता अनन्त काल से रही है, वर्तमान है, और भविष्य मे रहेगी। पर वे अनन्त-पुद्गल ममता के अभाव मे आत्मा का कुछ भी बिगाड़ नही सकते और आत्मा एव पुद्गल ये दोनों ही पृथक् है, यह पूर्ण निष्ठा ही सम्यग्दर्शन है, उस को जानना सम्यग्ज्ञान है और उन पुद्गल की पर्यायों को आत्मा से पृथक् कर देना सम्यक् चारित्र है। सम्यग्दर्शन से ही सम्यक् चारित्र के दिव्य-नेत्र प्रकट होता है और आत्मा अपने विशुद्ध स्वरूप मे स्थिर व स्थित होता है, और पर पदार्थों से विमुख हो जाता है। इस कथन का आशय यह है कि सम्यग्दर्शन, सम्यक् दृष्टि है। दूसरे शब्दों मे यह भी कहा जा सकता है कि आत्म-विश्वास, आस्था, श्रद्धा और निष्ठा। निश्चय दृष्टि से मै शरीर से भिन्न [illegible] हूँ, इन्द्रिय और मन से भी भिन्न [illegible] हूँ। मै विशुद्ध हूँ, [illegible] नहीं हूँ। [illegible]

वद्धि होती है और निर्व्यसनी के साथ रहने से गदी आदतें छूट जाती हैं। जैसे लहसुन के सग कस्तूरी को रखने से कस्तूरी म भी दुर्गंध आने लग जाती है। लेकिन सुखद चदन के साथ रखने से खुशबू आती ह। ठीक उसी तरह अच्छे और बुरे की सगत का असर आता ह। इसीलिए कहा गया है कि—

एक घडी आधी घडी आधी स भी आध
तुलसी सगत साधु की हरे कोटि अपराध ?"

एक मिनीट नही तो आधी मिनीट भी टाइम निकालकर अच्छे की सगत करो सत साधु भावक का समागम करो। तुलसीदास जी ने कहा है कि अच्छे सतसग के बिना दुनिया के अपशब्दो स कोई बचा नही सकेगा

सच्चे साधु वो ही हैं कि जिसको ऐसा लग कि मुझे जो मार्ग मिला है वही मार्ग विश्व को बताऊँ अच्छे रग म जन म भी पलटा आ जाता है, गटर का गदा काला पानी गगा नदी म मिलन स गटर का जल न रहकर गगाजल कहलायेगा। कितनेक कहते हैं कि शत्रु की प्रशसा करो और गुरु के दोष का प्रचार करो, लेकिन यह ठीक नही ह। निर्गुण की उपेक्षा करो। उसकी प्रशसा करने से कभी वह सुधरेगा नही। गुणवान की भक्ति करो आदर प्रेम सम्मान करो तो अपना चारित्र विचार वाणी निर्मल होंगे लेकिन दोषित की निंदा करने से अपनी आत्मा मलिन होती है। अपना काम यह है कि गुण सबसे लेना, दुर्गुण किसीसे न लेना और अपने म ऐसे दोष हो तो निकालकर फेंक दो, दूसरे के दोष का प्रचार करना बुद्धिशाली को शोभा नहीं देता।

गुणानुरागी बनने का सद्गुण अत्यन्त सूक्ष्म ह। गुणवत की उपासना करना। एकलव्य न थी द्रोणाचार्य की प्रतिमा बनाई, गुरुपद पर स्थापन की उस पर अपनी श्रद्धा को मजबूत बनाई तो उनम से उसको प्रेरणा मिली, श्रेष्ठ विद्या प्राप्त हुई। उसी तरह अपने को भी सद्गुण की उपासना करके गुणानुरागी बनके इच्छित कार्य को साधें।

जय गुरुदेव

दादावाडी पूना
ता 23 2 1990—शनिवार

इन्द्रियो की दासता त्यागे बिना मुक्ति सम्भव नहीं है। हम इन्द्रियों का मालिक बनना है दास नहीं। इन्द्रियो पर आत्मा का स्वामित्व ही मुक्ति-महल का प्रथम सोपान है। अनन्त काल से हमने इन्द्रियो की गुलामी की है और इसी कारण यह गुलामी भी प्रिय हो गई है। अनन्त जन्मो के इन संस्कारो को तोडकर, आत्मा को अनावृत करके, उसके दर्शन करना प्राणी-मात्र का पारमार्थिक लक्ष्य है। यह बात इतनी सहज नहीं है। प्रतिदिन पवित्रता के लिये अभ्यास करते हुए हम आगे बढना है।

—गणि मणिप्रभसागर

श्री दादागुरु शरणम् मम

सद्गुण की उपासना

□

तिलक शिशु साध्वी श्री अनन्त यशा

दोप दृष्टि, यह इन्सान का अनादि काल का एक अनिष्ट स्वभाव है। कोई भी चीज अगर ढलावे की और जा रही है तो उसमें उसकी कोई महत्ता नही है। जिंदगी मे चढना यह वहुत मुश्किल है। उतरना तो सरल है। दुनिया मे इन्सान को अधम वनाने वाली है तो वह है दोप दृष्टि, जव कि जीवन को आगे वढ़ाने वाली है गुणदृष्टि।

पूरे गाँव का कचरा इकट्ठा करने वाला आदमी अपने घर मे कचरे को नही रखता वल्कि कचरा पेटी मे डाल के आता है तो फिर अपने को दूसरों की दोप की गन्दगी अपने साथ लेके क्यों घूमना ? अपने मन को स्वस्छ रखने के लिए महापुरुष अपने को गुणानुरागी वनने को कहते हैं। दोप से भरी हुई आज की दुनिया में गुण का दर्शन दुर्लभ है। हर एक घर मे वाग नही होता, उसी तरह हर मानव मे सद्गुण नही होते तो तुरन्त उसकी आलोचना न करें, निंदा न करें एक गुजराती शायर ने कहा है। कि,

> "निंदा न करजो पारकी,
> न संभाय तो करजो आपकी।"

अगर निन्दा किये बिना नहीं रह सकते तो सिर्फ अपनी आत्मा की निन्दा करें।

धोवी भी पैसे लेकर कपडा धोता है। लेकिन अपन अपनी जिव्हा से मनुष्य के मेल को मुफ्त धो रहे है। व्यर्थ वातें न करके काम की वाते करे जो अपने जीवन के लिए उपयोगी हों ऐसा करने से ही अपने मुँह से सद्वचन निकलेगे। आज अपने को सोलह सतियों के जीवन-चरित्र याद नही आते है। चौवीस तीर्थंकरों की जीवन-झाँकियाँ याद नहीं आ रही हैं। सव भूल वैठे क्या वो अपना सद्भाग्य है ? इस परिस्थिति में अपन क्या आराधना उपासना कर सकेंगे। समझदारी की आराधना होगी तभी वो अद्भुत कहलायेगी तभी अपना मन श्वेत हो सकेगा।

मन को सुन्दर श्वेत निर्मल रखने के लिए गुणानुरागी वनो। आपकी मुलाकातें, आपसे ज्यादा बुद्धिमान हों, विवेकी हों, सदाचारी हो, उनके साथ करें उनकी सोवत से उनकी अच्छी वात का असर आपके मन पर कभी ना कभी होगा।

कोई इन्सान किसी भी व्यसन के आधीन हो जाता है। उसके विना वह रह नहीं सकता, उस व्यसन का प्रारम्भ तो शौक से ही होता है।

"जैसा मन वैसा रंग"

फिर वह आदत बन जाती है। पहले अपन आदत को पालते है फिर आदत अपने को पालती है। व्यसनियों के साथ रहने से व्यसनियों की भी-

यही कारण है इतनी साज सज्जा, इतना प्रदर्शन होने के बाद भी यही शि ायत होती है कि नई पीढ़ी में धम की भावना नहीं है।

पर हमने क्या सोचा ह इसका कारण क्या ह? सवम प्रथम ता अथ के प्रति बढ़ता हुआ ममत्व। सादा जीवन और उच्च विचार वाला दष्टिकोण लुप्त होता जा रहा है। समाज म आज धन की प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही ह। नतिकता, सचारित्रता का मापदण्ड विघटित होता जा रहा ह। कुछ ही वर्षों म कितना अतर आ गया है समाज व्यवस्था म।

हमारी नई पीढ़ी को श्रद्धा विहिन बनाने म आज की शिक्षा पद्धति का बहुत बड़ा हाथ है। अंग्रेजी राज्य तो गया पर मैकाले के माध्यम से हमारी भारतीय संस्कृति का विनाश करना अंग्रेज चाहते थ, वे उसम सफल हो गये। आज अंग्रेजी स्कूल म बच्चे को पढ़ाकर पाश्चात्य संस्कार के रग म रग दना काल समय गृहस्थ नहीं चाहता। धार्मिक और नैतिक ज्ञान दन की कितनी फिक्र ह हमको! और धार्मिक ज्ञान क अभाव म आज हमारा आहार बिगड गया है, व्यवहार बिगड गया है आचरण बिगड़ता जा रहा है। जैन शासन पर गत दो ढाई हजार वर्षों में विभिन्न धर्मों व राजनताओ द्वारा कम अत्याचार नहीं हुये। इतिहास इसका साक्षी है पर यह भी सब विदित ह कि उन सबके बावजूद भी हमारी जैन की पहिचान पर आंच नहीं आई, हमारी प्रतिष्ठा म कोई फर्क नहीं आया हमार मानस में कोई गिरावट नहीं आई। हमारा आहार हमारा आचरण जिनेश्वर के धम के प्रति हमारी आस्था म कोइ कमी नहीं आई। पर इन कुछ वर्षों म ही ऐसा क्या हो गया जिसमे हमारी साख म फक पड गया। हमारे प्रति अन्यो का विश्वास उठ गया।

यह एक गम्भीर प्रश्न है जिस पर हमारे गुरु भगवता व समाज के आगे वानो को चिन्तन करना ही पड़ेगा।

अब हमे हमारी विचारधारा का मोड दना पड़ेगा। मैं यह मानता हूँ कि जीवन म धम की उपयोगिता है तो धन की भी है। इसीलिये तो धम, अथ, काम और मोक्ष चारों को हमार धम ग्रंथों ने जीवन के लिये आवश्यक बताया है। धन कमाना या धनी होना बुरा नहीं ह पर यदि इस धन का सदुपयोग नहीं होकर दुरुपयोग हो तो क्या वह उचित कहा जावेगा?

हमारी आराधनायें चाहे वह उपधान के माध्यम से हों, चाहे तपस्या के माध्यम से, चाहे तीर्थ यात्राओं के माध्यम से ध्येय एक ही है आत्मा की निर्मलता, आत्मा की ऊर्ध्वीकरण, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का जीवन से हटाना या कम करना। लेकिन हम सच्चे हृदय से विचारें आज से सब क्रियायें अधिक व्याप्त होने पर भी परिणाम क्यों नहीं लाती? ज्ञान के साथ की हुई क्रिया ही लाभदायी होती है।

आज नई पीढ़ी को धर्म मय बनाने के लिये पहले हम हमार जीवन को सुधारना पड़ेगा। उसे व्यवस्थित करना पड़ेगा। भावी पीढ़ी को सद्ज्ञान दना पड़ेगा। संस्कार देना पड़ेगा। सेवा और परोपकार के महत्त्व को समझाना पड़ेगा। धन के स्नेहमोह को कम करना पड़ेगा। आज एक बड़ी समस्या और सामने आ रही है, समाज व संस्था के कार्य हेतु नये कार्यकर्ता नहीं मिलत। क्योंकि सेवा की भावना दिन पर दिन कम होती जा रही है। उसके लिये भी प्रेरणा करनी है। गुरु भगवन व्याख्यानो के माध्यम से नई जान फूक सेवा क्षेत्र में आने के लिये युवकों मे। यदि इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो हमारी हजार वर्ष से वारसा म मिले धम स्थान कौन सभालेंगे।

क्योंकि धन धर्म पर हावी हो रहा है

□

हीराचन्द बैद

आज जैन समाज में उत्सव महोत्सव, आराधनाये, तपस्याये, तीर्थ यात्राये खूब बढ़ रही हैं। ऐसा दिखता है जैसे जैन शासन का सूर्य खूब दमक रहा है, चमक रहा है। जैनतर समाज यह समझने लगे है कि जिनेश्वर के प्रति भक्ति श्रद्धा जितनी जैनो मे है उतनी और समाजों मे नही।

पर इसका एक दूसरा पक्ष भी है जो स्वय जैन समाज मे घर बनाये हुये है, कि नई पीढ़ी मे धर्म के प्रति श्रद्धा नही है, वह निरतर घटती जा रही है। जहां अन्य लोगों को हमारा धार्मिक विकास दिखाई देता है वहाँ हमें स्वय को धर्म का ह्रास दिखाई दे रहा है। क्या यह वस्तुस्थिति नहीं है? क्या समाज के आगेवानो ने, गुरु भगवंतों ने इस पर चिन्तन किया है कि आखिर यह दृष्टि भेद है क्यो दिखाई देता है?

ऐसा ही प्रश्न बार-बार मेरे मन को कचोटता था। मै उनके गुण भगवंतो से इसका समाधान चाहता था, पर मुझे सन्तोष नही हुआ। यही प्रश्न एक बार मैंने राष्ट्र संत आचार्य श्री पद्मसागर सूरीश्वर जी के सामने प्रस्तुत किया। उनका दिया हुआ समाधान मेरे इस प्रश्न का सही उत्तर प्राप्त करने मे सहायक बना। उन्होंने एक दृष्टान्त के माध्यम से मुझे समझाया। एक ऐसा रोगी है जिसके तन मे अन्दर भी रोग है और शरीर के ऊपर भी रोग ने दुखाया है। वैद्य ने रोगी की हालत देख कर दो दवाये बताई, एक मुँह से पीने के लिये, दूसरी बदन पर चोपड़ने (मालिश करने) के लिये। और आश्वासन दिया कि जरूर जल्दी ही रोगी को आराम मिलेगा। बराबर रोगी को दोनो तरह की दवाओं का सेवन कराया गया। पर देखा यह गया कि कुछ भी लाभ नही हुआ। कुछ दिन बाद वैद्यजी को फिर बुलाया गया। उन्होने आकर मरीज की स्थिति देखी, उन्हें बडा आश्चर्य हुआ। यह पहला ही अवसर था जब इन दवाओं से ऐसे रोगी को लाभ न हुआ हो। वैद्यजी ने रोगी को दवा देने वाले परिचारक को अपने सामने दवा पिलाने व शरीर पर मालिश करने को कहा। जैसे ही दोनों दवाओं का उपयोग करते वैद्यजी ने देखा, उन्होंने अपना हाथ सर पर रखकर लम्बी सास ली। बात ही ऐसी थी। दवाओं का प्रयोग उलटा हो रहा था। पीने की दवा चोपड़ी जा रही थी और शरीर पर मालिश करने की दवा पिलाई जा रही थी। जहां भूल मे भूल हो वहां उसका परिणाम कैसे आवे? ठीक रोगी की जैसी स्थिति हमारी हो रही है। हम मरीज हैं, साधु भगवत वैद्य है उपकारी है। मालिश की दवा धन है। और अन्दर पीने की दवा धर्म है। आज जो धर्म शरीर मे अन्दर मे पैठकर आत्मा का भूषण बनना चाहिये था वह तो ऊपरी दिखावे, मालिश करना की तरह बनकर रह गया है और धन जो ऊपरी भूषण बनने के लिये था वह धर्म के स्थान पर अन्दर बैठ गया है। धन हमारी आत्मा बन गया है और धर्म मात्र शरीर पर रह गया है।

लक्ष्य-प्राप्ति का मुख्य द्वार समर्पण

□

विद्युत् चरण रज नीलाजना श्री "जैन सिद्धान्त विशारद"

एक ही मन्त्र, एक ही गुरु के मागदशन का अवलम्बन हान पर भी विभिन्न शिष्या की आत्म प्रगति अलग अलग होती है। काई तेजी म आत्म विकास करता है ता कोई मथर गति से।

अजुन और दुर्योधन दोना ही एक गुरु के शिष्य थे, दोना ने एक ही गुरु क सान्निध्य म अध्ययन किया था पर एक सभी की आखा का तारा बना हुआ था ता दूसरा काटे की तरह चुभ रहा था। इसका क्या कारण था? क्या गुरु ने दाना को अलग अलग शिक्षा दी थी? नहीं, भारतीय मनुष्या न इसका उत्तर एक ही वाक्य म देते हुए कहा है कि 'अध्यात्म क्षेत्र मे श्रद्धा की शक्ति सर्वोपरि है।" अजुन म गुरु क प्रति श्रद्धा और समपण था। इसी श्रद्धा ने अजुन को आगे बढ़ाया था। अजुन ने विनय और नम्रता से ही सभी के मन का जीता था और दुर्योधन मे यही सबसे बडी कमी थी कि वह हमशा पूज्य जना के सामने भी अकड़कर ही पश आता था। इसी के परिणामस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ जिसम उसकी हार और पाण्डु पुत्र अजुन की जीत हुई थी।

श्रद्धा विहिन क्रियाएँ सवथा निरथक हाती हैं। श्रद्धा से की गयी क्रियाएँ ही हमारे जीवन को सफल साधक और उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकती है।

मीरा ने तो अपनी श्रद्धा भक्ति से एक पत्थर की मूर्ति को भी सजीव बना लिया था। ता जब पत्थर की मूर्ति भी बोलने लग जाय तो क्या हम साक्षात् अपने गुरु के मन को श्रद्धा और समपण से नहीं जीत सकते? अवश्य स्वय के अदर ही कोई कमी ढूढनी चाहिए। अजुन को इसी सच्चे समपण के कारण द्रोणाचाय ने अपने पुत्र से भी बढकर वात्सल्य दिया था।

कहते हैं कि गुरु अपने शिष्य म शक्तिपात करते हैं। वास्तव मे द्रोणाचाय ने, जो शक्ति अपने पुत्र को देनी चाहिए, वह शक्ति अजुन मे भरी थी। इसका एक ही कारण था, अजुन ने अपने अस्तित्व को पूणरूप से गुरु चरणा मे समर्पित कर दिया था। इसी दृष्टात मे हमे ज्ञात होता है कि उनके हृदय मे अजुन के प्रति कितना अपूव वात्सल्य था। जब शिष्य गुरु की हर इच्छा को अपना आचरण और कतव्य बना ले तो वह अवश्य ही उनका कृपापात्र बनकर अनुग्रह प्राप्त कर सकता है। आवश्यकता है अपने आपको विलिन करने की।

एक बार पानी ने दूध से कहा, "वाह! यह ससार कितना मूख है, वास्तव म उसे सही मूल्याकन करना नहीं आता।' दूध न पूछा 'क्या भई? ऐसी क्या वात हो गयी? पानी ने कहा 'देखो, लोगो न तुम्हे कितना मूल्यवान समझा है।

अतः हमें योग्य धार्मिक शिक्षण मिले, सेवा के प्रति हमारी भावना जागृत हो। धन के प्रति ममत्व कम हो। धन के सदुपयोग द्वारा परोपकार हमारे जीवन का लक्ष्य बने। हमारी धार्मिक क्रियायें प्रदर्शन न बनकर जीवन की दशा को सुधारने, विकसित करने का माध्यम बने।

हमारे महर्षियों ने उपधान, तपस्या, व ज्ञान ध्यान के जो योग बताये है वे इसीलिये है कि हम आगे बढे, आत्मा के विकास में तत्पर हों।

उपधान व अन्य क्रियायें कर भाविकजन समाज मे प्रतिष्ठा व उच्च स्थान प्राप्त करते ही है उनकी आत्मा मे निर्मलता आती ही है, हम सब उनसे प्रेरणा ले और अपने जीवन को ऊँचा उठावे यही भावना।

एक अंग्रेज विद्वान् ने दो नियों में हम सबके लिये एक आदर्श प्रस्तुत किया है वह हम सबके लिये आदर्श बने।

It is nice To the Important, but it is much Important to be nice.

सद्गृहस्थ उपधान में अपने अर्थ का सदुपयोग कर महान् पुण्य का अर्जन करते हैं पर उसका लाभ आराधना के माध्यम से उपधान करने वाले सही ढंग से उठा पाये तो ही अर्थ के सद्व्यय की सार्थकता है।

जोरावर भवन
जौहरी बाजार
जयपुर

●

हमारी आत्मा मे तुच्छ अहंकार का जो कचरा छिपा हुआ है, वही अधोगति का मूल कारण है। आचार्य हरिभद्र सूरि परम विद्वान् होते हुए भी निरहंकारी थे, अहंकार शून्य थे। उनके शब्दो मे प्रेम माधुर्य एवं सरलता के दर्शन होते है। सत्य तो यह है-गूढ चिन्तन ही हमे निराभिमान की भूमिका तक पहुँचा सकता है।

—गणि मणिप्रभसागर

☐

तपस्या का अर्थ है—अपनी समस्त इन्द्रियों को नियन्त्रित कर आत्माभिमुख होना। तपश्चर्या का केवल इतना ही अर्थ नहीं है कि हम भूखे रहें—यह तो पहली सीढी है। मन का सम्बन्ध जब तक शरीर के साथ है तब तक संसार है, ज्योंही मन का संयोग आत्मा से होने लगता है, तप का प्रभाव प्रारम्भ हो जाता है।

—गणि मणिप्रभसागर

अहिंसा विश्व शान्ति व सुख का अमोघ अस्त्र

अर्चना चरार

अहिंसा वास्तव मे सिद्धान्त मात्र नही वरन् जीवन का एक मूल अग है जिसके द्वारा प्राणी मात्र अपने जीवन का सर्वांगीण विकास कर सकता है।

आज हमारे चारो ओर विध्वसकारी शक्तियाँ अपना ताण्डव दिखा रही है। कही रोगो का प्रकोप है, तो कही काल अकाल भूकम्प आदि, ये तो वे कारण हैं जिनसे प्रकृति अपना सतुलन बनाये रखने म सहयोग प्राप्त करती है किन्तु आज हर बडे राष्ट्र ने अणु परमाणु बमो का आविष्कार कर लिया आपस म अधिक से अधिक शक्तिशाली बनने क लिये होड सी मचीहुई है। उसके लिये हर राष्ट्र बडी बडी सनाओ के निर्माण म लगा हुआ है। प्रत्येक प्राणी इस बात को जानता है कि ये सब शान्ति नहीं वरन् अशान्ति का वातावरण ही उत्पन्न करेंगे। और हिंसा बढेगी।

अहिंसा का तात्पय केवल किसी को शारीरिक चोट पहुँचाना ही नही है। वरन् अहिंसा मे तात्पय किसी भी प्राणी द्वारा किसी भी अन्य जीव या प्राणी को स्वय के व्यवहार से चाहे वह शारीरिक, मानसिक या भावनात्मक किसी भी रूप म हो चोट नही पहुँचाये। होता है।

यदि कोई व्यक्ति कहता है कि वह अहिंसा-वादी है, उसने अपने जीवन मे कभी किसी को नही सताया, नही मारा तो आवश्यक नही कि वह व्यक्ति अहिंसक हो जायेगा वरन् मन वचन, काया एव अपने किसी काय के द्वारा किसी को आघात नही पहुँचाया हो वही व्यक्ति अहिंसक कहलाने के लायक है।

कई बार हमार द्वारा अनजाने मे ही किसी का बुरा हो जाता है, चाहे हमारे मन मे उसका बुरा करने की भावना निहित न हो फिर भी यदि किसी का बुरा होता है तो वह क्षम्य है अर्थात् क्षमा के योग्य है। क्योकि उसके मन म निहित भावना बुरा करने की नही थी। जबकि ठीक इसके विपरीत यदि किसी व्यक्ति के मन मे किसी के प्रति बुरे की भावना से और बदले मे अच्छा हो जाये तो ऐसे म वह व्यक्ति अक्षम्य होगा अर्थात् क्षमा के योग्य नही होगा क्योकि उसने मन की भावना बुरा करने की थी।

आज जब व्यापक स्तर पर विश्व मे अशान्ति का जोर है, एसी स्थिति मे अहिंसा रूपी शस्त्र की अत्यधिक आवश्यकता ह। अहिंसा किसी व्यक्ति विशेष, देश या जाति की निजि सम्पत्ति नही वरन् सम्पूर्ण मानवता की सम्पत्ति है। अहिंसा कायरो का नही वरन् वीरो का अस्त्र है। विचार आचार व उच्चार द्वारा किसी जीव की हिंसा न हो, वही अहिंसा है।

वह तुम्हे पैसों से खरीदता है जबकि मुझे मुफ्त में। यद्यपि तुम्हारे विना तो काम चल सकता है पर मेरे विना नही। ऐसा कुछ उपाय करो कि मैं भी तुम्हारे जैसा वन जाऊँ।" दूध ने कहा, "वहुत अच्छा है। यदि तुम्हे मेरे जैसा वनना है तो इसके लिए वहुत कठिन साधना करनी होगी। अपना वर्ण, गंध आदि सव कुछ वदलना होगा।" अरे! "जैसा आप चाहो, मैं करने को तैयार हूँ।" पानी के यह कहने पर दूध ने उसे कहा, "तो समा जाओ मुझमे।"

पानी ने वही किया। एकमेक हो गया दूध मे और वह भी मूल्यवान वन गया। तो शिष्य भी यदि पानी की तरह अपने आपको समाविष्ट कर दे तो अवश्य ही उसमे रहा हुआ गुरुत्व प्रकट हो सकता है। उसे तो गुरु को इस प्रकार का श्रद्धा-केन्द्र वना देना चाहिए कि जिससे सारा द्वैत समाप्त हो जाय।

उपधान भी एक प्रकार से श्रद्धा मे स्थिर होने का माध्यम है। इसमें हम गुरु मुख से सूत्रों का श्रवण करते है जिससे हमारी आत्मा धर्म में आस्थावान वनती है। यदि हम श्रद्धा और आस्था से कोई क्रिया करते है तो इससे अवश्य ही हमारे कर्म टूट सकते है। श्रद्धा विना की गयी क्रियाएँ निष्प्राण होती है, जैसे कि आनंद घनजी महाराज ने कहा है--

"शुद्ध श्रद्धा विना सर्व कीरिया करी,
छार पर लीपणो तेह जाणो।"

शुद्ध श्रद्धा विना की गयी क्रियाएँ उसी प्रकार निरर्थक होती है जैसे राख पर लीपना। सभी उपधानवाही वीतराग प्ररूपित धर्म के प्रति दृढ आस्थावान वने, हृदय का तार हरपल परमात्मा से जुड़ा रहे—

यही शुभकामना......

सुख व दुःख दोनो ही एक सिक्के के दो पहलू हैं तथा दोनों ही संसार के परिणाम हैं। जो व्यक्ति इन दोनों को जीत लेता है वही परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

एक गोल वस्तु, जैसे फुटबॉल हो, उसके मध्य भाग पर रखी हुई वस्तु ही स्थिर रह सकती है। इधर-उधर होने से वस्तु नीचे गिर जायेगी। यही स्थिति सुख और दुःख की है। सुख, दुःख दोनो ही संसार के तत्त्व हैं। दोनों में अलग समत्व की स्थिति में ही परमात्मा का आनन्द प्राप्त हो सकता है।

—गणि मणिप्रभसागर

भगवान् महावीर का दर्शन और साम्यवाद

□

हीरालाल जैन

भगवान महावीर के दर्शन के तीन प्रमुख मुद्दे हैं—अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्तवाद। महावीर के उपदेश का केन्द्र व्यक्ति है समाज नहीं। उनकी मान्यता थी कि यदि व्यक्तियों का सोच और आचरण सही होगा तो उनसे निर्मित समाज स्वतः ही सुधर जायेगा। महावीर के दर्शन के समष्टि प्रभाव की विवेचना करने से पहले यह उचित होगा कि उनके उपदेश के इन तीन मुख्य मुद्दों की कुछ विस्तार से चर्चा करें।

अहिंसा—महावीर की अहिंसा जीव न मारने या जीव दया मात्र तक सीमित नहीं थी, उनके अर्थ में किसी व्यक्ति के मन, वचन और काया के किसी व्यवहार, कटुवचन या आचरण से मनुष्य ही नहीं किसी जीव को भी यदि कष्ट पहुँचता है तो वह हिंसा ही है। किसी का शोषण, समाज में किसी के साथ भेदभाव या किसी पर क्रोध या अन्यायपूर्ण व्यवहार उनकी परिभाषा के अनुसार हिंसक कार्य है। महावीर की अहिंसा डरपोक, क्लीव और कायरों तथा अकर्मण्य लोगों की आड़ नहीं होकर वीरों का आभूषण है। इसीलिये महावीर ने अहिंसा को परमोधर्म बताकर अन्याय का अहिंसक तरीके पर प्रतिकार करने तथा अपने से कमजोर के अपराध क्षमा कर देने का विधान किया था। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' की उक्ति भी इसी संदर्भ में प्रचलित हुई। स्पष्ट है कि महावीर की अहिंसा के सिद्धान्त में विश्वास रखने वाला और तदनुरूप आचरण करने वाला व्यक्ति किसी का शोषण नहीं करेगा, किसी के साथ भेदभाव का व्यवहार नहीं करेगा और किसी के साथ न ऐसा व्यवहार ही करेगा जिससे उसे पीड़ा हो और संक्षेप में प्राणि मात्र के साथ ऐसा व्यवहार करेगा जिसकी वह दूसरों से अपने प्रति व्यवहार की अपेक्षा रखता।

अपरिग्रह—अपरिग्रह का अर्थ है धन या किसी वस्तु का अपने निमित्त संचय न करना ही नहीं वरन् उत्तरोत्तर अपनी सामान्य आवश्यकताओं में भी कमी करते हुये सर्वस्व त्याग कर देना। सादा जीवन उच्च विचार वाली उक्ति अपरिग्रही भावना की ही देन है। सच्चा अपरिग्रही तपस्या द्वारा तथा स्वरूप कष्ट सहकर त्याग का चर्मोत्कर्ष लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास करता है। ऐसा व्यक्ति सम्पत्ति और सम्पन्नता के बीच एक सच्चे ट्रस्टी की तरह जल में कमल पात के समान निर्लिप्त और निस्पृह जीवन व्यतीत करता है। एक अपरिग्रही व्यक्ति अन्यायपूर्ण, भ्रष्ट और गलत तरीकों से धन संग्रह और लोगों के शोषण का स्वप्न में भी समर्थक नहीं हो सकता है।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने तो यहाँ तक कहा है कि "जैन धर्म अपने प्रथम व महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त अहिंसा के द्वारा विश्व में शान्ति स्थापित करने का बीड़ा उठा सकता है।" आज जबकि मानव समाज विश्व युद्ध की आशका से शंकित है। राष्ट्र-राष्ट्र मे वैमनस्य की भावना है। शान्ति व विकास के नाम पर वृहद् स्तर पर नर-संहार हो रहा है। ऐसी परिस्थिति मे यदि शान्ति की प्राप्ति सही अर्थो में प्राप्त करनी है तो उसके लिये केवल अहिंसा ही एक साधन मात्र है। अहिंसा के द्वारा विश्व की जटिलतम समस्यायें भी समाप्त की जा सकती है।

आज विश्व मे शान्ति स्थापित करने के लिये वैज्ञानिक नये-नये आविष्कारो में जुटे हुये है। उनमे से कई आविष्कार अभिशाप बन कर सामने आये है। वर्तमान मे विश्व मे अणु, परमाणु, हाइड्रोजन बमों इत्यादि का निर्माण चल रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सर्वे के अनुसार वर्तमान में विश्व मे 50 हजार से अधिक अणु, परमाणु शस्त्र विद्यमान हैं। इन शस्त्रों की घातक शक्ति दस लाख अणु बम जितनी है। कभी यदि संयोग वश या यंत्री भूल से यदि बम फूट पड़ा तो नर-संहार का वीभत्स रूप सामने आयेगा, जिसे देखने के लिये शायद ही कोई प्राणी मात्र बच पायेगा। जापान के दो महानगरों हिरोशिमा, व नागासाकी इसके जीते जागते उदाहरण है जहां की भूमि आज भी बंजर है और वहां के प्राणी भी सामान्य प्राणियों के समान नही है। वहां के लोग आज भी उनके प्रभाव से अछूते नही हैं।

अतः वर्तमान में इस स्थिति से उबरने के लिये अहिंसा एक अमोघ अस्त्र है। इसके समक्ष अन्य शस्त्रों का कोई मुकाबला नही है। अहिंसा में दूसरों के दमन की नहीं, वरन उत्थान की भावना होती है।

अतः अहिंसा द्वारा ही विश्व में सेवा, प्रेम, त्याग, करुणा, सत्यादि उदार प्रवृत्तियों की स्थापना की जा सकती है। अहिंसा की एक चिन्गारी ही विश्व में व्याप्त अशांति को दूर कर सकती है। वर्तमान की वैज्ञानिक शालाओ मे विनाशकारी साधनों का निर्माण हो रहा है तो अहिंसा की अनन्त शक्ति में रक्त संहारियों को वश में करने को मूल मन्त्र के दर्शन हुये है।

अहिंसा के द्वारा ही भारत ने सहस्रों वर्षों की दासता से मुक्ति प्राप्त की है। आज सम्पूर्ण मानव समाज के पास यह अमोघ अस्त्र है और इसके द्वारा हम सब मिलकर शान्ति की स्थापना की ओर कदम उठा सकते हैं। आज आवश्यकता है तो किसी ऐसी व्यक्ति की है जो आगे बढ़कर अहिंसा की चिन्गारी प्रज्जवलित करे, जिससे सम्पूर्ण मानव समाज को शान्ति की ज्योति मिल सके और सम्पूर्ण मानव समाज द्वारा सम्पूर्ण विश्व में अखण्ड शान्ति की पावन ज्योति जलाने मे सहयोग मिल सकेगा, इसी आशा के साथ 'अहिंसा ही धर्म, अहिंसा ही कर्म' का नारा बुलन्द करती है।

520–A
तलवण्डी
कोटा–5
(राजस्थान)

अभिनन्दन

संयोजक

परमपूज्य महाराज महाव गणिमणि प्रभसागरजी महादय ।

हम सब दादानर मनावारे,
तप उपधान करायो यहाँ पर आनन्दआयोरे
श्री सौभागमल जी लोढा के मन मे ख्यात समाई,
सभी कुटुम से सहमति आयी भलावान यह भाई ॥
ममता नयी शान्ति देवी भी साथ रही प्रियतमके,
इक्यावन दिन का तपकोना भाग्य खुले जीवन के ॥
निमल काया करन भाई तप उपधान म आवो,
सद्गुरु की शिक्षा म रहकर जीवन सफल बनावो ॥
प्रभुता पाकर बुरा न करना सीख लेवो इस जग मे,
सत्य अहिंसा को अपनावो कटकरहे न मन मे ॥
भक्ति भावना नन मे करना पाप कपट से डरना,
दीन दुखी पर दया भाव रख सारे सकट हरना ॥
सागर सम गम्भीर बनावो मानव जीवन अपना,
जीवन क्षणिक समझकर भाई हर पल प्रभु को जपना ॥
गयी रात को भूल भुलाकर सग्रह अधिक न करना,
झूठ बालना पाप समझना चोरी से भी डरना ॥
रत रहनानित भले कर्म मे तन मन सबल बनाना,
ब्रह्मचय व्रत पालन करे 'कल्याण मार्ग अपनाना ॥

निवेदक

कल्याण शरण शर्मा मुनीम
दादावाडी मालपुरामयस्टाफ

आयोजक

पूज्य गणमान्य श्रीसौभागमलजी लोढा टोंक ।

सपरिवार

शरण गुरुदेव की आये,
सभी हम मन मे हर्षाये ॥ टेर ॥
श्री गणिवय मणि प्रभु ने,
नया पथ हमको दर्शाया
सौभागी मनुज अपनाकर,
जगत म बहुत हर्षाये ॥ १ ॥
भाग्य के भोग को काटो,
जगत जजाल को छाँटो,
गरल की व्याधि को हरने,
सुधा भी सरस बपाये ॥ २ ॥
मनो मालिन्यता छाडो,
गुरु के हाथ नित जोडो,
लगन से मूढता तोडो,
ज्ञान के दीप जल जाये ॥ ३ ॥
लोभ के भवर से बचना,
मोह के फाँस से हटना,
ढाल सच नित्य जीवन मे,
प्रेम की धार बह जाये ॥ ४ ॥
टाकना रोकना सीख,
अनुज को द्रवित हो दीखे,
वह "कल्याण' सबही को,
ज्योत की किरण दर्शाये ॥ ५ ॥

अनेकांतवाद—महावीर ने अपने मत को ही लक्ष्य प्राप्त करने का एक मात्र सही रास्ता मानने का कभी दुराग्रह नही किया। उनकी मान्यता थी कि सत्यम् शिवम्, सुन्दरम् के लक्ष्य प्राप्त करने के और भी रास्ते हो सकते है। इसी कारण महावीर का मत अनेकांतवाद भी कहा जाने लगा। महावीर की इस मान्यता से ज्ञान विज्ञान चिंतन मनन और सोच समझ के मार्ग को अवरुद्ध नही होने दिया और वैचारिक क्रांति की धारा को सतत प्रवाहमान रखा। धर्म हो या राजनीति, मत दुराग्रहिता ने पिछले दो हजार वर्षों में इतने भयकर युद्ध, करोडों लोगों का नर-सहार और तबाही मचायी है कि सोचते ही सिहरन होने लगती है।

अब हम साम्यवाद की थोडी चर्चा करें। साम्यवादी व्यवस्था का लक्ष्य माना गया है—हर एक के लिये आवश्यकतानुसार पारिश्रमिक एवं हर एक के द्वारा अपनी क्षमता के अनुसार काम तथा बदलाव के दौरान स्थापित सर्वहारा वर्ग की अधिनायक शाही और राज्य सत्ता का शनैः शनैः विलोप। सोवियत रूस मे समाजवादी क्रांति को हुए बहत्तर वर्ष हो गये पर क्या वह अपने घोषित लक्ष्य की दिशा मे कुछ भी आगे बढ़ पाया? एक निष्पक्ष विवेचक द्वारा बे-हिचक उत्तर दिया जा सकता है कि समाजवादी क्रांति के सर्जक और पथ प्रदर्शकों के लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाने से राज्य सत्ता का विलोप होने की दिशा मे प्रगति करने के बजाय वहां सत्ता का इतना अधिक केन्द्रीयकरण हो गया कि उसने निरंकुश तानाशाही का रूप अख्तियार कर लिया। सोच और अभिव्यक्ति पर इतना सेंसर होने से देश एक [illegible] जेल खाना बन गया।

महावीर ने अपने अहिंसा, अपरिग्रह और [illegible] के [illegible] सिद्धान्तों से [illegible] व्यक्ति को बदल कर एक समतावादी समाज की स्थापना की। उनकी यह मान्यता कि [illegible] क्रांति का आधार होता है सही होते हुए भी उसका दूसरा पक्ष भी उतना ही सत्य है कि समाज की परम्परा और सस्कारो का व्यक्ति के जीवन पर स्थायी और अमिट प्रभाव पड़ता है। इसलिये जब तक व्यक्ति के साथ ही समाज बदलने की प्रक्रिया को जोडा नही जायेगा व्यवस्था बदलने का मतव्य पूरा नही होगा। यही कारण है कि महावीर के अनुयायी ही आज सबसे अधिक परिग्रही, पर-पीडक और दुराग्रही बने हुए है इसी तरह की खामी साम्यवादी क्रांति मे भी रही। उन्होने सत्ता के बल पर समाज व्यवस्था तो बदलने का प्रयास किया पर साथ मे व्यक्ति की मनोवृत्ति बदलने की ओर कोई ध्यान नही दिया। नतीजा हुआ कि लक्ष्य भ्रष्ट होने के साथ ही प्रति-क्रांति की भूमिका भी बनने लगी। उपरोक्त विवेचन से यह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है कि आज की विषमता को समाप्त करके समतावादी समाज की स्थापना के लिये चाहे हम भगवान् महावीर द्वारा बताये मार्ग पर चलें या साम्यवादी क्रांति पथ के अनुसार काम करें, हमे व्यक्ति एव समाज दोनों को बदलने का कार्य साथ-साथ चलाना होगा। इस क्रांति के संयोजन कर्ताओं का जीवन व्यवहार अपने आदर्श के अनुरूप सादा और त्यागमय होना चाहिये। तब ही वे समाज को समता के उच्चादर्श से अनुप्राणित कर सकेंगे। इसी तरह राज्य सत्ता के द्वारा भौतिक समता स्थापित करने से समतावादी समाज की स्थापना सम्भव नही है उसके लिये व्यक्ति की संग्रह एव भोग की मनोवृत्ति को अपरिग्रह एवं त्याग की मानसिकता मे बदलना भी अनिवार्य है।

रामपुरा बाजार
कोटा-6 (राज०)

चरित्र निर्माण में नारी का महत्त्व

विमला जैन

नारी शब्द ना+अरि से मिलकर बना है इसका अर्थ है नारी किसी की शत्रु नहीं हो सकती। नारी का हृदय प्रेम व वात्सल्य का सागर है। भारतीय संस्कृति में नारी को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। मनु ने तो यहा तक कहा है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"

अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं। नारी शीलवान हो, निष्ठावान हो गुणवान हो, चरित्रवान हो तो उसकी पूजा होती है। जिन्दगी के हर मोड पर स्त्रियों ने पुरुषों का साथ दिया है हमारे सामने सीता जैसी पत्नी, चन्दनबाला जैसी सती तथा अनेक ऐसी महिलाओं के उदाहरण हैं जो बहुत विदुषी थी। किसी भी देश की उन्नति तथा विकास का उत्तरदायित्व बहुत अधिक उस देश की स्त्रियों पर निर्भर करता है। जीवन में चरित्र का विशेष महत्त्व है। सद्गुणों से पूर्ण जीवन ही सच्चा जीवन है। चरित्र के निर्माण में नारी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। नारी माता है, वह अपनी सन्तान के चरित्र निर्माण में महान् योगदान कर सकती है। वह सन्तान के पालन पोषण के साथ उसे योग्य बना सकती है। शिवाजी, नैपोलियन आदि महान् पुरुषों की मातायें भी महान् थीं। बच्चा एक गीली मिट्टी के समान होता है। जैसे कुम्हार गीली मिट्टी में इच्छानुसार बर्तन बना सकता है उसी प्रकार नारी अपने बच्चों के जीवन को इच्छानुसार बना सकती है। वह उनमें अच्छी व बुरी आदतों के बीज बो सकती है। बच्चों के अच्छे व बुरे चरित्र का निर्माण नारी के अपने हाथों में है। मनोविज्ञान के अनुसार बच्चे वातावरण से प्रभावित होते है, बच्चे जैसा देखते हैं उसी का अनुसरण करते है। नारी को अपने घरेलू व आसपास के वातावरण को अच्छा बनाना चाहिये। झगडालू परिवार के बच्चे भी झगडालू बनते हैं। बच्चों का अधिकाश समय घर में व्यतीत होता है। घर का रहन सहन, खान पान, उठना बैठना जैसा होगा उसी के अनुसार बच्चों में आदतें विकसित होंगी। घरेलू काम की जिम्मेदारी नारी पर है इसलिए घरेलू वातावरण को अच्छा बनाये रखने की जिम्मेदारी भी नारी की है। वह अपने घरेलू वातावरण को अच्छा व सुन्दर बनाकर ही बच्चों के चरित्र का निर्माण सही प्रकार से कर सकती है। नारी अपने बच्चों में धार्मिक संस्कार डालकर उसके जीवन को सुधार सकती है। नवकार मन्त्र का महात्म्य बताकर वह बच्चे को निर्भय बना सकती है कर्मों की विचित्रता बताकर आत्मा ही कर्ता है आत्मा ही भोक्ता है ऐसे भाव बच्चों में भरे जिससे वे गलत कार्य करते हुए रुक जायें और किसी को दुख देने की भावना उनमें न आये। बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए नारी को शिक्षित होना चाहिये। शिक्षा के साथ साथ उसमें अच्छे गुण व संस्कार होने चाहिये। उसका स्वयं का आचरण व व्यवहार ऊँचा होना चाहिये।

नारी बच्चों को बचपन से ही देश भक्ति जैसे गुणों की शिक्षा देकर उनका चरित्र निर्माण कर सकती है। एक सुशिक्षित माता की शिक्षा हजारों गुरुओं से भी बढकर होती है। यह शिक्षा ही बच्चों के चरित्र का निर्माण करती है।

अतः चरित्र निर्माण में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

क्या आप जानते हैं ?

□

संकलन—सुरेन्द्रकुमार लोढा 'पप्पी'

सवर के 108 भेद/कारण होते है, जो निम्नलिखित है :—

3 गुप्ति—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति।

5 समिति—ईर्यासमिति, एषणासमिति, भाषासमिति, आदान निक्षेपण समिति, प्रतिष्ठापन समिति।

10 धर्म—उत्तमक्षमा, उत्तममार्दव उत्तम-आर्जव, उत्तमशौच, उत्तमसत्य, उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआंकिचन्य उत्तम ब्रह्मचर्य,

12 अनुप्रेक्षा—अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म।

22 परिषहजय—क्षुधा, तृषा, शीत, तृण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शैया, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन।

12 तप—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्तशैय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान।

9 प्रायश्चित्त—आलोचना, प्रतिक्रमण, तद्धभय, विवेक, व्युत्सर्ग तप, छेद, परिहार, उपस्थापना।

4 विनय—ज्ञानविनय दर्शनविनय, चारित्र-विनय, उपचारविनय।

10 वैयावृत्य—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, कुल, गण, संघ, साधु और मनोज्ञ।

5 स्वाध्याय—वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश।

2 व्युत्सर्ग—वाह्यउपधि और अभ्यंतर-उपधि।

10 धर्मध्यान - अपायविचय, उपायविचय, जीवविचय, अजीवविचय, विपाकविचय विराग-विचय, भवविचय, सस्थानविचय, आज्ञाविचय, और हेतुविचय।

4 शुक्लध्यान—पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिर्वर्ति।

हो सकता है, संवर के 108 भेदो के कारण ही आचार्यों व साधुओं के नाम के साथ 108 लगाया जाता है। जाप की माला में भी 108 मणियाँ संभवत: इसी वजह से होती है। □

(राज० केकड़ी)

सम्वन्ध मे वहुत नान प्राप्त हुआ । पूजनीय मणि प्रभ सागर जी म सा सुवह क्रिया में जन धम के वारे म नई नई जानकारी देते थे । म सा का व्यवहार इतना सरल और उनकी वाणी में मधुरता लगी कि मेरे भी मन मे जन धम के सम्वन्ध मे जो भी प्रश्न थे उन सभी को पूछने का साहस मैं कर सकी । मैंने कभी सोचा भी न था की गणिवय श्री जो इतने विद्वान् ह उनसे मैं अपने दिल मे उठने वाले छोटे छोटे प्रश्नो का भी निवारण करती । उन्होंने मेरे हर प्रश्न का उत्तर इतने सरल ढग से दिया कि उनकी वाणी म इतना अमृत वरसता है कि उनके एक-एक शब्द मेरे अतर म उतरता गया और उनके प्रति मेरी श्रद्धा और अधिक वढ गई । अव मेरी हिम्मत वढ चुकी थी और मेरे मन म जव भी किसी भी क्रिया के सम्वन्ध म असमजस होता मैं तुरन्त उसका निवारण करने म सा के पास पहुँच जाती । वार वार प्रश्न पूछने पर भी कभी उनके मुख पर रोष द्वेष की रेखा नजर नही आती, हर वार मेरी हिम्मत ही वढाई, हमेशा मुझे उत्साहित किया । उपधान के अतगत सभी को प्रात 3 वजे उठना होता है, उठ कर 100 लोगस्स का काउस्सग करते हैं, लोगस्स का काउस्सग खडे खडे करना चाहिये । यदि खडे नही कर सको तो पदमासन में वैठकर रीढ की हड्डी को सीधी रखकर ध्यान करना चाहिये । 5 वजे प्रतिक्रमण का समय था । प्रतिक्रमण के पश्चात् पडिलेहन विधि करनी । पडिलेहन के वाद अग पडिलेहन उपधि पडिलेहन करने के वाद सामायिक, इसके वाद वस्ती सशोधन के लिये जाते हैं । वस्ती सशोधन करते समय देखना कि कोई पचेन्द्रिय जीव तो नही मरा पडा है या कोई हड्डी वगैरह तो नही पडी है । इसके वाद गणि वय श्री क्रिया प्रारम्भ करवाते ह इस क्रिया के अन्दर 100 खमासमणे भी देने पडते हैं । पहले 50 खमासमणे देते उसके वाद सब वैठ जाते थोडी देरी सभी चीजो का अथ समझाने वाकी के खमसमण फिर ऋषिमण्डल का पाठ सुनाते फिर सामूहिक मन्दिर दशन भक्तामर का पाठ गुरु इक्तीसा, उसके वाद 100 फेरी 10 वजे उघाडा पोरसी की मुहपत्ति पडिलेहन करना फिर व्याख्यान सुनना उसके वाद देववन्दन 20 माला फेरनी । प्रथम उपधान वाले 20 नवकार की माला दूसरे वाले 3 लोगस्स की तीसरे वाले उन-मुथुणम की माला फेरनी, एक दिन उपवास दूसरे दिन एकासना होता है । फिर 3 वजे पुन पडिलेहन की क्रिया करना, शाम को 6 वजे गणिवय श्री क्रिया करवाते । क्रिया के पहले 25 मिनट विपश्यना कराते उसके वाद क्रिया, उसके वाद प्रतिक्रमण होता 8 वजे रात्रि म 35 वोल की चर्चा होती, उसके वाद राई सथारा करते 10 वजे सोना । □

मनुष्य के पास वहुत वडी मौलिक शक्ति है जो अन्य प्राणियो के पास नही है । और वह है—भाषा । मनुष्य ही अपने विचारो को वोलकर अभिव्यक्त कर सकता है । भाषा का यदि दुरुपयोग किया जाये तो उसके द्वारा हमारे भीतर की ऊर्जा नष्ट हो जाती है ।

—गणि मणीप्रभसागर

मेरे अनुभव

□

सुश्री बेला छाजेड़

जिन्दगी मे पहली वार मुझे अपने जैन धर्म मे होने वाली क्रियाओ को करने तथा जैन धर्म के, वारे मे जानने का अवसर मिला। वचपन से आज तक मैं जैन धर्म के वारे मे ज्यादा कुछ नही जान सकी थी। उपधान के सम्बन्ध मे मैंने तो कभी सुना भी नहीं था की ये तपस्या होती कैसी है ? पर जव मेरे नाना जी श्री सौभाग्यमल जी लोढ़ा ने उपधान करवाने के वारे मे हमे वताया तव हमे इस वारे में जानकारी प्राप्त हुई परन्तु फिर भी इसमे होने वाली क्रियाओ से मैं पूर्णत: अनजान थी, फिर जव नानी जी ने इस तपस्या मे वैठने का निर्णय लिया तव मेरे भी दिल में यह भाव आए कि इस उपधान तपस्या को एक वार करके देखना अवश्य चाहिये और वैसे भी मेरे दिल मे जैन धर्म के सम्वन्ध में जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा तो थी ही लेकिन वैठने का निश्चय किया और जयपुर मे ही साध्वी श्री म. सा. प्रवर्तिनी महोदया पू. सज्जन श्री जी म. सा. के पास जाकर इसके सम्वन्ध में जानकारी प्राप्त की उन्होंने वहुत सरल रूप से मुझे उपधान क्रियाओं के वारे मे वताया और साथ मे ये भी वताया की मुझसे भी उम्र मे छोटी-छोटी लड़कियां इस उपधान को पूरा कर चुकी है तव मैंने भी सोचा तब मैंने भी निर्णय लिया मैं भी करूंगी। [illegible] करने पर उन्होंने भी अनुमति प्रदान कर दी। उपधान के भी अपने रूप, [illegible] है अर्थात् वर्तमान समय मे इसे तीन भागों मे विभक्त कर दिया गया है—प्रथम 51 दिन का, दूसरा 35 दिन का तीसरा 28 दिन का। इन तीन उपधान को पूर्ण करने पर ही वास्तविक रूप में उपधान पूर्ण समझा जाता है। इसके अन्तर्गत सभी श्रावक- ाविकाओं को साधुओं का जीवन व्यतीत करना पड़ता है, इस उपधान को करके ही पता लग सकता है कि साधु जीवन मे कितना सुख है।

मैंने 3-12-89 को दूसरे मुहूर्त मे प्रथम उपधान मे प्रवेश किया, उस दिन सुवह मुझे जल्दी उठकर प्रतिक्रमण करना था। घर मे कभी भी 7 वजे से पहले नही उठती पर पता नही उस दिन मुझे किसी ने नहीं उठाया फिर भी न जाने कौन सी शक्ति ने मुझे उठाया। मैं स्वय उठकर प्रतिक्रमण में गई पर एक भाव मेरे मन में अवश्य आया। कि यहाँ मालपुरा मे गुरुदेव की शरण मे आकर मुझमे एक अजव शक्ति आ गई है। वस उसी दिन सुवह मैंने निश्चय किया कि अव चाहे जो कुछ भी हो मुझे ये उपधान पूरा करना है। मैं कभी भी उपवास नहीं करती थी सिर्फ सम्वत्सरी का एक उपवास करती थी फिर भी मैंने इसे करने का निश्चय किया। दो चार दिन तो क्रिया आदि करने मे मन नही लगा। पर धीरे-धीरे सबके व्यवहार देखकर मन लग गया साथ में उपधान करने वाले भी अच्छे थे। यहाँ पर जितना आनन्द मुझे प्राप्त हुआ उसकी तो मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। क्रिया करने में मुझे आनन्द का अनुभव होने लगा। यहाँ पर क्रिया ही नही सीखी परन्तु जैन धर्म के

नमस्कार महामन्त्र की महिमा

डा अमृतलाल गांधी (अवकाश प्राप्त प्राध्यापक जोधपुर विश्वविद्यालय)

जैन दर्शन परमात्मावादी न होकर आत्मवादी है। वह सृष्टि के रचयिता या संचालक के रूप में ईश्वर जैसी किसी शक्ति को नहीं मानता। उसके अनुसार यह सृष्टि प्राकृतिक रूप में अनादि काल से चली आई है और अनंत काल तक चलती रहेगी। इस सृष्टि में अनेकों आत्माएँ कर्म बंधन के कारण भव भ्रमण करती रहती हैं और उनके कर्म टूटने पर वे स्वतः परमात्म स्वरूप बन जाती हैं। जैन दर्शन के अनुसार मोक्ष गति को प्राप्त सिद्ध आत्माएं पुनर्जन्म नहीं लेतीं। अतः जैन दर्शन में अवतारवाद की मान्यता नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार परमात्मा स्वरूप की प्राप्ति किसी अन्य की कृपा या दया का परिणाम नहीं होती है अपितु स्वयं के सफल प्रयासों का ही परिणाम होती है।

जैन दर्शन का शाश्वत सिद्धांत है—

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ॥
उत्तराध्यान सूत्र 20/37

अर्थात् आत्मा स्वयं ही सुख दुःख का करने वाला है उनके फल भोगने वाला है एवं उनमें मुक्ति पाने वाला है। जब तक आत्मा पर शुभ अशुभ कर्मों का आवरण है वह आत्मा मनुष्य, पशु देव और नरक की चार गतियों में भव भ्रमण करती रहती है। परन्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप की आराधना से जब किसी आत्मा के कर्म बंधन समाप्त हो जाते हैं तो वह आत्मा भव भ्रमण से मुक्त होकर अनंत सुख की मोक्षावस्था को प्राप्त हो जाती है अर्थात् वह सिद्ध बन जाती है।

इसीलिये जैन दर्शन में किसी व्यक्ति विशेष का महत्त्व नहीं है और नमस्कार महामंत्र में भी प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ या चौबीसवें तीर्थंकर महावीर को वंदन न होकर वह समस्त अरिहंतो, सिद्धो, आचार्यों, उपाध्यायों, और साधु गणों का वंदन है जो अहिंसा सत्य और तप की आराधना कर रहे हैं अथवा करते हुए सिद्धावस्था को प्राप्त कर चुके हैं तथा जिन्होंने सिद्ध बनने की इच्छा रखने वालों का पथ प्रदर्शन किया है।

परमात्मवादी विचारधारा वाले धर्मों की मान्यता है कि इष्ट परमात्मा का सच्चा भक्त बनने से मोक्ष प्राप्ति संभव है। परन्तु जैन दर्शन में प्रत्येक आत्मा को स्वयं परमात्मा बनने का अधिकार माना गया है। अन्य शब्दों में प्रत्येक भक्त को अपनी आत्म शक्ति का विकास करते हुए स्वयं भगवान् बनने का अधिकार है। जैन दर्शन के अनुसार, मुक्ति किसी दूसरे के हाथ की बात नहीं है अपितु प्रत्येक आत्मा की मुक्ति स्वयं उसी के हाथ में है। अग्रलिखित श्लोक में यह बात भली भांति स्पष्ट हो जाती है।

सत्य

□

संकलन—कमलकुमार लोढा

वोलें सत्य, परन्तु सत्य में,
आकर्षण का मीठापन हो।
ग्रहण करें हम सत्य वही नित,
जो सुरक्षित रस का सावन हो॥
अपने प्रति सत्य होना ही,
सत्य धर्म का सच्चा पालन।
भीतर वाहर एक रूप हो,
तभी सत्य की गंगा पावन॥
सत्यवादी जन पूज्य गुरुवत्,
स्वजन समान सभी को प्यारा।
माता ज्यों विश्वास-पात्र हैं,
निर्मल उसका जीवन सारा॥

तप

आत्म-सूर्य की ऊषा तप है,
जिससे जीवन-क्षितिज चमकता।
विषय-वासना क अंधियारा,
फिर मन-जग में कहीं न दिखता॥
तप है जीवन का चिर शोधन,
परिष्कार का सच्चा साधन।
करें अशुभ वृत्तियां निवारण,
शुभ वृत्तियों का सम्पादन॥
जो साधकजन तपोशील में,
सदैव पलते हैं, बढ़ते हैं।
निज विकास की परम भूमिका,
पर वे आरोहण करते हैं॥

केकड़ी (राज०)

है। मोक्ष की प्राप्ति का लक्ष्य जैन और बौद्ध दर्शन म ही नही अपितु वदिक दर्शन म भी माना गया है। वैदिक दशन मे धर्म अर्थ, काम और मोक्ष चार तथ्य मान गये हैं तथा यह उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को अपने जीवन मे अथ और काम भी धर्म के अनुसार करना चाहिये व मनुष्य जीवन के अतिम लक्ष्य मोक्ष को सदैव ध्यान मे रखना चाहिय।

जैन दशन के अनुसार सिद्ध आत्माओं का पुनजन्म नही होता और वे सिद्ध शिला पर स्थाई रूप मे निवास करती हैं जहा राग द्वेष, काम क्रोध-लोभ आदि कुछ भी नही है अपितु जीवन का वास्तविक सुख परम आनद है जो कभी समाप्त नही होता है। अत सिद्ध आत्माएँ भी हमारे लिये वदनीय एव पूजनीय हैं क्योंकि वे हमारी प्रेरणा स्रोत हैं व उनके पद चिन्हो पर चल कर हम भी उनके साथ बैठने के अधिकारी बन सकते हैं। सिद्ध आत्माएँ भी कभी हमारी ही तरह थी परन्तु उन्होने अपने भव बधनो को काट कर मोक्ष के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया अत हम उनका वदन और अभिनदन करते हैं।

नमस्कार महामत्र के तीसरे पद मे उन समस्त आचार्यों को वदन किया गया है जो तीर्थंकरों द्वारा स्थापित सघ के अनुशास्ता हैं। वे अरिहत परमात्मा के प्रथम व प्रमुख शिष्य हैं तथा उन्हीं की वाणी और विचारों का प्रसार प्रचार करते हुए स्व और पर का कल्याण करने मे लीन रहते हैं। उनका स्वय का लक्ष्य अरिहत/सिद्ध पद की प्राप्ति ह परन्तु साथ ही साथ वे अपने जीवन-पर्यंत स्वय तथा अपने सहयोगी उपाध्यायो एव साधु सतो के माध्यम से तीर्थंकरो द्वारा प्रतिपादित धम और दान की विवेचना एव व्याख्या करते हुए गृहस्थों का माग दशन करते हैं।

आचार प्रधानता आचाय का प्रमुख गुण है। उनके लिये अहिंसा, सयम और तप धर्म के मूल मत्र हैं जिनका वे स्वय कठोरता से पालन करते हैं व करवाने का सदुपदेश देते हैं। इस दृष्टि से उनका स्थान प्रमुख शिक्षकों का है जो अरिहतो द्वारा प्रतिपादित धम व उपदेश सामान्य व्यक्ति को उसकी सामान्य भाषा और शैली मे समझा कर उसे धर्माचरण मे दृढ बनाने का प्रयास करते हैं। वे सम्यक् (सही) ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र के उपासक और उद्बोधक हैं। अत हमारे लिये सवदा आदर पूर्वक वदनीय है। आचाय सदैव अगाध ज्ञान वाले सूत्र-अथ के ज्ञाता व अध्ययन-अध्यापन मे रत रहते है। अत व्यावहारिक जगत् मे उनका जीवन एक ऐसा आदश होना चाहिये कि वे उपाध्यायो साधुओं व अपन अनुयाइयो के प्रेरक बन सकें।

नमस्कार महा मत्र के चौथे पद मे उपाध्यायो को वदन किया गया है जिनका स्थान आचार्यो एव सामान्य साधु सतो के बीच म है। उनका काय अपन आचाय के निर्देशन मे रहते हुए उन्ही के कार्यो मे पूण सहयोग प्रदान करना है। उनका मुख्य दायित्व है ज्ञान की आराधना करवाना। अत उनका विशिष्ट काय साधु सतो को अध्ययन कराना व उनका निरीक्षण नियत्रण करना भी है ताकि वे आत्मोद्धार के अपने पथ पर सही रूप म अग्रसर होते रहे। वैसे ज्ञान और सयम की दृष्टि से आचाय उपाध्याय मे कोई अतर नहीं होता क्योंकि उपाध्याय ही आगे जाकर आचाय बनते हैं।

नमस्कार महामत्र के पचम पद मे विश्व के समस्त साधु सतों को वदन किया जाता है जो क्षमा मूर्ति हैं व अपने पारिवारिक गृहस्थ जीवन का त्याग कर स्व और पर के कल्याण मे अहिंसा, सयम और तप की आराधना म लीन है। समता धारी साधु ज्ञान, दशन और चारित्र मे स्थिर होते हैं व दूसरो को स्थिर करवाते हैं। वे पच परमेष्ठी

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलम श्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद् विमुच्यते ॥

अर्थात् आत्मा स्वयं ही कर्म करती है व उसका फल भोगती है। वह इस संसार मे भ्रमण करती है व मुक्त होने में भी समर्थ है। इसमें अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु संत हमारा मार्ग-दर्शन करते हैं अतः वे हमारी वंदना के अधिकारी है।

जैन धर्म में दिगम्बर, श्वेतांबर, मूर्ति पूजक, स्थानकवासी, तेरापंथी व छोटे बड़े अन्य कई अंतर प्रत्यंतर उत्पन्न हो गये हैं तथा प्रायः प्रत्येक के द्वारा कई नये सूत्र, मंत्र, ग्रन्थ आदि की भी रचना की गई है। तथापि उनमे मूल ग्रन्थो व सूत्रों के सम्बन्ध मे एकमत है तथा नवकार मंत्र यानि नमस्कार महामंत्र वह प्रथम मंत्र है जिसे सभी जैनी बिना किसी भेदभाव के अंगीकार और स्वीकार करते हैं। यह मंत्र जैनो के प्रत्येक घर मे प्रत्येक बालक को सिखाया जाता है। जैन धर्म के किसी भी शास्त्र या सूत्र का ज्ञान नहीं रखने वाला प्रत्येक जैन कम से कम नमस्कार महामंत्र का ज्ञान तो अवश्य रखता है और सुख दुःख के अवसरों पर श्रद्धा पूर्वक इसका स्मरण भी करता है। इस दृष्टि से यह मंत्र जैन परिवारों मे जन्म लेने का एक प्रमाण पत्र माना जाता है।

नमस्कार महामंत्र के मूल सूत्र की प्रथम पंक्ति में अरिहंतों को नमस्कार किया गया है। अरिहंत का अर्थ है जिन्होंने अपने अरि यानी शत्रु का हनन कर दिया है। जैन दर्शन मे आत्मा के प्रमुख शत्रु राग और द्वेष माने गये हैं जिन पर विजय प्राप्त करने वाला ही जिन कहलाता है और जिनका अनुयायी ही जैन कहलाने का अधिकारी है। [illegible] का संदेश है—

"जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ॥

वस्तुतः अरिहंत का अभिप्राय ऐसी आत्माओ से है जिन्होंने समय-समय पर राग द्वेषों पर विजय प्राप्त कर तीर्थंकर या जिनेश्वर का स्थान प्राप्त कर धर्म तीर्थ की स्थापना करते हुए मोक्ष मार्ग के साधनों का संदेश प्रसारित किया है। अतः जैन दर्शन मे अरिहंतों का स्थान सर्वोपरि है। वे हमारी कल्पना के सर्वांगीण आध्यात्मिक गुणों के स्रोत हैं जिनका अनुसरण, अनुसमर्थन और अनुमोदन कर हम भी अपना आध्यात्मिक और आत्मिक विकास कर मोक्ष की सिद्धावस्था को प्राप्त कर सकते है। अरिहंत सर्वाधिक पवित्र एवं सर्वश्रेष्ठ आत्माएं हुई है जिन्होंने राग द्वेष, काम-क्रोध व कषायों पर दर्शन, ज्ञान और चारित्र की आराधना करते हुए व कठोर तपस्या से अपने कर्म बंधनों को काटते हुए सर्वोपरि स्थिति को प्राप्त किया है। अरिहंत सर्वज्ञ यानी सब कुछ जानने वाले होते है क्योंकि उन्हें पांचों प्रकार के ज्ञान अर्थात् मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय एवं कैवल्य प्राप्त होते है। अरिहंतों ने स्वयं की आत्मा का उद्धार किया है इतना ही पर्याप्त नहीं है। उन्होंने धर्म तीर्थ की स्थापना भी की है तथा अनेकों आत्माओं ने उनके बताये मार्ग पर चल कर अपनी आत्मा का उद्धार किया है और हम भी कर सकते हैं। इस दृष्टि से तीर्थंकर वे प्रकाश स्तंभ है जो अज्ञान के घोर अंधकार में ज्योति स्वरूप समस्त भूली-भटकी आत्माओं को राह दिखाते हैं।

नमस्कार महामंत्र के दूसरे पद में [illegible]

अहिसा परमोधर्म

□

विचक्षण शिश साध्वी तिलक श्री

वास्तव म विश्व म यदि सुख मिलता ह ‍तानि हानी ह ता वह केवल अहिंसा धम म ही। अहिंसा का ता य ह किसी भी प्राणी को मन वचन और काया स कभी दु ख न पहुँचाना इस समार म प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है साथ ही सुख शान्ति चाहता है। मभी मानव दु खमुक्त रहना चाहते हैं परन्तु उमम एक स्वाभाविक दुबलता हे हम अपना ही स्वाथ दखते हैं। हमारी अहता ममता मूलक वृत्तियाँ हम अपन क्षुद्र स्वाथ तक ही सीमित रखती हैं अत हम अपनी ही रक्षा तथा उन्नति चाहते हैं। अन्य जीव चाह हैरान परेशान हो जाय मृतप्राय बन जाय, अरे प्राणहीन हो जाय ता भी इसम प्रयाजन परवाह नही हमारा उल्लू सीधा होना चाहिय। अपनी तुच्छ भावना से पर व्यक्ति का पर प्राण का अति तुच्छ ममझ कर अतीव कष्ट दत ह। उनका अहित करत ह एव उन्ह मार पीट करते हैं। हम अपना धम भूल जाते हैं, जा तत्त्व चेतना धम उसम उपस्थित है वही चेतना सुखेच्छा समस्त प्राणियो म विद्यमान है।

आप सुख खोजत है। स्वय के लिय या दूसरा के लिए स्वय सुख शान्ति खोजत हैं ता दूसरे जीवों को दु खी करत हो।

श्री मत बनना चाहत हो, कुछ लाग गरीब रहो पट भर भाजन चाहत हो कुछ लाग भूखे रहेंग।

असख्य जीवो की हिंसा होती है तब बगला बनता है परिवार बढता है सामरिक सुखानुभव होता है। स्वकीय सुख हेतु अन्यो को पीडित करना, जीवन मुक्त बना देना यही दुर्गति का कारण है। प्रकृति न प्रत्येक प्राणी को चाहे छोटा हो या बडा कीट पतग से लेकर मनुष्य तक सबको समान अधिकार दिया है। जीव सत्ता से सभी एक समान है परन्तु यह मनुष्य है जो बुद्धि और चित्त का सर्वोत्तम रूप पाकर अपने को सबका राजा समझता है। अपनी स्वाथ वृत्ति को पुष्ट करने के लिये छल प्रपच, विश्वासघात मिथ्यावाद, स्नेह भग आदि करके मबको दु ख समुद्र म धकेल देता है।

अहिंसा एक ऐसा पावन धम या पवित्र कतव्य है जो सृष्टि मे समुचित व्यवस्था करता है। मानव सुख पूवक जीवन यात्रा कर सकता है। सवत्र ममत्व बुद्धि का प्रकाश होता है।

सोचिए! आप प्रकाश की ओर अग्रसर हैं या अधकार की ओर। प्रकाश में सुख है शाति है अधकार म दु ख और अशाति है। यदि जो आरभ म आसक्त है जीव हिंसा मे आतप्रात है ता घोर अधकार की ओर जा रहा है।

धन सपत्ति के प्रलाभन मे फसने वाले लोग जीव हिंसा प्रचुर धन्धे करते हैं। फ्लेट, फ्लाट, फेन, फान फर्नीचर और फैमिली इन फकार फपनी म अतीव प्रसन्नता का रसास्वादन करते ह।

के वट वृक्ष की जड़ है तथा उत्तरोत्तर आत्मोत्थान में प्रगति करते हुए उपाध्याय और आचार्य भी बनते हैं।

इस प्रकार नमस्कार महामंत्र में अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधुगणों को वंदन किया गया है जो गुणों से सम्बन्धित हैं, न कि व्यक्ति से इनमें उन असंख्य आत्माओं को वंदन किया गया है जिन्होंने आध्यात्मिक उच्च स्तर प्राप्त किया है अथवा करने के मार्ग पर कटिबद्ध हैं।

इसलिए नमस्कार महामंत्र की अंतिम चार पंक्तियों में कहा गया है कि इस पंच परमेष्ठी को किया गया नमस्कार समस्त पापों का नाश करने वाला है और सब मंगलों में प्रथम है। अन्य शब्दों में, यह मंत्र सर्व धर्मों का मूल है तथा विश्व बंधुत्व और विश्व प्रेम का प्रतीक है। इसके उच्चारण, मनन और चिंतन से हमारे राग, द्वेष, मोह आदि का क्षय होकर शुभ भाव प्रकट होते हैं। अतः जैन दर्शन की मान्यता है कि इस मंत्र के कुल अड़सठ अक्षरों में संपूर्ण चौदह पूर्व के ज्ञान का सार निहित है।

उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में निम्न श्लोक में इस मंत्र का महत्त्व संक्षेप में समझाया गया है—

स्मृतं येन पापोऽपि, जन्तुः स्यान्निगतं सुरः।
परमेष्ठि नमस्कार मंत्र तं स्मर मानसे ॥

अर्थात् इसके स्मरण मात्र से पापी प्राणी भी निश्चित रूप से देव गति को प्राप्त करता है। अतः इस परमेष्ठी नमस्कार मंत्र को आप सदैव अपने हृदय में मनन चिंतन करें। अन्य शब्दों में, हम कह सकते हैं कि नमस्कार महामंत्र एक पारस पत्थर की तरह है जो उसके छूने वाले को स्वर्ण बना देता है। नमस्कार महामंत्र का मंगल जिसके अन्त:करण में है, वह उस आत्मा को पूर्ण मंगल रूप बनाकर सिद्ध रूप बना देता है। जैन दर्शन की मान्यता है कि जो व्यक्ति मन, वचन और काया की शुद्धि से नौ लाख नवकार का जाप करता है, वह तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन करता है। जीवन की अंतिम घड़ी में इस मंत्र के श्रद्धा पूर्वक स्मरण मात्र से आत्मा का पुनर्जन्म नीच गति में नहीं होता है। ऐसा मंतव्य विद्वानों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है उसी प्रकार जैसा कि वैदिक धर्म की मान्यता है कि जीवन के अंतिम समय में भी राम का नाम लेने से आत्मा सद्गति को प्राप्त होती है।

नमस्कार मंत्र अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण होने से इसका जाप निश्चित समय पर व निश्चित आसन पर बैठकर करना चाहिये। यह जाप एकान्त स्थान में पूर्व या उत्तर दिशा के सामने बैठकर दीपक, धूप आदि की शुद्धि के साथ करना अधिक उपयुक्त है। परन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जाप करते समय हमारा मन उस मंत्र में पूर्ण रूपेण केन्द्रित होना चाहिये। अन्य शब्दों में, नवकार का जाप करते समय हम नवकार मय बन सकें तब ही मंत्र की सिद्धि एवं सफलता होती है। यह स्थिति निरन्तर अभ्यास से ही आती है अतः हमें इसका प्रारम्भ यथाशीघ्र कर देना चाहिये यदि हमारी आस्था और विश्वास इस मंत्र में है।

●●

पूजा परमात्मा प्रतिक्रमण प्रतिना और पर माथ इन उपकारी पाचो धम मित्रा को भूलकर भ्रमित हो गया है।

भारतीय सस्कृति, धार्मिक वत्ति और आत्मजागृति के लिये सत समागम, सत्शास्त्रश्रवण, सदाचार आचार सुप्रचार मुख्य साधन हैं।

हिंसक वृत्ति का त्यागकर अहिंसा के अवतार बनना है, सभी जीव सुखी हो, नीरोगी बनो, धार्मिक प्रवृत्ति मे गतिशील रहो, यही शुभेच्छा।

साधना का माग हिमालय की यात्रा से भी कठिन है। साधना के माग म काटे भी है और फूल भी। व्यक्ति कांटो स तो अपनी रक्षा कर लेता है पर फूलो के आकषण म फँस जाता है।

काटो की अपक्षा फून ज्यादा खतरनाक ह, क्योकि ये अहकार को जन्म देते ह। अहकार चाहे ज्ञान का हो, चाहे तप का, वह दुगति का कारण बन जाता है।

□

आध्यात्मक और भौतिकता के प्रति जो हमारा दृष्टिकोण है, वह यदि एक दूसरे के विपरीत हो जाये तो हमारे जीवन म सदगुणो की वृद्धि हो सकती है।

हमारा दृष्टिकाण सासारिक साधनो के प्रति असन्तोप का है। हम और पाने की चाह मे दौडते रहत हैं, जबकि आध्यात्मिक के प्रति हमारा दृष्टि कोण सन्तोप का है। यह दोनो बातें ही ठीक नही हैं। इन दृष्टिकोणो में परस्पर परिवतन होना चाहिये।

—गणि मणिप्रभसागर

करुणा दया, सहानुभूति, जीव-रक्षा-दान-पुण्य आदि सभी कल्याणकारी कर्तव्य धर्म को भूल जाते है

परोपकार वृत्ति का नामोनिशां चला जाता है। बस हम सुखी, सब सुखी, अभिमान से उन्नत शिर हो जाता है। घमंड के मारे किसी की आवाज नही सुन पाते सभी ग्रंथों मे यही बताया है कि दया सब धर्म का मूल है। अहिंसा धर्म मे सभी धर्मों का समावेश हो जाता है। अहिंसक करुणा गुण धारक व्यक्ति सर्व प्रिय बन जाता है

हिंसा मूलक सुख-समृद्धि के साधनो को संगृहीत करने के लिये अथक प्रयत्न किया, अब मोक्ष मूलक साधना से समृद्ध होने का भरसक प्रयास करो। असली सुख शांति धर्म साधना से प्राप्त होगी। आधुनिक सुखी मानव के घर मे सब सेट है, टी. सेट है, टी. वी. सेट है, डीनर सेट है, सोफासेट है, कैसेट है, सभी सेट है परन्तु सबके बीच मानव स्वयं अपसेट है—जो अपसेट हो गया है उसको सेट करने का कार्य अहिंसा धर्म का अध्यात्म साधना का है।

हिंसा और प्रतिहिंसा का विषचक्र घूमता रहता है—यह चक्र विनाशकारी खतरनाक है, मरणात्मक, कर्मचक्र से मुक्त होने के लिये अचिन्त्य प्रभावशाली सिद्धचक्र की आराधना सर्वोत्तम उपाय है।

जैन धर्म अहिंसा प्रधान है, हिंसा का विचार आना यह भी धर्म क्षय का कारण है, आत्मा स्वभाव को छोड़कर विभाव में जाना यह भी सूक्ष्म हिंसा मानी गयी है।

भगवान महावीर ने कहा है कि प्राणी मात्र का यही धर्म है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करें, सबको सुख प्रिय है, दुःख अप्रिय है।

पूर्ण अहिंसा का अर्थ है प्राणी मात्र के प्रति मैत्रीभाव, वैर विरोध का त्याग, प्रतिशोध की भावना का परि त्याग।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम।
परोपकार पुण्याय, पापाय पर पीड़नम्॥

अठारह पुराणों मे व्यास ऋषि ने दो बातें कही हैं—सर्व प्राणी का उपकार करना पुण्य है। पीड़ा, दुःख, कष्ट देना महापाप है। केवल व्यास ने नहीं लेकिन वेद उपनिषद्, श्रुत स्मृति, आगम सभी ने अहिंसा को ही परमोत्कृष्ट धर्म कहा है।

सुखाय सर्वजंतुनां, प्रायः सर्वाः प्रवृत्तयः
न धर्मेण विना सौख्यं, धर्मश्चारम्भवर्जनात्।

सर्व जीवों की प्रवृत्ति सुख के लिये होती है। सुख धर्म बिना नही मिलता, धर्म भी आरम्भ समारम्भ हिंसक प्रवृत्ति का त्याग करने से होता है। सुखार्थी को धर्मार्थी और धर्मार्थी को दयार्थी होना पड़ेगा।

मोक्षार्थी को पूर्णरूपेण पापवृत्तियों को छोड़ना पड़ेगा। आज के भौतिक युग में मानव क्षणिक सुख के पीछे पागल की तरह दौड़धूप कर रहा है।

पैसा-पत्नी-परिवार-पद और प्रतिष्ठा की पगार मरुस्थली में फंस गया है, बेहोश बन गया है, रात-दिन पाप-कर्म में मग्न रहता है।

परम कृपालु धर्मनिष्ठा—आत्मिक चिंतन भूल गया है—[illegible] जीवन बन गया, जो [illegible], [illegible], [illegible] का [illegible], न दिन-रात का विचार, [illegible] [illegible] [illegible] हो गया है।

मिलता है हमें रूढ़िगत विचारों को बदलना चाहिए तथा वाह्य साधना से ही अपनी साधना को आंकना नहीं चाहिए। कि हमने कितने व्रत उपवास किये कितनी माला फेरी, कितनी सामायिक की इत्यादि।

वरन् हमारा सारा प्रगम तो अपने मन की एकाग्रता का मूल्यांकन करना है कि हमने अपने मन को कितना वश में किया, कितना समभाव रखा, कितने पूर्वाग्रहों को छोड़ा एवम् कितना आध्यात्मिकता से जुड़े।

विशेष अवसरों जैसे चतुर्मास पर तपस्याओं एवम् प्रत्याखान वालों के नाम जानने में आते हैं जो कि मात्र एक दिखावा है। यह नहीं जाना जाता कि कितना के जीवन में परिवर्तन आया, कितने मन आध्यात्मिकता में जुड़े। जो सिर्फ साधना में सम्पन्न होता है

अतः साधना के साथ चिन्तन अति आवश्यक है। बिना चिन्तन साधना व्यर्थ है और न ही हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है साधना के लिए तो प्राथमिकता है बाह्य क्रिया काण्डों के छुटकारों की। तभी हमारा लक्ष्य सार्थक होगा।

□ □

कौन सा धर्म क्या कहता है? कौन सा धर्म अच्छा है? इत्यादि विकल्पों में मत फंसो। क्योंकि धर्म कभी बुरा नहीं होता है। और जो बुरा है वह कभी धर्म नहीं हो सकता।

'धर्म विशुद्ध तत्त्व है। सम्प्रदाय, परम्परायें तथा प्रणालियाँ उसमें मिलावट नहीं करती। धर्म त्रिकालाबाधित है। अतः विकल्पों के विविध जालों में न फंसकर अपनी प्रज्ञा से, विवेक से अपने आचरणों के नूतन आयाम विकसित करो।

विवेक से किये गये समस्त कार्य स्वतः ही धर्म की श्रेणी में आ जाते हैं।

— गणि मणिप्रभसागर

साधना

□

रीना जारोली

वर्तमान में भौतिक विकास के साथ-साथ धर्म का प्रचार बढ़ रहा है एवम् पहले की अपेक्षा तपस्याएं, शिविर, दीक्षाए इत्यादि अधिक हो रहे हैं।

इन सभी धार्मिक क्रियाओं में साधना का अपना एक दृष्टिकोण है। वर्षों की धार्मिक क्रियाओं के बावजूद भी हम अपनी साधना का तथ्य नहीं जान पाते? इन सभी नियमित क्रियाओं के बावजूद भी हमारे जीवन में परिवर्तन बहुत कम देखने को मिलता है। हम यह नहीं जान पाते कि हमारे जीवन में कितने सद्गुणों का विकास हुआ? कितनी राग-द्वेष में कमी आयी? कितनी शान्ति एवम् समता में वृद्धि हुई।

इन सबके पीछे कुछ न कुछ कारण अवश्य है जिन पर सम्यक् चिन्तन की आवश्यकता है।

धार्मिक अनुष्ठानों में बाह्य क्रियाएं करने में इतना उल्लास, रस नहीं आता जितना कि सम्यक् चिन्तन पूर्ण साधना में। क्योंकि चिन्तन द्वारा ही हमारे मन में एकाग्रता आती है।

साधना का मूल उद्देश्य [illegible] में समझा जाता है। साधनाएं अनेक प्रकार की होती है एवम् अनेक प्रकार से की जाती है। इसमें से कुछ यह है—

(1) चित्त की अधिक से अधिक एकाग्रता।

(2) अधिक से अधिक समय का साधना में उपयोग।

प्रतिदिन नियमित साधना करने एवम् एकांत स्थान में चिन्तन करने से मन की एकाग्रता बढ़ती है। रात्रि में सोते वक्त एवम् प्रातः उठते वक्त चित्त शांत होता है अतः ये दोनों वक्त साधना के लिए उपयुक्त माने गये हैं।

जिस तरह पढ़ना जानने के लिए वर्णमाला का ज्ञान होना जरूरी है। उसी तरह साधना में पूर्व उद्देश्य, तरीकों का ज्ञान जरूरी है। अतः साधना के लिए चिन्तन जरूरी है एवम् चिन्तन के लिए मन की एकाग्रता। चिन्तन में होने वाली क्रियाओं में दिखावा कम होता है और आध्यात्मिकता को महत्त्व मिलता है। मानव मन प्रतिकूल व अनुकूल परिस्थितियों में विचलित नहीं होता।

वही साधना करने योग्य है जो आस्रव को रोककर संवर एवं निर्जरा में सहयोगी हो।

प्रायः साधकों में सम्यग्ज्ञान का अभाव पाया जाता है और इसी [illegible] साधना की ही [illegible] की जाती है यद्यपि मूल सिद्धान्तों को [illegible] साधना की अपेक्षा अधिक महत्त्व देना चाहिए। धार्मिक अनुष्ठानों में प्रायः [illegible] के साथ भी [illegible] [illegible] के लिए जनता की [illegible] पाने के लिए किये जाते हैं जिसमें [illegible] [illegible] की [illegible]

दुश्चक्र जीवन भर चलता रहता है। क्या कभी आपने ख्याल किया कि ऐसा क्या होता है? ऐसा इसलिए होता है प्रतिकूल परिस्थितियों में हमारे अचेतन मन में जो कि ⁹⁄₁₀ भाग है प्रतिक्रिया करता है इस पर हमारा कोई वश भी नहीं है, यह हावी हो जाता है ¹⁄₁₀ भाग चेतन मन का निर्णय हमेशा ⁹⁄₁₀ अचेतन मन से पराजित होता रहता है और इस प्रकार ये विकार हमारे कर्मबंध का कारण बनते हैं।

ध्यान द्वारा अचेतन मन प्रतिक्रिया करने के स्वभाव को बदलने का अभ्यास शरीर पर उत्पन्न सुखद दुखद संवेदनाओं को साक्षीभाव से देखने के अभ्यास द्वारा किया जाता है। हमारी पांचों ज्ञानेन्द्रियों से जब भी सबंधित विषय का स्पर्श होता है यथा रूप का आंख से स्वाद जिह्वा से आदि आदि तभी चेतना का एक खण्ड उस ज्ञानेन्द्रि से जुड़कर उस विषय का अनुभव करता है, सम्बन्धित संवेदना उत्पन्न होती है और मन अपने पुराने स्वभाव के कारण (भोगने के स्वभाव के कारण) उसे बुरा या अच्छा मानने लगता है। बुरा मानना द्वेष के संस्कार और अच्छा मानना राग के संस्कार निर्मित कर बंध के कारण बनते हैं। लेकिन ध्यान के अभ्यास द्वारा उन संवेदनाओं को तटस्थ रूप से देखने पर (उन्हें बिना अच्छा या बुरा माने) समता में पुष्ट होने का अभ्यास मिलता है। सच्चे अर्थों में वीतरागता विकसित होती है। जीवन में सामयिक उतरने लगती है। प्रत्येक क्रिया के प्रति जागरूकता विकसित होने लगती है परिणामस्वरूप अप्रभावित जीवन जीने का प्रारम्भ होता है। भगवान् महावीर से गौतम के यह पूछने पर कि हे प्रभु मुक्ति का मार्ग क्या है? भगवान् ने फरमाया कि हे गौतम तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर अर्थात् सतत अप्रमादित रहो। हमने इस बात को कई बार सुना है कई बार पढ़ा है। लेकिन ध्यान के द्वारा ही इस तथ्य को जीवन में उतारा जा सकता है, जीवन में उतरने पर ही यह मंगलकारी होता है।

यह प्रकृति का नियम है कि जब हम नये बंध नहीं करते तो हमारे पूर्व अर्जित कर्म बंध उदय में आते हैं। वे भी शरीर तल पर विभिन्न संवेदनाओं के रूप में उभर कर आते हैं उन्हें भी यदि साक्षीभाव से तटस्थ हो कर बिना अच्छा या बुरा माने केवल अनुभव करके समता में रहें तो उनकी भी द्रुत गति से निर्जरा होने लगती है। और एक स्थिति यह आती जब हम नये कर्मबंध करते नहीं पूर्व के बंध की उदीरणा करते रहे तो शीघ्र ही हम मुक्त अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं अरिहन्त अवस्था को पा सकते हैं। रास्ता लम्बा एवं कठिन अवश्य है लेकिन इसे पार हमें ही करना होगा क्योंकि हमने ही अज्ञानवश सतत कर्म बंध कर इसे लम्बा बनाया है। लेकिन अब भी अधिक देरी नहीं हुई आवश्यकता है दृढ़ संकल्प लगन एवं श्रद्धा कि यथा शीघ्र इस मार्ग पर यात्रा प्रारम्भ हो सके। यही मार्ग वीतरागता का मार्ग है मुक्ति का मार्ग है जो भी इस पर चलते हैं मुक्ति को प्राप्त होते हैं सदा के लिये जन्म मरण से छुटकारा पा लेते हैं।

(टोंक राज०)

●

साधना में ध्यान का महत्त्व

□

राजेन्द्र पारख,

आगमों में साधक के लिये कहा गया है कि वह आठ प्रहर की साधना में चार प्रहर ध्यान को दें, शेष चार प्रहर स्वाध्याय या अन्य धार्मिक क्रियाओं को। इससे यह स्पष्ट है कि ध्यान, साधना का प्रमुख अंग रहा है। ध्यान को इतना महत्त्व देने का कारण है कि इसके द्वारा कर्मों का संवर एवं निर्जरा दोनों ही संभव है। ऐसा किस प्रकार होता है यह प्रत्येक साधक के लिये समझना आवश्यक है ताकि वह भविष्य में अपनी साधना में ध्यान को भी वांछित समय देकर मुक्ति के मार्ग अपनी गति को त्वरित कर सके।

ध्यान के द्वारा प्रारम्भिक अवस्था में मन को किसी आलम्बन पर केन्द्रित करना होता है यह आलम्बन 'श्वास' है जिसके प्रति सतत जागरूकता विकसित करनी होती, श्वास के आने व जाने पर मन को केन्द्रित करने से मन [illegible] से मुक्त रहता है, और सतत विकल्प द्वारा होने वाले कर्मबन्धों में न्यूनता आकर वह स्वतः अवरुद्ध हो जाता है। परिणाम स्वरूप संवर होने लगता है लेकिन इसके लिए निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है। क्योंकि मन का स्वभाव है सतत किसी न किसी [illegible] करना, इस स्वभाव को बदलने हेतु सतत प्रयास वांछित है। श्वास का आलम्बन अन्य आलम्बनों से श्रेष्ठ इसलिए भी [illegible] है कि मन के स्तर पर उत्पन्न किसी भी विकार और श्वास [illegible] में [illegible] नहीं [illegible] लग जाती है। अस्वाभाविक श्वास पर पुनः मन केन्द्रित करने से उत्पन्न विकार अपनी प्रारम्भिक अवस्थायें (बीज रूप में) ही नष्ट हो जाता है। श्वास का आलम्बन सत्य को जानने में, मन की निर्मलता में सहायक है, यह इन पंक्तियों से स्पष्ट है—

> साँस देखता देखता, चित्त अवचल हो जाय।
> अवचलचित्त निरमल हुवै, सहज मुक्त हो जाय।

श्वास को आलम्बन के रूप में चुनने का दूसरा कारण है मन को अधिक सूक्ष्म बनाना ताकि चेतना के स्तर पर अधिक सूक्ष्म सच्चाइयों को जानने योग्य बन सके और अचेतन मन की गहराइयों तक पहुँच सकें। संभवतया आपको पता हो कि हमारे विकारों की जड़ें अचेतन मन की गहराइयों में छिपी हैं जो कि हमारे मन का $\frac{9}{10}$ है, अर्थात् चेतन मन केवल $\frac{1}{10}$ भाग है, जिसके द्वारा हम किसी प्रकार निर्णय लेते हैं या किसी बात को समझते हैं। यह हमारे दैनिक जीवन का अनुभव है कि यह जानते हुये भी कि गुस्सा करना बुरा है, क्रोध करना बुरा है लेकिन प्रतिकूल परिस्थिति आने पर हम उन्हीं विकारों से ग्रसित होते हैं, और इस दौरान [illegible] भी बुरा [illegible] करना होता है [illegible], कुछ समय बाद होश आने पर पश्चाताप करते हैं कि यह [illegible] नहीं हुआ, [illegible] ऐसा नहीं करना चाहिए। लेकिन

ध्यान' का अर्थ कुछ तत्ववेत्ता विचार शून्य अवस्था भी करते हैं। किन्तु यह उचित प्रतीत नही होता है। विचार शून्य दशा तो मूर्छा या जडता की दशा का प्रतीक है। मन कभी विचार शून्य नही होता है। सिद्ध बुद्ध मुक्त आत्मा भी उपयोग शून्य नही होती है। मन अति चचल और काल की तरह निरतर गतिमान है। उसे निरतर विचार रूपी खुराक चाहिए। पवन और वदर से भी अधिक चचल और गति शीघ्र मन का स्वाध्याय, चिन्तन मनन से कुछ समय के लिए स्थिर तो किया जा सकता है, किन्तु उसे निष्क्रिय—जड नहीं बनाया जा सकता है। उत्तम ध्यान की साधनार्थ ध्यान विधि से पूर्व ध्यान का स्वरूप भेद, लक्ष्य, फल आदि की जानकारी आवश्यक है जिससे उनका उल्लेख प्रथम किया जाता है।

पूर्व म उल्लेखित अशुभ एव शुभ ध्यान के दो दो भेद है। यथा अशुभ ध्यान के आर्त्त ध्यान व रौद्र ध्यान। शुभ ध्यान के धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान। इन चारो ध्यानो की व्याख्या उनके भेद, लक्ष्य आलम्बन उनके फल आदि पर यहा सक्षेप मे उल्लेख किया जाता है।

(1) आर्त्त ध्यान—जो अर्त्त (चिन्ता शोक, दुख) के निमित्त से होवे। इसके चार प्रकार हैं।

(i) अमनोज्ञ वियोग चिन्ता—मन के प्रतिकूल (अनिष्ट) वस्तु की प्राप्ति होन पर, उसके वियोग की चिता करना।

(ii) मनोज्ञ अवियोग चिता—मन के अनुकूल (इष्ट) वस्तु की प्राप्ति होने पर उसके अवियोग की चिन्ता करना।

(iii) रोग चिता—रोग होने पर, उसके वियोग की चिता करना।

(iv) काम भोग चिता—प्रीति उत्पन्न करने वाले काम भोग आदि की प्राप्ति होने पर, उनके अवियोग की चिता करना।

आर्त्त ध्यान के चार लक्षण

(i) क्रदनता—ऊँचे स्वर से रोना चिल्लाना।

(ii) शोचनता—दीनता के भाव युक्त हो हो नेत्रो मे आसु भर आना।

(iii) तेपनता—टप-टप आसु गिराना।

(iv) परिवेदनता—पुन पुन विलाप क्लिष्ट शब्द बोलना।

आर्त ध्यान का फल—इसमे अशुभ कर्मों का बध होता है। जीव प्राय इसके सेवन से तिर्यच गति का बध का बध करता है।

(2) रौद्र ध्यान—हिंसा झूठ, व चोरी मे और धन आदि की रक्षा म मन को जोडना अथवा हिंसा आदि म क्रूर परिणाम (भाव) को रौद्र ध्यान कहते हैं। इसके भी चार प्रकार हैं यथा—

(i) हिंसानुबधी—प्राणियो को रुद्र परिणामो से मारना पीटना अवयव छेदना, उन्हें बाधना या ऐसे कार्य न करते हुए भी क्रोध के वश होकर निर्दयतापूर्वक इन हिंसाकारी कार्यों का निरतर चिन्तन करते रहना।

(ii) मृषानुबधी—असत्य प्रवृत्ति करने वाले को अनिष्ट वचन कहने का निरतर चिन्तन करना।

(iii) स्तेयानुबधी—तीव्र क्रोध और लोभ से व्याकुल, प्राणियो के उपघातक पर द्रव्यहरण आदि कार्यों म निरतर चित्त वृत्ति का होना।

जैन दर्शन

ध्यान साधना

□

श्री जशकरण डागा,

जैन दर्शन मे तप साधना के अन्तर्गत ध्यान आता है। तप के बारह प्रकारो में कायोत्सर्ग के पश्चात् ध्यान को सर्वोपरि स्थान है। वैसे कायोत्सर्ग भी ध्यान की उत्कृष्ट स्थिति है, जिसमे आत्मा समाधिस्थ हो, काया की सम्पूर्ण चेष्टाओं का परित्याग कर दिया जाता है। 'ध्यान' शब्द 'ध्यै' धातु से बना है। 'ध्यै' का अर्थ है अन्त.करण मे विचार करना, चिन्तन करना। किसी एक विषय या वस्तु पर चित्त को एकाग्र कर विचार करना ध्यान है।[1] यह विचार अथवा चितन भी दो प्रकार का होता है—शुभ एवं अशुभ। इसी से ध्यान के भी मुख्यत: दो भेद होते है—शुभ ध्यान एवं अशुभ ध्यान। इसका विशद् साङ्गोपाङ्ग वर्णन भगवती सूत्र शतक 25 के उद्देशे 7 मे मिलता है। किन्तु वर्तमान मे उपलब्ध भगवती सूत्र मूल का संक्षिप्त रूप रह गया है, जिससे ध्यान का वर्णन भी संक्षिप्त रूप मे ही उपलब्ध रह गया है। व्यावहारिक क्षेत्र में जहाँ ध्यान को शुभ अशुभ रूप बताया गया है, वहाँ आध्यात्म क्षेत्र मे ध्यान का अर्थ मात्र साधना मे सहायक शुभ ध्यान को ही ग्रहण किया गया है, और चित्त की निरन्तर एकाग्रता-स्थिरता को ही ध्यान कहा गया है। इसी अपेक्षा से ध्यान को चतुर्थ गुणस्थान (सम्यग् दृष्टि) से पूर्व की भूमिका मे नही माना गया है।[2] आचार्य सिद्ध सेन ने भी इसी दृष्टि से ध्यान की व्याख्या करते कहा है—'शुभैक प्रत्ययो ध्यान।'[3]

ध्यान आत्मा की वह आन्तरिक महान् शक्ति है जिससे समस्त सिद्धियाँ सिद्ध होती हैं। कहा भी है—'यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।' उत्तम ध्यान से साधना को गति एवं शक्ति मिलती है, जिससे थोड़ी साधना भी विशेष फलदायी बन जाती है। जैसे उन्नतोदर दर्पण के निमित्त से धूप मे जलाने की विशेष शक्ति आ जाती है, वैसे ही उत्तम ध्यान से साधना में अष्ट कर्मो को नष्ट करने की विशेष शक्ति आ जाती है।

प्रत्येक साधक के लिए ध्यान अनिवार्य है। साधु के लिए आठ प्रहर मे चार प्रहर ध्यान करने का विधान है।[4] इससे ध्यान का महत्त्व सुस्पष्ट है। ध्यान विचारों का निर्माता है। विचारों से वाणी, वाणी से आचार और आचार से कर्म निष्पादित होते है।

---

1. 'चित्तस्सेगग्गया हवइ झाणं' (आवश्यक निर्युक्ति 1456)।
2. योग बिन्दुसार, योग दृष्टि समुच्चय योग शतक।
3. द्वा त्रिंशद् द्वात्रिंशिका 18–11–4 उत्तराध्ययन 26/12।

चार भावनाएँ उपयोगी है। इनमे भी निम्न चार भावनाएँ प्रमुख रूप से हैं—

अनित्य भावना—आत्मा के अलावा सभी पदाथ नश्वर एव वियोग शील हैं। मयोग के साथ वियोग लगा हुआ है। ऐसा चितन। करना।

(ii) अशरण भावना—धम के अलावा तीन लोक और तीन काल म कोई भी जन्म मरण रोग, शोक आदि से बचाने वाला नही है एसा चिनन करना।

ससार भावना—ससार के यथाथ के स्वरूप का चितवन करना।

(iv) एकत्व भावना—आत्मा अकेला आया है, और अकेला जायगा। कोई किसी का न तो हुआ और न होगा ऐसा चितन करना।

(4) शुक्ल ध्यान—कर्मों को सवथा नष्ट करने वाला, अत्यन्त स्थिरता एकाग्रता व योग निरोध पूवक स्वरूप मे लीन कराने वाला जो परम ध्यान है जो ध्यान की सर्वोच्च भूमिका है उसे शुक्ल कहा है। कहा भी है– अप्पा आप्पमिरओ इण मेव पर भाण[1] इसे परम समाधि दशा भी कहा है। इस दशा मे शरीर का छेदन भेदन होन पर भी स्थिर हुआ चित्त ध्यान से लेश मात्र भी नही डिगता है।

(i) पृथकत्व वितक सविचारी—एक द्रव्य विषयक अनेक पयायो का उपनेवा, विहेवा, धुवेवा आदि भावो का विस्तार पर्वक विचार करना।

(ii) एकत्व वितर्क-अविचारी–अनेक द्रव्यो मे उत्पाद आदि पयायो मे एकत्व भाव का विचार करना। दीपक की शिखा की तरह इस ध्यान मे चित्त स्थिर रहता है।

(iv) सूक्ष्म क्रिया अनिवर्ती —मोक्ष जाने से पूर्व मन, वचन दोनो को पूण व अध काया योग का भी विरोध कर अडोल स्थिर हो जाना। मात्र उच्छवास आदि सूक्ष्म क्रिया ही रहती है। यह भूमिका अपडवाह होती है।

(iv) समुच्छिन्न क्रिया अप्रति पाती—चौदहवें गुणस्थान की सूक्ष्म क्रिया से भी निवृत्त होने का चिन्तन होना। इसमें अवशेष अध काय योग का भी रुधन कर पूर्ण शलेशी अवस्था को प्राप्त कर लिया जाना है। यह ध्यान सदा बना रहना है।

शुक्ल ध्यान के चार लक्षण

(i) क्षमा (ii) मुक्ति (निर्लोभता) (iii) आजव (सरलता) तथा (iv) मादव (कोमलता)।

शुक्ल ध्यान के चार अवलम्बन

(i) अव्यय—परिषह उपसर्गों से चलित न होना।

(ii) असम्मोह—सम्मोहित न होना।

(iii) विवेक—देह और सभी सयोगो से आत्मा को भिन्न समझना।

(iv) व्युत्सग—निस्सग रूप मे देह और उपाधि का त्याग करना।

शुक्ल ध्यान की चार भावनाएँ

(i) अनन्त भव भ्रमण की विचारणा (ii) अनित्य विचारणा—आत्मा से भिन्न सभी पदाथ अनित्य हैं (iii) अशुभानुप्रेक्षा—ससार के अशुभ स्वरूप पर चिंतन करना तथा (iv) अपायानुप्रेक्षा–जीव जिन जिन कारणो से दुखी होता है उन पर विचार करना।

1 द्रव्य सग्रह

(iv) संरक्षणानुबंधी—धन की रक्षा करने की चिन्ता करना—'न मालूम दूसरा क्या करेगा' ऐसी आशंका से दूसरों का उपघात करने की कषाय युक्त रौद्र चित्तवृत्ति रखना।

रौद्र ध्यान के चार लक्षण

(i) ओसन्न दोष—बहुलतापूर्वक हिंसा आदि में से किसी एक में प्रवृत्ति करना।

(ii) बहुल दोष—हिंसा आदि सभी दोषों में प्रवृत्ति करना।

(iii) अज्ञान दोष—अज्ञान अधर्म स्वरूप हिंसादि में धर्म बुद्धि से उन्नति के लिए प्रवृत्ति करना।

(iv) आमरणान्त दोष—मरणपर्यन्त क्रूर हिंसादि कार्यों का पश्चात्ताप न करे तथा हिंसादि प्रवृत्ति करते रहना। जैसे काल सौकरिक कसाई।

रौद्र ध्यानी ऐहिक व पारलौकिक भय से रहित होता है। दूसरों को दुःखी देख कर भी प्रसन्न होता है। उसमें दया अनुकम्पा नहीं होती, और पाप कार्य करके भी वह प्रसन्न होता है। यह निकृष्टतम ध्यान है।

रौद्र ध्यान का फल—क्रूर एवं रुद्र कुत्सित भाव होने से भयंकर दुष्कर्मों का बन्ध कर, इसके सेवन से जीव प्रायः नरक गति का बन्ध करता है।

(3) धर्म ध्यान—'धर्म' अर्थात् श्रुत, चारित्र धर्म सहित ध्यान अथवा 'धर्म' अर्थात् वस्तु स्वभाव से ध्यान युक्त धर्म ध्यान है।

इसके भी चार प्रकार हैं, यथा—

(i) आज्ञाविचय—वीतराग प्रभु की आज्ञा को लक्ष्य में रख कर [illegible] श्रद्धा रख, उनमें प्रतिपादित तत्त्वों का चिंतन मनन करना, उनमें संदेह न करना।

(ii) अपाय विचय—कर्माश्रव के हेतु मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, प्रमाद, अशुभयोग से होने वाले कुफल और हानियों का विचार (चिंतन) करना।

(iii) विपाक विचय—कर्मों का स्वरूप उनके फल आदि पर चिंतन करना।

(iv) संस्थान विचय—लोक और संसार के स्वरूप का तथा उसके उद्धार हेतु उपायों पर चिंतन करना।

धर्म ध्यान के चार लक्षण

(i) आज्ञा रुचि—वीतराग की आज्ञा प्ररूपक आगमों के शास्त्रोक्त अर्थों पर रुचि होना, अथवा वीतराग की आज्ञा में रुचि-रखना।

(ii) निसर्ग रुचि—किसी उपदेश या प्रेरणा बिना ही, वीतराग प्ररूपित तत्त्वों पर, स्वभाव से ही श्रद्धा, रुचि होना।

(iii) सूत्र रुचि—सूत्रोक्त तत्त्वों पर श्रद्धा रुचि होना।

(iv) अवगाढ़ रुचि—आगमोक्त प्रवचन से या द्वादशांग के ज्ञान से प्रगाढ़ धर्म श्रद्धा रुचि होना।

धर्म ध्यान के चार अवलम्बन—धर्म ध्यान के चार आधार हैं, यथा—

(i) वाचना (ii) पृच्छना (iii) परिवर्तना (iv) अनुप्रेक्षा (चिन्तना)।

धर्म ध्यान की चार भावनाएं—धर्म ध्यान की उत्पत्ति एवं उसकी स्थिरता व पुष्टता के लिए मैत्र्यादि उत्तम भावनाएँ व [illegible] आदि

कमल आदि पर स्थापन कर, तथा कमल की पखुडियो पर एक एक अक्षर स्थापित कर, एकाग्रता पूर्वक चिन्तन किया जाता है। नवकार मंत्रादि का जाप, नमोत्थुणं आदि स्तुति, शास्त्रीय पाठो का मौन एवं एकाग्रता पूर्वक स्वाध्याय आदि मन को एकाग्र करना भी इसी विधि के अन्तर्गत आता है। कुछ विद्वान् माला फेरना, जप करना प्रार्थना स्तुति करना ये जैन धर्म के अनुरूप नही मानते और इतर कर्मो की क्रियाएँ मानते है। किन्तु यह उचित नही है। ये सब ध्यान की पदस्थ विधि के अंतर्गत है।

(3) रूपस्थ विधि—अरिहन्त भगवान् के शास्त्रोक्त स्वरूप को ध्यान मे लेकर उनकी परम निराकुल शान्त दशा को हृदय मे स्थापित कर स्थिर चित्त से ध्यान करना।

(4) रूपातीत—रूप रहित निरंजन निराकार निर्मम परम ज्योति का रूप सिद्ध परमात्मा भगवान् का अवलम्बन लेकर उनके अनन्त गुणो का ध्यान करते हुए उनके साथ आत्मा की एकता का चिंतन करना।

उपरोक्त चारो विधियों का विस्तार में उल्लेख कल्पतरु आदि ग्रन्थो मे देखा जा सकता है।

सामूहिक ध्यान प्रक्रिया

सामूहिक ध्यान करने वाले प्रथम् गुरु को वन्दन करे। फिर चित्त को शान्त व स्थिर कर एक आसन मे ध्यान मुद्रा मे नासाग्र दृष्टि जमा कर बैठे। दृष्टि उपयोग भी इधर-उधर न जावे इस हेतु नेत्रो को बन्द कर, ध्यान करना ज्यादा ठीक है। ध्यानस्थ होने के लिए प्रथम् एक दो मिनट पंच परमेष्ठि का ध्यान करो। सभी के ध्यानस्थ अवस्था मे स्थिर होने पर ध्यान कराने वाले गुरु या कोई योग्य साधक सभी ध्यान साधकों को आत्म चिंतन मे लीन कराने हेतु निर्विषयक चयनित सूत्रो या सुमधुर ध्वनि मे धीरे धीरे उच्चारण करे। सभी ध्यान साधक सूत्रो को एकाग्र चित्त से श्रवण करते रहे तथा उनके माध्यम से तदनुरूप आत्म चिंतन मे लीन रहे। चयनित सूत्र गद्य या पद्य किसी मे हो सकते है। किन्तु वे धर्म ध्यान या शुक्ल ध्यान के अनुरूप हो तथा सुप्त आत्मा को जाग्रत कर उद्बोध देने वाले प्रेरणा स्रोतो से पूरित हो। उदाहरणार्थ यहाँ पर भेद ज्ञान कराकर आत्मस्वरूप की प्रेरणा देने वाली म० सहजानन्द जी कृत एक पद्यात्मक रचना दी जाती है, जो ध्यान साधको के लिए उत्तम व आत्म चिंतन मे एकाग्र होने के लिए उपयोगी है।

हूँ स्वतंत्र निश्चल, निष्काम,
ज्ञाता दृष्टा आतम राम॥

ज्ञाता दृष्टा, आतमराम,
ज्ञाता दृष्टा, आतम राम॥
हूँ स्वतन्त्र ॥टेर॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान
अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु मोहवश, भूला भान
बना भिखारी निपट अजान॥ १॥
हूँ स्वतंत्र

मैं वह हूँ, जो है भगवान्,
जो मैं हूँ, वह है भगवान्।
अन्तर यही ऊपरी जान, वह विराग
यह राग वितान॥ २॥
हूँ स्वतन्त्र

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम,
विष्णु बुद्ध हरि जिनके नाम।
राग त्याग पहुँचु निजधाम
आकुलता का फिर क्या काम॥ 3॥
हूँ स्वतंत्र

शुक्ल ध्यान का फल—सर्व कर्मक्षय कर पंचम गति मोक्ष की प्राप्ति होना है।

उपरोक्त प्रकार से चार ध्यान का स्वरूप ज्ञानियों ने प्ररूपित किया है। इसे भली प्रकार समझने के बाद आगे साधकों के लिए उपयोगी ध्यान विधि का उल्लेख किया जाता है।

ध्यान साधना विधि

ध्यान के लिए पूर्व तैयारी—'ध्यान' सिद्धि के लिए साधक को पूर्व तैयारी करना आवश्यक है जो इस प्रकार है।

(i) भोजन—अल्प हो व सात्विक हो।

(ii) क्षेत्र—एकान्त शान्त एवं अनुकूल वातावरण वाला हो।

(iii) काल—ब्रह्मवेला या रात्रि में नियत समय हो।

(iv) भाव—विषय कषाय का निग्रह हो—समत्व भाव हो और ध्यान करते मौन सहित हो।

(v) गुण—व्रती, संयमी, व सत्संग सेवी हो। जीवन में वैराग्य और असंगता हो तथा स्वाध्यायी हो।

(vi) पंचपरमेष्ठी देव, निर्ग्रन्थ सद्गुरु, तथा साधना के समय जो भी विशिष्ट गुणी साधक हों, उनको सदा वंदन नमस्कारादि कर उनकी आज्ञा से—'ध्यान' में प्रवृत्ति करना।

(vii) ध्यान में प्रवेश करने से पूर्व 3-4 मिनट लम्बी श्वास, उच्छ्वास लो, शरीर से पाँवों तक शिथिल करें। इसके लिए प्राणायाम भी उपयोगी है।

आसन—पद्मासन, सुखासन आदि किसी भी एक आसन से [illegible] [illegible] से स्थिर हो कर, मन वचन व काया के तीनों योगों को एकाग्र कर अवस्थित करे। मन आर्त या रौद्र ध्यान की ओर कतई न जावे इनके लिए पूर्ण सतर्क रहे।

ध्यान में प्रवेश विधि

योग शास्त्र 7/8 में ध्यान में प्रवेश कर स्थिर होने के चार प्रकार (जिन्हें ध्यान का आलम्बन भी कहा है) बताए गए है। ध्यान साधक अपनी योग्यता एवं रूचि अनुसार इनमें से कोई एक प्रकार को अपना कर ध्यान में प्रवेश कर सकता है। ये चार इस प्रकार हैं—

(1) पिण्डस्थ विधि—यह आत्मा व शरीर के स्वरूप का भेद पूर्वक चिंतन करने, तथा शरीर में विद्यमान तत्वों के आलम्बन से आत्म स्वरूप का ध्यान करने की विधि है। इसमें पांच प्रकार की धारणाएं की जाती हैं, यथा—

(i) पार्थिवी—उच्च शिखर पर आत्मा विराजमान है। ऐसा चिंतन करना।

(ii) आग्नेयी—आत्मा के साथ रहे कर्म मल अग्नि द्वारा भस्म हो रहे है, ऐसा चिंतन करना।

(iii) मारुति—भस्म हुए कर्मों का हवा वेग से उड़ रही है—ऐसी चिंतन करना।

(iv) वारुणी—जल के द्वारा कर्मों की भस्म, आत्मा से अलग हो आत्मा निर्मल हो रही है—ऐसा चिंतन करना।

(v) तत्त्व भू—शुद्ध स्फटिक के समान, चन्द्रमा समुज्ज्वल और सूर्य जैसी कान्तिमान, शुद्ध आत्म तत्त्व, सर्व शक्ति सम्पन्न परमात्मस्वरूप हो गया है—अन्त में ऐसा चिन्तन करना।

(2) पदस्थ विधि—इसमें 'ॐ' इत्यादि, आदि मंत्रों के पदों का [illegible] का [illegible] के [illegible]

प्रथम् तो मन कभी निष्क्रिय (जड) होना नहीं है फिर प्रभुस्मरण या सद्‌चिंतन से रहित मात्र श्वासे श्वास को वैसे ही खोना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। यद्यपि श्वासोश्वास की गति पर मन को केन्द्रित करने से मन नियन्त्रित करने का अभ्यास तो होता है जिसे ध्यान साधना की प्राथमिक भूमिका कहा जा सकता है, तथापि इसमें कर्म निर्जरा अथवा पुण्य का अर्जन हो, ऐसा सम्भव नहीं लगता। इसमें जो एकाग्रता ध्यान में आती है वह भी थोडे समय तक ही रह पाती है कारण मन को चिंतन की खुराक न मिलने से वह प्राय विषय कलाप में दौड जाता है। ध्यान की यह प्रक्रिया वैसी ही जैसे कोई धनिक पुत्र, धन का दुरुपयोग दुर्व्यसनो म तो न करे, नए धन का अर्जन भी न करे और संचित धन को स्वयं के भोगो प्रयोग मे आराम से खर्च करता रहे। बिना लक्ष्य के ऐसे ध्यान से भी चित्त में शान्ति तो प्राप्त होती है किन्तु इससे सब कर्म क्षमा कर सिद्ध बुद्ध होने का प्रयोजन पूर्ण होना सभव नही है। अत लम्बे समय तक मन को एकाग्र स्थिर करने के साथ साथ प्रत्येक श्वासो श्वास में कर्म निर्जरा या पुण्योपार्जन भी हो इस हेतु मन को श्वासोश्वास के आलम्बन से अजप्पा जाप के ध्यान से जोडना बहुत आवश्यक है। अजप्पा जाप अप्रमत्त और जागरूक बन कर, पर के प्रति दृष्टा मात्र रहकर करने पर विशेष फलदायी होता है, तथा इसमे तत्काल शांति व आनद अनुभूति होती है। जब अजप्पा जाप मे ध्यान करने का विशेष अभ्यास हो जाता है तो फिर सोते जागते, उठते बैठते, चलते फिरते सतत मन उसमे रमन लगता है, और जब कभी मन को फुरसत होती है तो वह विषय कषायों मे न जाकर अजप्पा जाप म ही स्थिर होने लगता है।

अत म निवेदन है कि ध्यान का विषय बहुत गम्भीर है। फिर भी जैन दर्शन में प्ररूपित ध्यान पद्धति एव ध्यान साधना विधि का, संक्षिप्त स्वरूप, यहा यथा जानकारी, प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसमे कुछ अन्यथा प्ररूपित करने मे आया हो अथवा उल्लेखनीय कोई तथ्य प्ररूपित करने मे न हो तो विद्वानो एव अनुभवी ध्यान साधको मे विनम्र विनती है, कि वे इस सम्बन्ध मे अपने ज्ञान एव अनुभव से, सूचित कर अनुगृहीत करावें।

—डागा सदन मध्पुरा,
टोंक (राज०) 304 001

माता पिता की सेवा, व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है। अपने किसी व्यवहार के द्वारा माता पिता को हल्की सी भी ठेस ना पहुँचाना ही सेवा है। अक्सर सेवा मे भी स्वार्थ नजर आता है परन्तु सच्ची सेवा वह है जिसमे स्वार्थ का जहर न घुला हो। स्वार्थ पूरित सेवा व्यर्थ हो जाती है। श्रद्धायुक्त की गई सेवा ही सच्ची सेवा है।

—गणि मणिप्रभसागर

सुख दुख दाता, कोई न आन,
मोह राग ही, दुख की खान।

निज को निज, पर को पर जान,
फिर दुख का नहीं लेश निदान ॥ ४ ॥
हूँ स्वतन्त्र…

होता स्वयं जगत परिणाम
मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम,
'सहजानन्द' लघु अभिराम ॥ ४ ॥
हूँ स्वतन्त्र…

अन्त में ध्यान की समाप्ति उच्च स्वर में "ॐ शांति, शांति, शांति" उच्चारण करते हुए करना चाहिए।

ध्यान साधना को अधिक समय तक चलाना हो तो इसी प्रकार के प्रेरक उद्बोधन ध्यान कराने वाले द्वारा बोले जावें।

ध्यान की एक सरल विधि अजप्पाजाप

चंचल मन को नियन्त्रित करने के लिए, यह एक उत्तम और सरल विधि है। इससे मन को नियन्त्रित कैसे किया जाता है इसे समझने हेतु एक आख्यान प्रस्तुत है। एक बार एक तांत्रिक ने मन्त्र विद्या से एक भूत का आह्वान किया। भूत ने आते ही कहा तुम जो भी काम बताओगे मैं करूँगा, काम न होने पर मैं तुम्हारा भक्षण कर जाऊँगा। तांत्रिक ने अपने मनचाहे कार्य भूत से कराए जैसे भव्य भवन का निर्माण, विशाल सरोवर सैकड़ों प्रकार के व्यञ्जन आदि मंगवाए। किन्तु भूत सभी कार्य मिनिटों में करके फिर नया [illegible] मांगने लगा। [illegible] कोई कार्य [illegible] शेष न रहा तो तांत्रिक घबरा गया। भूत ने जब कोई कार्य [illegible] तांत्रिक को भक्षण करने के लिए उद्यत हुआ। तभी तांत्रिक को एक उपाय [illegible], भूत से [illegible] निर्देशित करता हूँ। तुम्हें [illegible] एक बहुत बड़ा खम्भा मँगाया और पृथ्वी पर स्थापित करके उससे कहा कि जब तक मैं अन्य कार्य न बताऊँ तुम इस खम्भे पर चढ़ते उतरते रहो। भूत वचन बद्ध होने से तांत्रिक के वशीभूत हो गया। अब तांत्रिक इच्छानुसार भूत से काम लेने लगा व जब कोई कार्य न होता तो उसे पुनः खम्भे पर चढ़ते उतरते रहने को निर्देशित कर देता। यह एक ऐसा दृष्टान्त है जो भूत की तरह चंचल मन को नियन्त्रित करने का पथ प्रदर्शित करता है। मन भी कभी निष्क्रिय नहीं बैठता। उसे भी भूत की तरह निरन्तर चिंतन की सामग्री रूपी कार्य चाहिए। जब भी उसे चिंतन की योग्य सामग्री नहीं मिलती तो वह शैतान बना अनिष्ट करना शुरू कर देता है। ऐसे मन रूपी भूत को नियन्त्रित करने के लिए, 'अजप्पा जाप' के माध्यम से उसे ध्यान में लगा देने से, वह सहज में वशीभूत हो जाता है। अजप्पा जाप के लिए दो शब्दों का कोई एक मन्त्र चयन करना होता है। जैसे ॐ अर्हन्, ॐ उणम, ॐ शांति, सोऽहं आदि। किसी एक मन्त्र को श्वासोच्छ्वास के साथ मन को उस पर केन्द्रित करते हुए ध्यान में चिंतन करना होता है। जैसे श्वास लेते 'ॐ' और श्वास छोड़ते 'अर्हन्'। इसका अभ्यास जब भी अनुकूलता हो, फुरसत हो, किया जा सकता है। सोते बैठते, चलते फिरते, यात्रा करने आदि समय में भी इसका अभ्यास कर मन को नियन्त्रित करने के साथ-साथ व्यर्थ में जाते समय को भी सार्थक किया जा सकता है। [illegible] है। एक-एक श्वास हीरे से भी अधिक मूल्यवान है। मनुष्य भव के एक श्वास की सार्थकता, अनन्तज्ञान की विजय, और एक श्वास की निरर्थकता, अनन्तज्ञान की पराजय, बन सकती है। इस पर गहराई से चिन्तन करें, और एक श्वास भी निरर्थक न जाए ऐसा प्रयास करना चाहिए। कुछ वैज्ञानिक ध्यान साधना पद्धतियों [illegible] मन को [illegible] कर, [illegible] को [illegible] का विधान है। किन्तु

श्याम वर्ण की यह चरण चौकी मन को मोह लेती है और सभी के दु खो को दूर कर देती हैं। तिवाडी जी की मत्यु होने पर तिवाडी जी का चबूतरा भी बनाया गया जो आज भी श्री मदिर जी के दक्षिण में विद्यमान है।

कहा जाता है कि सर्व प्रथम दादाजी की चरण चौकी पर भक्तो द्वारा एक छतरी का निर्माण कराया गया और दादाजी की चरण चौकी पर पक्षाल पूजा हाने लगी और दादा जी सभी भक्ता की प्राथना यहा श्रवण करने लग सभी भक्ता ने इस स्थान को एक तीर्थ स्थान घोषित किया।

मदिर निर्माण—

स्वर्गीय श्री सुजान मल जी कोठारी टोडारायसिंह वाला ने श्री मदिर जी का निमाण करा कर छतरी को मदिर म लेलिया और श्री डूंगरमल जी धुन्धुनू वालो ने श्री मीठा लाल जी सिंघी मालपुरा वालो को 2500 रुपये देकर चारो तरफ का अहाता बनवाया जो आज भी मौजूद है, प्रमुख दरवाजे के किवाड 800 रुपये म बनवा कर लगवाये गये अहाता लगभग सम्वत् 1996 मे बनाया गया था।

इसी अहाते म आने जाने वाले यात्रियो का ठहरने के लिए मदिर के उत्तर दिशा मे एक धर्मशाला श्री प्यारे लालजी रावयान दिल्ली वाला ने बनवाई तथा दक्षिण मे श्री छुट्टन लाल जो फोफलिया जयपुर वालो न बनवाई वतमान म इसकी जगह भोजन शाला हाल बनवा दिया है।

भूमि—

दादाबाडी की पश्चिमी जमीन मयकुवें क श्री ईश्वर चदजी टाक जयपुर वाला ने खरीद कर दादाबाडी को सम्भलायी तथा उत्तर दिशा की जमीन श्री हरिश चन्द जी वढेर जयपुर न दादाबाडी को प्रदान की और कुंआ पम्प आदि का निर्माण करवाया जो आज मौजूद हैं, उत्तर तथा पश्चिमी की जमीन मे खेती होती है।

भवन निर्माण—

दादावाडी के भवन मे वतमान समय मे श्री मदिरजी के अतिरिक्त पैंसठ भवन बने है इनमे एक व्याख्याला हाल (प्रवचन/सभा) भवन तथा दूसरा भोजन शाला भवन भी सम्मिलित हैं। दनिक भक्तो की आवास व्यवस्था हेतु भवन पयाप्त है किन्तु मेले तथा पर्व उत्सवो के लिए स्थानाभाव है। आशा ही नही अपितु पूर्व विश्वास भी है कि दादागुरु की कृपा से यह अभाव शीघ्र ही दूर हो जायगा।

वाटिका—

दादागुरु की भगवान की सेवा पूजा हेतु यहा पर पुष्प जयपुर तथा अन्यत्र स्थानो से प्राप्त किये जाते थे। श्रद्धेय दादागुरु की कृपा से श्री अमृतलाल जैन दिल्ली वाला ने सम्वत् 2042 मे श्री मदिर जी के आगे एक वाटिका तैयार करवाई है इसका सम्पूर्ण जैन भार भी अब तक श्री अमृतलालजी दिल्ली द्वारा ही वहन किया जा रहा है इस वाटिका में गुलाब, मोगरा चमेली मरवा आदि सभी प्रकार के पुष्प लगे हुए हैं और प्रतिदिन भगवान तथा दादागुरु की पूजा मे काम आते रहते हैं। एक वागवान इस वाटिका की देख-रेख तथा पुष्प प्रदान करने हेतु भी श्री जैन साहब ने नियुक्त कर रखा है।

दादागुरु की वाटिका अमृतजी रहे जोय
पुष्प चढा पूजा करो आनन्द मगल होय।

गुरु कृपा से वाटिका फूल रही दिन रैन,
अमृतजी अमृत गट् पात रहे सुख चन।

दादाबाड़ी मालपुरा

□

दादाबाड़ी मालपुरा भारत वर्ष के राजस्थान राज्य में जिला टोंक के अन्तर्गत मालपुरा नगर के पश्चिम में सुरम्य भूमि में निर्मित है। इसकी मनोहरता सभी के मन को मोहित करती हुई जीवन में नव उत्साह भर कर सांसारिक मार्ग में स्वच्छन्द सद्‌विचारों से विचरण करने हेतु प्रेरित करती रहती है, परम पूज्य दादा गुरु श्री जिन कुशल सूरिश्वर जी महाराज ने भी इस स्थान की मनोहरता एवम् अपने भक्त की भक्ति के कारण ही यहाँ विराजमान होकर मानव समाज का हित किया है, कर रहे हैं और करते रहेंगे। यह सभी मानव समाज की अमिट भावना है।

दादागुरु श्री कुशल सूरि जी, मालपुरा में रोज।
धूमधाम से पूजा होती, नौबत बाजा बाजे॥

आयो दादा पास कुशल ही, लाभ बहुत ही पाजे।
सारी विपदा दूर हो गयी, साज चतुर्दिक साजे॥

ऐतिहासिक वर्णन—

मालपुरा नगर का एक ब्राह्मण दादागुरु का परम भक्त था। कहा जाता है कि दादागुरु की उस पर इतनी कृपा थी कि जब भी वह दादागुरु के दर्शनों की कामना करता था तब-तब ही दादागुरु उस भक्त को दर्शन दिया करते थे। वह ब्राह्मण मालपुरा के तिवाड़ी (तिवारी) परिवार का था और जहाँ पर आज दादावाड़ी बनी हुई है वह जमीन भी उसी ब्राह्मण की थी, उस ब्राह्मण के वंशज अब भी मालपुरा में विद्यमान हैं।

पूर्वजों द्वारा बताया जाता है कि दादागुरु जिन कुशल सूरिश्वर महाराज साहब के देव लोक हो जाने का पता इस भक्त को नहीं लगा और इसने दादागुरु के दर्शनों की इच्छा की पर दादागुरु का स्वर्गवास हो जाने के कारण दादागुरु तिवाड़ी जी को दर्शन नहीं दे सके, इस पर तिवाड़ी जी ने यह समझा कि गुरु महाराज मेरी किसी भूल से अप्रसन्न हैं और मुझे दर्शन नहीं देना चाहते हैं, तब तिवाड़ी जी ने अपनी झोंपड़ी में ही अनशन व्रत लिया और यह निश्चित कर लिया कि जब तक दादागुरु के दर्शन मुझे यहाँ नहीं होंगे तब तक मैं मेरा अनशन व्रत नहीं खण्डित करूँगा, दादाजी के अन्य भक्तों के समझाने पर भी तिवाड़ी जी दृढ़ रहे, और अपनी प्रतिज्ञा में यह भी जोड़ दिया कि महाराज मुझे ही नहीं अपने सभी भक्तों को यहाँ दर्शन देंगे तब ही मैं मेरा अनशन व्रत तोड़ कर भोजन ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं।

मालपुरा के भक्त की पुकार ने स्वर्ग में हलचल मचाई और दादागुरु को विवश होकर उनके भक्त की कामना पूर्ण करने हेतु स्वर्ग सिधारने के पन्द्रह दिवस पश्चात् [illegible] सोमवार के दिन दादावाड़ी में आना पड़ा, और [illegible] पर खड़े होकर उन्होंने सभी भक्तों को दर्शन दिये, तभी से यह मान्यता है कि [illegible]

अमावस का आप स्वग सिधार गये । आपके मान पुरा निवासी भक्त तिवाडी ने आपके दर्शनो की लालसा की और अपने स्वग सिधारने के पन्द्रह दिन पश्चात् हाली पनम सोमवार का श्री तिवाडी तथा अन्य भक्तो को मालपुरा दादावाडी के प्राचीन प्रागण में एक श्याम प्रस्तर पर खडे होकर दशन दिये तभी से यह प्रस्तर दादागुरु की चरण चौकी के रूप म पूजा जाने लगा है और मालपुरा दादा वाडी एक जन तीथ स्थान गिना जान लगा ह ।

मानव समाज की तथा जन समुदाय की सेवाओ का वणन करने मे लेखनी नतमस्तक है अपने अपन जीवन काल मे त्याग और तपस्या का पूण परिचय प्रदान कर अपन को अनुकरणीय बनाया और प्राणी मात्र की सेवा म ही जीवन समर्पित कर दिया । आपन जैन धमकी अतुल सेवा कर मानव समुदाय का जन धम स्वीकार करने हेतु लालायित किया अपनी प्रतिभा तथा गुण गरिमा से आपन प्राणी मात्र की हित चिन्ता कर जो चमत्कार दर्शाये हैं उनके कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है ।

अन्धो को आँखें

एक बार एक अन्धा व्यक्ति जोकि जन्म से ही अधा था दादावाडी आया । वह दादागुरु का भक्त था सायकाल की आरती म सम्मिलित हुआ पर वह गुरुदेव के दशन नही कर सका पर उसकी लालसा यह हुई कि गुरुदेव यदि मेरे नेत्रो म ज्योति होती ता मैं भी आपके दशन कर लेता । उस अधे की माता भी उसके साथ थी । दर्शकों ने यह भी बताया कि यह दोना आदमी दादावाडी के 59 नम्बर के कमरे म ठहरे थ, अपने भक्तो की प्रार्थना पर दयालु दादा न दया की और मध्य रात्रि म उस अधे को दर्शन दिए उसकी आँखों मे ज्योति आ गई और आदेश दिया कि अब तुम्हे मेरे दशन हो गये ह तुम्हे मालपुरा म सूय उदय नही होना चाहिए सूर्योदय के पूव ही तुम लोग यहाँ से प्रस्थान कर जाना । आदेश को सुनकर भक्त ने दादाजी को वन्दन किया और दादाजी अन्तधान कर गये, भक्त की खुशी का पारापार नही था, उसने अपनी मा को जगाया और मालपुरा से रात्रि मे ही प्रस्थान कर गये । सूर्योदय पर वे अन्य गाव पहुँच कर अजमेर चले गये ।

सन्तानदाता

देवीलाल सुनार मालपुरा के सात लडकियाँ हुईं और फिर सतान होना बन्द हो गया श्री रतनलाल जी लोडा मालपुरा वालो ने इन्हे बताया कि तुम दादाजी से विनती करो । देवीलाल ने दादावाडी आकर दादागुरु से प्रार्थना की, दादाजी ने देवीलाल की प्रार्थना सुनी और उसे सतान बन्द होने के आठ साल बाद पुत्र देकर हर्षित किया यह पुत्र अब दस वर्ष का है देवीलाल तभी से दादागुरु का परम भक्त हो गया है ।

गोपाल लाल चौधरी माधोगज की धर्म पत्नी की नसबन्दी उसके (गोपाल लाल) बडे भाई ने धोखे से करवा दी, उसके केवल एक लडकी ही हुई थी । गोपाल लाल के बडे भाई ने सोचा कि अगर इसके लडका हो जायगा तो यह हमारी जमीन बटवा लेगा । इसमे गोपाल की अनुपस्थिति मे भोली-भाली महिला के साथ यह अन्याय उसके ज्येष्ठ द्वारा कर दिया गया । गोपाल लाल जब घर आया तो बडा दु खी हुआ । पर क्या करता बडे भाई स क्या कहता दोनो म अनबन हो गयी और वह मालपुरा आकर दादाबाडी के सामने रहने लग गया । जीवनयापन के लिए छोटी से दुकान कर ली अपनी धम पत्नी तथा बच्ची का भी साथ ले आया, नसबन्दी खुलवाने हेतु जयपुर के बडे अस्पताल तक गया पर सफलता नही मिली । दोना ही स्त्री पुरुष खिन्न रहने लगे लगभग सात वर्ष का समय हो गया नसबन्दी के कारण सतान नही हो पायी ।

व्यवस्था :

सम्पूर्ण व्यवस्था मालपुरा श्री संघ के तत्त्वावधान मे होती रही, सम्वत् 2008 के आसपास श्री अमरचन्दजी नाहर जयपुर निवासी म० सा० श्री विचक्षण श्री जी के सान्निध्य मे पैदल संघ मे श्री लालचन्दजी वैराठी जयपुर निवासी भी आये थे, सहधर्मी बन्धुओ से आमदनी अच्छी हो गयी इस कारण म० सा० श्री विचक्षण श्री जी ने श्री लालचन्दजी वैराठी को दादावाड़ी की व्यवस्था प्रदान की, इसमे मालपुरा श्री संघ ने कोई भी आपत्ति नही की क्योकि दादाबाड़ी में विकास कार्य होने जा रहा था। लगभग 15 वर्ष तक श्री लालचन्द जी वैराठी जयपुर ने पूर्ण निष्ठा के साथ दादावाड़ी की व्यवस्था कर निर्माण कार्य भी करवाया, आपके कार्यकाल मे ही दादावाड़ी का भवन बनकर तैयार हुआ।

कालान्तर पश्चात श्री वैराठी जी ने कतिपय कारणो वश दादावाड़ी की व्यवस्था श्री भँवरसिह जी कोठारी टोडारायसिंह वालो को सौंपदी, श्री कोठारी जी ने लगभग छै: माह पश्चात् ही सम्पूर्ण व्यवस्था श्री जै. श्वे. ख. ग. सं. जयपुर को सौंपी तभी से यहाँ की सम्पूर्ण व्यवस्था श्री श्वे. जै. ख. ग. संघ जयपुर ही करता चला आरहा है। श्री संघ जयपुर के कार्य काल में यहां पर भोजन शाला प्रारम्भ की गई जो वर्तमान में भी चालू है।

वर्तमान में दादावाड़ी की व्यवस्था हेतु श्री संघ जयपुर ने सात कर्मचारी नियुक्त किए है। जिनके पद निम्न प्रकार है।

(1) मुनीम (2) पुजारी (3) रसोईया (4) चौकीदार व्यवस्था (5 [illegible] (6) [illegible] (7) [illegible] ([illegible])।

श्री संघ की एक [illegible] प्रतिमाह पूनम को [illegible] की पूजा करने हेतु [illegible]

है और धूम धाम से पूनम को पूजा करने पश्चात् भोजन कर जयपुर को प्रस्थान कर जाती है। श्रद्धालु भक्तों द्वारा दी गई धन राशि से सम्पूर्ण व्यवस्था चलाई जाती है, श्री मंदिर जी में अखण्ड ज्योति जलती रहती है. तथा जीवदया के अन्तर्गत यहाँ पर पक्षियों को चुग्गा प्रतिदिन चुगाया जाता है।

दादागुरु :

दादागुरु श्री जिन कुशलसूरिश्वर जी म. सा. का जन्म गढ़सिवाना जिला बाड़मेर (राजस्थान) मे सम्वत् 1337 मे हुआ। आपका जन्म नाम करमण था, आप के पिता का नाम श्री जेसल तथा माता का नाम जैत श्री था आपने छाजेड़ गोत्र मे जन्म लिया।

परम पूज्य गुरु श्री कलिकाल केवली जिनचन्द्र सूरिश्वर म. सा. से शिक्षा प्राप्त कर अपनी प्रतिभा तथा गुरु कृपा से सम्वत् 1347 मे ही दीक्षा प्राप्त की और सम्वत् 1377 मे आचार्य पद प्राप्त कर लिया।

अपने जीवन काल मे आपने लाखों को जैन बनाकर समस्त मानव समुदाय को अपनी कार्य कुशलता तथा प्रतिभा से पूर्ण प्रभावित किया साथ ही मानव समुदाय के हित चिन्तन में ही जीवन पर्यन्त लगे रहे।

धर्म प्रचार हेतु आप देराउर (सिन्ध) गये, यह स्थान अब पाकिस्तान मे है, वहां की जनता आपके गुण गौरव से प्रभावित हुई और जैन धर्म मे सम्यक्त्व स्थापित कर हिन्दू मुस्लिम भाव को भूल गयी [illegible] नहीं।

[illegible]

भजन

जगत म भाइयों एक गुरु आधार
बिना गुरु के भवसागर से हो नहीं वडा पार ॥ टेर ॥

दादा गुरु श्री कुशल सूरिजी, कर रह भक्त उद्धार
दादा वाडी आवे जिससे होवे, वेडा पार ॥ १ ॥

वालक वृद्ध सभी मिल आवो, आदर करो जुहार
डीग्गी मालपुरे मे राजे, महिमा अपरम्पार ॥ टेर ॥ २

मालपुरा सुन्दर नगरी मे दर्शन दिये अपार
ललित लालसा पुरी कर गुरु किये बहुत उपकार ॥ टेर ॥ ३

पुण्य लाभ लकर के भाई कर लेवा जीव सुधार
राह मिले "कल्याण' होयगा गुरु भक्ति ही सार ॥ टेर ॥ ४

प्रार्थना

कुशल गुरु देव तेरी जय हो अरे गुर देव तेरी जय हो ॥ टेर ॥
लिया था जन्म समियाणा, जगत् उद्धार करने को,

तजे माता पिता आतुर, अरे गुरुदेव तेरी जय हो ॥ १ ॥

रह प्रभु बाल ब्रह्मचारी, फँसे नहीं गृहस्थ जीवन मे,
त्याग दिया मोह ममता को, अरे गुरुदेव तेरी जय हो ॥ २ ॥

बने आचाय हे गुरुवर प्राप्त कर ज्ञान सद् गुरु से,
बनाया जैन बहुजन को, अरे गुरुदेव तेरी जय हो ॥ ३ ॥

दरस दिया मालपुरे आकर, भक्त रुचि पूर्ण करने को,
करो "कल्याण" सब जग का, अरे गुरुदेव तेरी जय हो ॥ ४ ॥

दादागुरु की शरण में आकर प्रार्थना की, दादा जी ने उसकी प्रार्थना भी सुनी, नसबन्दी समाप्त हुई और गोपाल लाल की पत्नी के दूसरी बच्ची ने सम्वत् 2046 के अगहन मास मे जन्म दिया जो अभी मौजूद है।

बीमारी दूर—

दादावाड़ी मालपुरा की हरिजन (स्वीपर) महिला की लड़की के सम्पूर्ण शरीर मे वर्म (सूजन, आ गया, सभी जगह के डॉक्टर वैद्यों ने असाध्य बीमारी बतलाई, श्री मती धापू हरिजन ने दादाजी से प्रार्थना की और दादावाड़ी के आँगन की मिट्टी का लेप अपनी बच्ची के शरीर पर कर दिया वर्म समाप्त हो गया और हरिजन की लड़की स्वस्थ हो गयी।

एक महिला के कान से खून आना शुरु हो गया डॉक्टर तथा वैद्य इलाज नही कर सके, घर वाले परेशान हो गये रात्रि में बीमार महिला ने रोते हुए अपने पति देव को आवाज देकर कहा मेरे कान मे दादागुरु की पक्षाल डालो, जिससे लाभ होगा। पति देव के पास वहाँ पक्षाल नही थी पर दादागुरु के नाम का पानी ही पक्षाल बनाकर कान में डाल दिया। कान का खून बन्द हो गया और महिला ठीक होकर दादावाड़ी अपने पति के साथ आयी दादाजी की पूजा की और पक्षाल लेकर घर गयी।

जयपुर से फोफलिया परिवार की महिला छींकों की बीमारी से ग्रसित हुयी। दो दिन तक सभी घर के परेशान हो गये। जयपुर के सभी परिचारक इलाज नही कर सके अन्त में महिला की सास ने रात्रि में दादागुरु का ध्यान किया और प्रार्थना की कि महाराज बहू की छींक बन्द हो जाय तो हम सभी घर के कल प्रातः ही मालपुरा आकर आपके दर्शन करेंगे। छींके रुक गयी और महिला को आराम की नींद आयी। दूसरे दिन सभी परिवार सहित महिला ने आकर दादागुरु की पूजा की और दो दिन रुक कर जयपुर चली गयी।

दादागुरु के चमत्कारों का कहाँ तक वर्णन करें ये तो अगणित है, सच्चे मन से जो कोई दादा का अपनी प्रार्थना सुनाता है उसे दादाजी अवश्य सुनते है। इसके लिए निम्न दोहा प्रस्तुत है

दादा बड़े दयाल है, दया करें भरपूर।
मालपुरे मे आयकर, दर्शन करो जरुर॥

जितना दोष दूसरों की निन्दा करने में है, उससे ज्यादा दोष चापलूसी करने में है। विश्व में दो प्राणी खतरनाक है एक निंदक और दूसरा चापलूस। निंदक सीधा वार करता है तो चापलूस पीठ मे, मीठी छुरी चलाता है। चापलूस द्वारा किया गया घाव दया करने वाले को बेहोश कर देता है। हमें इन दोनों से सावधान रहना है।

—मुनि मनोज्ञसागर

त हैं। आपके समान वे भी धर्म के प्रति अत्यधिक चि रखते हैं। अभी वे भी आपके साथ ही उपधान तप म सम्मिलित हैं। आपके पूर्ण परिवार में धर्म के प्रति सभी की रुचि कुछ के मन मे तीव्र व कुछ सामान्य। और आपके सबसे छोटे भ्राता श्री प्रकाश चन्द जी लोढा जो कि कोटा मे व्यवसाय रत हैं साथ ही कोटा के धर्मानुयायियों को समय समय पर वे भी ऐसे ही धार्मिक अवसर प्रदान करते रह है। आप तीनो भाईयों मे धर्म के प्रति अटूट आस्था प्रारम्भ से ही रही। दादागुरुदेव के प्रति तो आपकी अनन्य भक्ति किसी से छिपी नही, अभी हाल ही म हो रहे उपधान तप का आयोजन भी आपने मालपुरा स्थित देवालय म रखा। इसी से प्रतीत होता है आपकी गुरुदेव के प्रति अनन्य भक्ति भावना का आप। यहाँ हो रहे उपधान तप मे सपत्नीक शामिल हुयें, यह आपकी अनुपलब्ध विशिष्टता है। साथ ही आपने जैन दर्शन ज्ञान के कई ग्रन्थों का अध्ययन किया है? आपने कर्मग्रन्थ, तत्वार्थ सूत्र कर्मयोग समय सार बिन्दु कल्प सूत्र श्रीमद राजचन्द्रजी का साहित्य श्री आनन्दघन जी, देवचन्द्रजी चिदानन्दजी आदि योगियों के परम् आध्यात्मिक साहित्य का अवगाहन मन्थन कर ज्ञान की दिव्य ज्योति प्राप्त की है। आप टोंक में कई वर्षों से पर्युषण पर्व पर कल्पसूत्र के व्याख्यान का वाचन कर रहे हैं?

और अपनी उम्र के इन 65 वर्षों म आपने कई बार गुरुदेव की असीम कृपा का विषम परिस्थितियों म प्रत्यक्ष अनुभव किया। आपके इस अनूठे व्यक्तित्व मे सरस्वती व लक्ष्मी दोनों का संगम उजागर हो रहा है। आप अपने जीवन के कडवे मीठे सभी दौरो से गुजरे हैं सभी समय म (अनुकूल प्रतिकूल) आप अपने धर्म से नही हटे। सदैव गुरुदेव पर विश्वास व अपना जीवन उन्ह ही सौंप कर गुरुदेव की भक्ति मे ही व्यतीत किया। आपने समय समय पर कई यात्राओं की व्यवस्था करके तीर्थयात्रियों को धर्मलाभ प्रदान किया वही यह भी अत्यधिक हर्ष की बात है कि परमात्मा स्वरूप उपधान तप का आयोजन करने की भावना आपके हृदय म प्रस्फुटित हुई और आज आप स्वय भी सपत्नीक इस अनुष्ठान में धर्म रूपी अमृत रस प्राप्ति हेतु सम्मिलित हुये।

पू गणिवर्य श्री की निश्रा में आयोजित इस उपधान में आपके साथ आपकी धर्मपत्नी श्रीमती शांती देवी भी हैं जिनकी आयु 59 वर्ष है। श्रीमती शांती देवी इससे पूर्व भी अनेक तपस्यायें कर चुकी हैं। उन्होंने बीस स्थानक जी की तपस्या भी की है? साथ ही आपके छोटे भ्राता श्री विद्या कुमारजी लोढा भी इस तपस्या में सम्मिलित हैं। वे भी समय समय पर छोटी बडी तपस्यायें करते रहे है। आपकी उम्र 63 वर्ष है।

आपके ही सबसे छोटे भ्राता श्री प्रकाशचन्द जी लोढा की धर्मपत्नी श्रीमती तारा बाई भी इस तपस्या म बैठी है उनकी आयु 55 वर्ष है। वे अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति की हैं वे अक्षय निधि तप ओली श्री नव पद अष्टापद, कर चुकी हैं। वे 17 दिन के उपवास कई बार तेले कर चुकी है। उन्होंने एक वर्षी तप पूर्ण कर लिया है अभी आपका दूसरा वर्षी तप चल रहा है, उसी बीच मे आप उपधान तप की अमृत प्राप्ति हेतु भी इस आयोजन म सम्मिलित हो गई, आप शुरू से ही धर्म के प्रति हर कार्य मे आगे रही साथ ही आप को समय समय पर परिवारजनो से पूर्ण सहयोग मिलता है। अत आप सदैव ही धार्मिक कार्यों मे अग्रसर रही।

और यह अत्यधिक हर्ष का विषय रहा कि लोढा परिवार के आप चारों व्यक्ति विशेष इस उपधान में विराजित हैं व मालपुरा की पावन धरती पर इस तपस्या का आनन्द उठाने का सभी धर्मार्थियो को अवसर प्राप्त हुआ इसके लिये सभी श्रेष्ठवर श्री सौभागमलजी लोढा के सदैव ऋणी रहेंगे।

☐ 520-अ तलवण्डी, कोटा

एक धर्म से ओत-प्रोत व्यक्तित्व : श्रेष्ठी श्री सौभाग्यमलजी लोढ़ा

□

सुश्री अर्चना चतर

हर युग में मानव प्रणेता व धर्म प्रणेता व्यक्ति अवतरित होते है। और अपने ज्ञान व दर्शन की ज्योति से जग मे उजियारा करते है। आज वर्तमान मे धर्म के प्रति लोगों की रुचि कम होती जा रही है गृहस्थ लोगो को धर्म सम्बन्धी कार्यों के लिये समय नही मिल पाता या यों कहा जाये की अवसरों की कमी रहती है तो कोई अति श्योक्ति नही होगी ! दिसम्बर 1989 को प्रारम्भ होने वाले उपधान का आयोजन करवाने का सम्पूर्ण श्रेय श्रेष्ठ श्री सौभाग्यमलजी लोढा को जाता है। आपका जन्म सन् 1924 में केकड़ी निवासी श्री गम्भीरमलजी लोढा की धर्मपत्नी सौभाग्यवती नन्दा देवी के उपवन मे हुआ !

आपकी धर्म के प्रति प्रवृत्ति बचपन से ही रही ! पर समय-समय पर आप अपने पूज्य पिताश्री से धार्मिक तर्क किया करते थे। आपके द्वारा पूछे गये प्रश्नों में एक शक्तिमान तथ्य समाया हुआ होता था। प्रारम्भ से ही आप जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। व समय-समय पर पधारे हुये साधु सन्तों के दर्शन को सदैव लालायित रहते थे ! इसी उम्र में व्यावहारिक ज्ञान, धार्मिक ज्ञान अनुशीलन-परिशीलन आदि का भी आपके स्वच्छ मस्तिष्क में [illegible] हुआ।

आपकी प्रारम्भिक की शिक्षा-दीक्षा [illegible] में ही पूर्ण हुई। तत्पश्चात् अपने बनारस क्वीन्स कॉलेज से प्रथमा (संस्कृत) की परीक्षा उत्तीर्ण करी !

आप तीन भाई व एक बहिन श्रीमती सूरज बाई आप सभी मे उम्र में सबसे बड़ी भी थी, उनका विवाह दिल्ली निवासी श्री रतनलाल जी सा. तातेड़ से निश्चित हुआ ! आप सभी भाइयों में सबसे बड़े थे फलस्वरूप आपने-अपने अध्ययन के साथ-साथ पूज्य पिता श्री के व्यवसाय में भी धीरे-धीरे हाथ बटाना प्रारम्भ किया। उन्नीस वर्ष की आयु मे आपके पिता श्री ने आपका विवाह निश्चित कर दिया, उनसे आपको एक पुत्र (गजेन्द्र कुमार जी लोढा) व पुत्री (महेन्द्री) की प्राप्ति हुई वे अधिक समय तक इस दुनिया मे नही रही, तत्पश्चात् आपका शान्ति देवी से पुनः विवाह हुआ ! वे भी आपके समान ही धर्मवीर व धार्मिक प्रवृत्ति की है। उनसे आपको तीन पुत्र व चार पुत्रियों की प्राप्ति हुई। सभी का अच्छे घरों मे विवाह सम्पन्न करने के उपरान्त अब आप पूर्णतया धार्मिक उत्थान व कार्यों मे लग गये है। वैसे तो प्रारम्भ से ही आपकी रुचि धार्मिक कार्यों मे रही है। आपने [illegible] मे [illegible] किया। यहीं से आपने अपना निजी व्यवसाय प्रारम्भ किया ! आपके छोटे [illegible]

श्रद्धा के केन्द्र गणिवर्य श्री

□

प्र श्री सज्जन गुरूचरण रज कनक प्रभा

सवप्रथम दर्शनो का सौभाग्य प्राप्त तव हुआ ? जव आचाय प्रवर श्री कान्तिसागर सूरी जी महाराज की पेरणा सेवा आपके ही नेतृत्व मे वाडमेर से पालीताना का छ री पालित सघ प्रस्थान कर रहा था।

मुने भी पदयात्रा मे पू प्रवर्तिनी महोदया गुरुवाया श्री सज्जन जी म सा की प्रेरणा से पू शशि प्रभा श्री जी म सा सम्यगृदशना श्री जी म सा के साथ जाने का सौभाग्य मिला था।

प्रथम दशन से ही मैं उनके व्यक्तित्व से प्रभावित थी। आकृति म सदा एक सी मुस्कराहट, प्रसन्नता, निश्छलता, सहजता, सरलता ही दृष्टि गोचर होती है।

उसके पश्चात् भी जब कभी भी देखा इन्ह इन्हीं विशेषताओ स घिरा पाया। कभी भी जीवन चया म दोहरापन नही देखा कृत्रिमता नही देखी ? वनावटीपन नहीं दखा ? निरन्तर निश्छलता की ओर वढते दखा ?

इनके सान्निध्य की विशेष रुप से विशेषता कि सम्मुख वठने वाला कभी भी अपने आपको वोझिल महसूस नहीं करता बल्कि यही कल्पना रहती हैं कि इनकी आँखो से आन्दित न रहूँ सत्र सान्निध्य हाता रह ! इनकी निराली छवि को देखता रहूँ ? इनकी सहज मुस्कान को निरखता रहूँ ? सौम्य आकृति को देख दख हृदय मे हरखती रहूँ ? इसी तमन्ना के लिये इसी कल्पना को सजोये हुये श्री चरणो मे रहना, देखना, बैठना पसन्द करता है।

इनके व्यक्तित्व का ही प्रभाव है कि प्रथम दशन मे प्रभावित हुये विना नहीं रहता है व पुन पुन दशन की इच्छा व आने की आकाक्षा रखता है।

सत्य ही है कि व्यक्ति व्यक्ति से प्रभावित नही होता है उसके व्यक्तित्व से आकर्षित होता है दैविक शक्ति के कारण ही सरस ही सभी खीचे आते है दौडे आते है ?

अदभुत मणि के व्यक्तित्व के अथाह सागर का थाह पाना मेरे लिये अत्यन्त दुष्कर है।

मुझ पर आप श्री का अत्यन्त उपकार है मेरा परम सौभाग्य रहा कि गृहस्थ जीवन से निष्कासन कर सयम जीवन म प्रवेश करवाने मे आपश्री का वरद हस्त रहा। यह मेरा परम सद् भाग्य रहा कि मेरी प्रथम दीक्षा करवा कर मुझे प्रथम शिष्या वनन का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

ऐसे सदगुरु के चरना का आश्रय पाकर अपने भाग्य की जितनी सराहना करु उतनी ही कम है।

पावन चरणा मे यही अभिलाषा है आकाक्षा है कि आप अपनी रहमत से मेरी किस्मत को सदा उजागर करते रह इसी नम्र प्राथना के साथ।

जिन-वाणी पर चलता जा !

□

जवाहरलाल जैन

पथिक जलता जा !
　　चलता जा !
जुगनू बनकर,
　　जग को आलोकित करता जा !
अपनी दिव्य आभा से !
　　जीवन की सार्थकता किसमें है ?
एक मात्र शलभ के जलने मे !
　　अपने लिये नही !
जगत् के लिए जलने मे !
　　अरुण की अन्तिम किरण बन !
विशुद्ध समर्पण करने मे !
　　तू जिया,
अपने लिये तो क्या जिया !
　　तेरा जीना किसने जाना !
तेने ही,
　　अरे स्वार्थी तेने ही !
जग के लिए न हुआ,
　　तो तेरा होना क्या ?
यहाँ फूल मे शूल लगे हैं,
　　किसका मन नही दुःखी रहा ?
अक्षय यहाँ कुछ भी नही,
　　कौन कहता है 'तू' हुआ,
कौन कहेगा 'तू हुआ'
　　इसीलिए कहता हूँ भाई !
'अणो भव' बन जलता जा !
　　लिये साथ संयम की गठरी,
जिनवाणी पर चलता जा !
'वीर' पथ पर बढ़ता जा ! ●

(कोटा राज०)

कालान्तर मे भगवान नेमिनाथ जी का मदिर के नाम से विख्यात हुआ। भगवान नेमिनाथ जी की यह प्रतिमा अत्यन्त प्राचीन आकर्षक एव चमत्कारी है जिनकी प्रतिष्ठा सवत् 1351 के वैशाख में महान् आचार्य विजय धम घोष सूरी जी द्वारा करायी गयी है। मूर्ति पर ऐसा शिलालेख भी अकित है। इस मूर्ति के चमत्कार के विषय मे अनेक कथाएँ प्रचलित हैं पर यह सुनिश्चित है कि आज भी इस मूर्ति के दर्शन पूजन से अद्वितीय शान्ति प्राप्त होती है। इस मूर्ति का प्रभा मण्डल एव इस मदिर का वातावरण इतना विस्मयकारी है कि वह केवल अनुभति का विषय है वणन का नहीं। इसी मदिर से ऊपर के भाग मे श्री चन्दाप्रभु जी की एव पार्श्वनाथ जी की भव्य धवल प्रतिमाएँ विराजमान हैं जो भी दर्शनीय हैं।

उपासरा

उपासरा का वर्तमान जैन मदिर वास्तव मे एक यति जी का स्थान था, जिन्होंने अपनी सुविधा के लिए उपासरे के अतिरिक्त एक दरासर भी बना रखा था। कालान्तर में यति जी का स्वगवास हो जाने पर कोटा के श्रेष्ठिवय श्रीमान् केसरी सिंह जी बाफना ने इसका जीर्णोद्धार कराया और इस मदिर का रुप दिया। इसमे भगवान आदिनाथ जी की प्रतिमा विराजमान है। इसी मदिर में दादा गुरुदेव की प्रतिमा भी है। यह मदिर पुरानी टोक के केन्द्र स्थल, प्रमुख बाजार मे स्थित है, इसलिए दर्शन पूजन, भजन कीर्तन आदि के अधिकाश कार्यक्रम इसी मदिर मे सम्पन्न होते हैं। इसी स्थान पर विचक्षण साधना भवन भी बना हुआ है, जहा स्वाध्याय के अतिरिक्त साधु-सतो के चातुमास भी होते हैं।

टोक म दिगम्बर जैन समाज का भी वर्चस्व है और यहाँ पर आठ दिगम्बर जैन मदिर एव चार नसियाँ जो हैं। माणक चौक दिगम्बर जैन समाज का केन्द्र स्थल हैं जहा एक साथ पाच एतिहासिक प्राचीन मदिर हैं, जिनमे श्याम बाबा का अथात् पार्श्वनाथ स्वामी का मदिर प्रमुख है। श्याम बाबा की मूर्ति भी नेमीनाथ जी की मूर्ति के साथ ही खुदाई म तालाब से प्राप्त हुई थी। टोक के इन जिनालयो मे प्राचीन साहित्य भी उपलब्ध है।

टोक के यह सभी जिनालय हमारी श्रद्धा और आस्था के केन्द्र हैं जो आज के युग मे धार्मिक भावना को जीवन्त बनाये हुए है।

टोक (रज०)

जो व्यक्ति अपने लक्ष्य के प्रति दृढ रहता है वही जीवन का आनन्द प्राप्त करता है। जीवन के प्रति सजगता आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। सजगता के अभाव मे दुर्घटना की आशका रहती है। जीवन अनमोल है, इसे जीवन्त जीने के लिए स्वार्थों का विसर्जन और प्राणी मात्र की सेवा का समर्पण अनिवाय है।

—गणि मणिप्रभसागर

"कान्त–कान्ति"

□

आचार्य रामदत्त शर्मा भारद्वाज एम० ए०

जयन्ति ते सुकृतिनः रस सिद्धा कवीश्वराः
नास्ति येषां यशोकाये जरामरणजं भयम ॥

मैं आज उस नाम धन्य यतिवर मुनि चक्र चूड़ा मणि स्वर्गीय श्रद्धेय आचार्य श्री जिन कान्ति सागर सूरीश्वर जी म. सा. को श्रद्धान्जलि अर्पित करता हूँ।" विगत सात वर्ष पूर्व का फरवरी व मार्च मास मेरे लिये ऐतिहासिक क्षण रहा है जब सपरिवार मुनिराज की सन्निधि को मैंने प्राप्त किया था। मैंने देखा था कि संकीर्ण मनोवृत्ति रहित महा मानस मानसवत्, धर्म-संस्कृति एवं नीति की त्रिवेणी का आगार था। ऋषिवर का उपदेशामृत सभी धर्मों में समता का सूचक था। मीरापुर के स्थान में मुनीन्द्र ने कुरान की आयतों के द्वारा यवन नागरिकों के हृदय में स्थान बना लिया था। विविध प्रदेशों की भाषा, संस्कृति एवं अन्य विविधा को खोजी दृष्टि से देखना महात्मा की नियति बन आयी थी। वस्तुतः उनकी अन्वेषिणी प्रतिभा का दर्पण "मन की मौज" इसका स्पष्ट प्रमाण है।

धर्म कर्म का प्रतिपालक,
शान्ति [illegible] का उपदृष्टा।

जिन शासन का था ज्योति,
[illegible] का आदर्श ॥

[illegible]
[illegible]

धन्य-धन्य महा मानव,
मानवता के अमर पूत ॥

नित्यचर का महाव्रत ले,
तुमने भारत को खोजा,

भारती की दिव्य श्रुति में,
मानो देखा पावन रोजा।

उपधानो की सरणी तुम्हारी,
स्मृति के पथ से आती,

एक बार यतिवर आकर
समन्व धर्म को तू खोजा ॥

यतिवर का हृदय साहित्य मन्दाकिनी से आलोकित था, वे भारत भारती के कुशल उपासक थे तथा समस्त उर्दू को भी हृदय से प्रेरित करते रहते थे। जिन आगम की सूक्ष्म विविधताओं का दर्शन जैनेतरों को भी इस सरल व सरस शैली में कराते थे कि श्रावक जैन धर्म व दर्शन का अनुगामी बन जाता था। देश काल की परिस्थितियों के अनुसार अन्य आगमों की अनुशीलनता उनमें व्याप्त थी। वे [illegible]

जैन मन्दिर है जिनके महत्त्व से इन्कार नही किया जा सकता। सामान्य केरलवासियो को उन मंदिरो के बारे मे बहुत अधिक जानकारी भले ही न हो, वे पुरातत्त्वशास्त्रियो और इतिहासकारो के लिए पर्याप्त शोध तथा अनुसधान सामग्री रखते हैं। अरब सागर और पश्चिम घाट के मध्य लगभग 555 किलोमीटर लम्बे केरल मे नवी से ग्यारहवी शताब्दी के मध्य का कई ऐसे स्थान देखने को मिलते हैं, जहाँ जैन स्थापत्य के चिह्न अवस्थित हैं। कन्याकुमारी जिले मे चितराल के निकट तिरुच्चरणातुमलाई नामक स्थान के शीलाश्रय जन स्थानो मे सबसे प्रभावशाली हैं। शिला के एक भाग पर दूर तक जैन तीर्थकरो की प्रतिमायें खूबसूरती स उत्कीर्ण की प्रतिमा तीर्थंकर गयी दिखाई देती ह। सिंह के साथ अम्बिका प्रतिमा पद्मावती की भगवान महावीर और भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमायें इस स्थान के विशेष आकर्षण है। ऐसा प्रतीत होता है कि तेरहवी शताब्दी के बाद यह भगवती मन्दिर म परिवर्तित कर लिया गया है।

एनाकुलम जिल म पेरुम्बवुर के निकट कल्लीर नामक स्थान पर भी जन शैलाश्रय मिलते हैं। ये भी कालातर म भगवती आस्था स्थल म बदल गए दिखाई देत हैं। मुखभाग पर ही तीर्थंकर श्री महावीर की सुदर प्रतिमा है। पालघाट जिले म अलात्तुर के करीब गोडापुरम म सविप्यार भगवती मन्दिर के जो अवशेष मिलत है वे उल्लेखनीय ह। यह स्थान जन तीर्थकर महावीर और पार्श्वनाथ को समर्पित है। दसवी शताब्दी के आलेख वाली कुछ प्रतिमाये इस स्थान स ले जाकर त्रिचुर सग्रहालय म रखी गयी ह। ये प्रतिमायें जन आस्था वाल लोगो के लिय महत्त्वपूर्ण ह। दसवी शताब्दी क य अवशेष अब भी अपनी गाथा कहकर इतिहासकारो को पर्याप्त लाभदायक सामग्री दन म सक्षम हैं।

भले ही मात्रा मे बहुत अधिक न हो, लेकिन भारत के विस्तृत मानचित्र पर विविध स्थानो की गणना और उनका कालनिर्धारण करने की दृष्टि से केरल के जैन स्थलो का महत्त्व कम नही माना जा सकता। केरल के ये जैन पुरातत्त्व स्थल एक ऐसी भारतीय परम्परा और हिन्द महासागर के उत्तर मे अवस्थित भू भाग की व्यापक एकरूपता के लिए कुछ कम अहमियत वाली जानकारी नही देती। प्रतिमायें और शिलालेख भले ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख दिये गये हो, मदिरो और देव स्थानो का स्वरूप भले ही बदल गया हो केरल के जैन स्थलो का पुरना महत्त्व कभी नही बदल सकता।

पालघाट नगर मे जैनमेड नामक स्थान पर अवस्थित जिनालय, जैन श्रद्धालुओ के लिए कुछ कम अहमियत नही रखता। प्राचीन होते हुए भी समय समय पर यह जिनालय अपना रूप बदलता रहा है। जैनमेड मोहल्ले मे स्थित भगवान चन्द्रप्रभु को समर्पित इस देवालय मे अब भी पूजा अर्चना होती है। स्थानीय काले पत्थर से बना यह मन्दिर चूने की पुताई के कारण साधारण लगता हैं। लेकिन इसके स्तभ और वरडिकाओ को देखने से प्रतीत होता है कि यह बहुत प्राचीन है। भगवान चन्द्रप्रभु जी का यह मन्दिर बहुत ही श्रेष्ठ और सुन्दर है।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के प्रकाशनो मे पालघाट के इन मन्दिर के सामने रखे कुछ पत्थरो और कुछ प्रतिमाओ के आधार पर इसे नवी दसवीं शताब्दी का माना है। मन्दिर के पिछवाडे कुछ ऐसे तक्षित शिलाखण्ड हैं जिनके आधार पर इस बात की पुष्टि होती है कि यह मन्दिर कुछ बदलावो के बावजद, दसवी शती के आस पास का ही है। जैन विधि से पूजा प्रतिष्ठा यहा प्रतिदिन सुबह शाम होती है। पुरानी इमारत की नीव भी इसी के सामने देखी जा सकती है।

केरल के जैन मन्दिर

□

'प्रेमजी प्रेम'

सत्य अहिंसा और आपसी भाईचारे का पावन संदेश देने वाले जो दो प्रमुख धर्म भारत में प्रारम्भ हुए, उनमें दो भिन्न विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। भगवान बुद्ध द्वारा प्रारम्भ किया गया बौद्ध धर्म भारत में उतना प्रचलित नहीं है, जितना विदेशों में है। भगवान महावीर द्वारा प्रारम्भ किया गया जैन धर्म विदेशों में उतना नहीं है, जितना भारत में है। दोनों ही धर्म समान रूप से प्रेम, भ्रातृभाव, सत्य और अहिंसा का संदेश देते हैं। लेकिन दोनों का ही क्षेत्र इस दृष्टि से भिन्न है कि प्रथम के अनुयायियों की संख्या विदेशों में अधिक है, तो दूसरा धर्म भारत में ही केन्द्रित है। समसामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शुरू किये गये दो धर्म भारतवर्ष में केवल धार्मिक [illegible] में ही महत्त्वपूर्ण हों, ऐसा नहीं है, क्योंकि दोनों ही धर्मों ने इस देश का इतिहास और [illegible] के अलावा एक ऐसी निधि दी है, जो लम्बे समय तक इतिहास के लिए साक्ष्य का कार्य करने की क्षमता रखती है। यह निधि है, बौद्ध और जैन धर्मानुयायियों द्वारा स्थान-स्थान पर बनवाये गये ऐसे स्थल जो इतिहासकारों और पुरातत्त्ववेत्ताओं के लिए, इन समस्त अनुसंधान और शोध का विषय बने रहेंगे। [illegible] और [illegible] है, तो [illegible] और [illegible] है। [illegible]

लीन मानव का उज्जवल ऐतिहासिक चेहरा सामने आ जाता है। मानव निर्मित गुफायें, चाहे एलोरा की बौद्ध और जैन गुफायें हों, या फिर अन्य किसी स्थान की आज के इन्सान को सोच का सामान्य अवसर देने में पर्याप्त रूप से सक्षम हैं। यही बात स्तूपों, मन्दिरों और दूसरे वास्तुचिह्नों के बारे में कही जा सकती है।

बौद्ध और जैन धर्म प्रसार हिमालय से लेकर हिन्दमहासागर तक कहाँ था, उसका पता लगाने के लिए वैसे तो पुस्तकों में पर्याप्त सामग्री मिल जाती है, लेकिन उन स्थानों की यात्रा करने वाले को जो अनुभव होते हैं, वे ऐसी जानकारी को सोने में सुगंध बना देते हैं।

केरल, भारत का सुदूर दक्षिण प्रान्त है। यह अपनी हरियाली, अपनी जल सम्पदा, अपनी पर्वतमाला और ऊँचे-ऊँचे ताड़, नारियल तथा सुपारी के पेड़ों के कारण पहचाना जाता है। [illegible] केरल को भारत का विशिष्ट प्रान्त माना जा सकता है। [illegible] की दृष्टि से भी यह इस देश का अनूठा राज्य है। यहाँ हिन्दू (सनातन, शैव, वैष्णव) मुस्लिम, ईसाई और [illegible] निवास करते हैं। लेकिन यहाँ बौद्ध और जैन मन्दिरों की कमी नहीं है।

हालांकि केरल में जैन [illegible] की संख्या बहुत अधिक नहीं है, लेकिन यहाँ कुछ ऐसे

राजस्थान में महावीर जैन तीर्थ

□

भूरचन्द जैन

राजस्थान प्रदेश के आचल मे जैन धर्मावलम्बियो के एक नही अनेको विश्व विख्यात तीथ स्थान आये हुए हैं। इन तीथ स्थलो पर निर्मित मन्दिरो की अनोखी शिल्पकला के उत्कृष्ठ नमूने, प्राचीन मूर्तिया, दुलभ शिलालेख हमारे दश के इतिहास पर गहरा प्रभाव जमाए हुए है। पुरातत्त्ववेत्ता इन सामग्री से शीघ्र कार्यों म तल्लीन रहत है। राजस्थान क इतिहास पर सत्य प्रकाश डालने मे प्राची जन साहित्य के अतिरिक्त मन्दिरो म स्थित शिलालेखो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा हैं। सभी धर्मा एव सम्प्रदाय के विख्यात एव रमणी तीथस्थानो को अपनी गोद मे सजोए रखने वाली शूरा, वीरा, सतियो ज्ञानियो तपस्वियो की यह पावन धरती भगवान महावीर के छद्मस्थ अवस्था म साधना भूमि होने का बडे गौरव प्राप्त किए हुए हैं। यद्यपि इस सबध म विद्वानो का मत ह कि भगवान महावीर राजस्थान गुजरात के क्षेत्र म नहीं विचरे थे परन्तु मूगथला के महावीर मन्दिर का वि० स० 1426 म श्री ककसूरि के शिष्य श्री मावदवसूरि जी न जीर्णोद्धार करवा कर प्रतिष्ठा करवाई। उस समय के शिलालेख म श्री महावीर भगवान छद्मस्थ अवस्था मे आबू भूमि म विचरण किया। उस समय भगवान जन्म म 37 वे वष पश्चात् दवा नामक श्रावक न यहा मन्दिर बनावा और पूण पाल राजा न श्री महावीर की मूर्ति भरवाई और श्री केशी गणधर न इसकी प्रतिष्ठा करवाई। एसा प्रतीत होता है। इस दशा मे भगवान महावीर का इस क्षेत्र मे विचरना कुछ हद तक साथक लगता है।

राजस्थान के वतमान सिरोही जिले का बावनवाटी जैन तीथ पर भगवान महावीर स्वामी के कानो म ग्वाले द्वारा किलो ठाकने और नादिया स्थल पर चडकौशिक सप द्वारा डसने का उल्लेख किया जाता है। परन्तु इन स्थलो पर घटनाओ के परिणामस्वरूप चिह्न आज भी विद्यमान है और ये स्थल आज भी तीथ स्थल की महिमा लिये हुए हैं।

भगवान महावीर के राजस्थान प्रदेशा मे एक नही अनेको मन्दिर बने हुए ह। बावनवाटी, नाणा दियाणा, नादिया पिंडवाडा, अजारी, कोरटा, राता महावीर, मूँछाला महावीर, भाडवा, जालोर मूँगथला, साचोर ओसिया जैसलमेर, भीनमाल आदि स्थला के मन्दिर आज भगवान महावीर के तीथ के रूप मे सब विख्यात हैं। ये सभी तीर्थ स्थान राजस्थान प्रदेश के जोधपुर डिवीजन मे विद्यमान हैं। इससे भी ऐसा अनुभव किया जाता है कि भगवान महावीर स्वामी का इस क्षेत्र मे अवश्य ही सबध रहा होगा।

नाणा, दियाणा, नादिया जीवित स्वामी वादिया इस लोकोक्ति मे एसा प्रतीत होता है कि सिरोही जिले के नाणा दियाणा और नादिया मे बने भगवान महावीर स्वामी के मन्दिर उनके

इसी के निकट केरल के बड़े कवियों को काव्यसर्जना का अवसर मिला है। जैनमेड निवासी सुविख्यात मलयाली कवि श्री ओनप्पामन्ना के लिए यह मन्दिर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। यह उनके मकान के ठीक पिछवाड़े में अवस्थित है। ओनप्पामन्ना का मत है कि यह जिनालय शांति तथा कल्पना की उड़ान में उनके लिए मददगार रहा है।

पालघाट के इस मन्दिर से एक सिरविहीन वज्रप्रियंका मुद्रा में बैठी जैन प्रतिमा मिली है, जो विशेष उल्लेखनीय है। मन्दिर को निकटवर्ती कर्नाटक के जैन मन्दिरों की शृंखला में समझा जा सकता है। लेकिन इस मन्दिर की सादगी ने इसे उत्तर भारत के विशाल मन्दिरों से पृथक् बना दिया है।

केरल के जैन मन्दिरों की गणना में गणपतिवट्टम में मिले जैन बस्ती के अवशेषों को भी गिनवाया जा सकता है। ये अवशेष इस बात के प्रमाण हैं कि आस-पास के क्षेत्र में व्यापक रूप से जैन स्थापत्य और वास्तु शिल्प की प्रचुरता रही है। केरल के विष्णु, शिव, ब्रह्मा, बुद्ध और शक्ति स्थानों की शृंखला में इस प्रांत के जैन स्मारकों को रखे बिना भारतीय स्थापत्य और वास्तुकला का कोई अध्याय पूर्ण नहीं हो सकता। वे श्रेष्ठता की कसौटी पर भले ही किसी दूसरे स्थान से कम उतरते हों, वैशिष्ट्य और महत्त्व की दृष्टि से उनका उल्लेख सदैव वांछनीय प्रतीत होता रहेगा।

●

भंवर भवन, कबेला, लाडपुरा,
कोटा 324 006 राजस्थान

———

भावनाओं के लहराते हुए सागर को शब्दों की गागर में नहीं भरा जा सकता। शब्द सीमित हैं, भावनाएं असीमित।

प्रेम, श्रद्धा, भक्ति के क्षणों में शब्दों का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता, महत्त्व होता है—भावना का, परमात्मा भक्त की शब्दावली का श्रवण नहीं करता। वह तो सुनता है—भक्त की भावनात्मक पुकार।

—गणि मणिप्रभसागर

साचोर एव जालौर मे भी भगवान महावीर स्वामी के प्राचीन मन्दिर बने हुए हैं। जो आज भी तीथ के रूप म श्रद्धा के केन्द्र बिन्दु बने हुए हैं। साचोर का महावीर मन्दिर आज भी जीवित स्वामी के नाम से परिचायक बना हुआ है। इसके निर्माण के 600 वष पश्चात् वि स 130 मे बनने एव प्रतिष्ठा सम्पन्न होने का उल्लेख मिलता है। वि स 1134 में पुन मूर्ति विराजमान करने एव 1225 मे मन्दिर के जीर्णोद्धार का उल्लेख मिलता है। वि स 1345 एव 1356 मे मुगल शासक अलाउद्दीन खिलजी ने यहा आक्रमण कर वि स 1361 मे मूल भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा को दिल्ली मे जाने का उल्लेख इतिहास के पृष्ठो पर अंकित हैं। मन्दिर को मजिस्द मे बदलने के पश्चात् भी धम प्रिय जन बन्धुओ न मस्जिद के पास नया महावीर मन्दिर बना दिया है। इसी जालोर जिले के भाण्डवा मे श्री भगवान महावीर का 10वी शताब्दी का बना महावीर मन्दिर जालोर किले पर 13वी शताब्दी का महावीर मन्दिर आज भी तीथ के रूप मे विख्यात है।

भगवान महावीर स्वामी का आबू क्षेत्र म विचरण करने के साथ आपके जालौर के भीनमाल म भी आन का उल्लेख भीनमाल के मन्दिर के वि स 1333 के लेख म मिलता है। यहा महावीर स्वामी के दो मन्दिर बने हुए हैं। बाडमेर जिल का भारत विख्यात श्री नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ के मूल मन्दिर मे वि स 909 म चन्द्र प्रभु की प्रतिमा थी। इस प्रतिमा के खंडित होने पर मूल मन्दिर मे वि स 1223 मे मूल नायक के रूप मे भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा विराजमान थी। मन्दिर एव प्रतिमा के पुन खडित होने पर वि स 1429 में श्री पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा प्रतिष्ठित होने पर यह तीथ नाकोडा पार्श्वनाथ के नाम से जनप्रिय बन गया है। इसी बाडमेर जिले में नगर में 12वी शताब्दी का बना महावीर मन्दिर आज पूर्ण तरह मे नष्ट होता जा रहा है जो कभी इस क्षेत्र का विख्यात तीथ था। इस मन्दिर के स्तम्भो पर वि म 1260 एव वि म 1516 के लेख जीर्णशीर्ण रूप में विद्यमान हैं।

भगवान महावीर के तीर्थों की कडी में जोधपुर जिले का आसिया का महावीर मन्दिर भी वीर निर्वाण के 70 वष बाद बनाया गया था। इसका वि स 830 म मौजूद होने के प्रमाण मिलने हैं। वि स 952 के लेख के साथ वि स 983 के लेख मे मडप निमाण का उल्लेख किया गया है। मन्दिर के नष्ट होने पर चामुडा माता की कृपा से ओडसा ने वि स 1017 म पुन निमाण करवा कर महा वदी 8 को प्रतिष्ठा करवाई। इस तीथ पर वि स 1035 से 1158 के कई लेख दखन को मिलने हैं। जैसलमेर जिले पर वि म 1473 मे बरडिया गोत्र के सेठ दीपा का बनाया महावीर मन्दिर आज तीर्थ स्थल की कडी म जुडा हुआ है। जिसकी प्रतिष्ठा वि स 1536 मे की गई।

राजस्थान प्रदेश मे उक्त श्वेताम्बर जन महावीर स्वामी के तीथ स्थला की कडी मे सवाई-माधोपुर जिले का महावीरजी का दिगम्बर महावीर मन्दिर भी तीथ स्थली बना हुआ हैं। ये सभी तीथ स्थल मेले के दिनो म दशनार्थियो इतिहास प्रेमियो पुरातत्त्ववेत्ताओ की भीड से घिरे रहत हैं। इन स्थानो की यात्रा करन वालो का बराबर ताता बना ही रहता ह।

जनी चौकी का वास
बाडमेर (राजस्थान)

जीवनकाल में बनाये गये थे। आज ये तीर्थस्थल के रूप में पूजनीय बने हुए हैं। नाणा के श्री महावीर मन्दिर में बने नन्दीश्वर पट्ट पर वि० सं० 1200 का, काउसग्ग प्रतिमा पर वि० सं० 1203 का, नन्दीश्वर द्वीप पर वि० सं० 1274 का लेख विद्यमान हैं। मूल प्रतिमा के नीचे वि० सं. 1505 एवं 1506 का लेख है। मन्दिर विशाल रूप धारण किये हुए हैं। नांदिया मंदिर में भगवान महावीर स्वामी की मनोहर, विशाल प्रतिमा प्रतिष्ठित की हुई है। यह भी तीर्थ स्थल है। मन्दिर की प्राचीरों एवं स्तम्भों पर वि० सं० 1130 से 1210 के लेख दृष्टिगोचर होते हैं। यह मन्दिर बावन जिनालय के रूप में है जिसकी प्रत्येक देरी पर प्राचीन 15 वी शताब्दी के लेख थे। वि० स० 1201 का लेख मन्दिर के सभा मंडप में मौजूद है। इस मन्दिर का निर्माण भगवान महावीर स्वामी के बड़े भाई नंदीवर्धन द्वारा बनाया गया था। इस मन्दिर के समीप ही भगवान महावीर को चण्डकौशिक सर्प के डसने का स्थान विद्यमान है। पहाड़ की एक शिला पर भगवान महावीर के पैर एवं सर्प की आकृति खुदी हुई है। जीवित स्वामी के मंदिरों की शृंखला में दियाणा का महावीर स्वामी का मन्दिर भी सिरोही जिले के जंगल में आया हुआ है। इस मन्दिर में सबसे प्राचीन वि० स० 1268 का लेख चौबीसी के पट्ट पर विद्यमान है।

भगवान महावीर के तीर्थ मन्दिरों की शृंखला में सिरोही जिले के मुंडस्थल तीर्थ का महावीर मन्दिर बहु प्राचीन होने का उल्लेख मिलता है। भगवान स्वामी के 37 वर्ष के होने के पश्चात् इस मन्दिर की प्रतिमा भराई गई थी। वि० सं० 1215 में जीर्णोद्धार होने की [illegible] [illegible] मन्दिर में मौजूद है। वि० स० 1426 में जीर्णोद्धार [illegible] [illegible] महावीर [illegible]

में विचरने का उल्लेख मिला है। इसी जिले में वि० सं० 1100 से भी पूर्व बने भगवान महावीर का चैत्य पिंडवाड़ा में विद्यमान है। उस समय यह बहुत छोटा मन्दिर था। जिसे वि० सं० 1456 में राजा कुमारपाल ने बड़ा बनाया और इनके पुत्र धरणीशाह ने वि० सं० 1496 में जीर्णोद्धार करवाया। आज तीर्थ स्थल के रूप में दर्शनीय बना हुआ है। इसी तरह का एक प्राचीन तीर्थ सिरोही की धरती पर अजारी है। जिसके मूल नायक भगवान महावीर स्वामी है। मन्दिर में सबसे प्राचीन लेख वि० स० 1243 का है।

भगवान महावीर स्वामी का एक और प्राचीन मन्दिर सिरोही जिले का कोरटा तीर्थ है। जिसमे महावीर मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० सं० 70 मे होनी पाई जाती है। वि. सं. 120 में नाहड़ मंत्री ने पुनः उसकी प्रतिष्ठा करवाई। यह वि. सं. 1081 मे विख्यात तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध था। ग्यारहवी से 18वी शताब्दी तक अनेको संघो ने इस तीर्थ की यात्रा की। वि. स. 1728 में प्रतिमा के खंडित होने पर वि. सं 1959 की वैशाख सुदी 15 को नई प्रतिमा विराजमान की गई। इसी प्रकार का एक बहु प्राचीन तीर्थ पाली जिले का हथुंडी में स्थित राता महावीर है। वि. स. 621 में आचार्य श्री सिद्धिसूरि जी के उपदेश से श्रेष्ठि गोत्र के वीर देव ने मन्दिर का निर्माण करवाया। वि. स 996, 1053, 2006 में इसका जीर्णोद्धार हुआ। वि. स. 1011 एवं 1045 के अनेको लेख इसकी प्राचीरो आदि में विद्यमान है। इसी पाली जिले में मुंडाला महावीर स्वामी के बड़े भाई नंदीवर्धन के परिवार के [illegible] ने बनवाया था। इस मन्दिर की बनावट से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मन्दिर 16वीं शताब्दी के लगभग बना है।

सिरोही, पाली जिलो के विख्यात महावीर तीर्थो की भांति [illegible] जिले के [illegible], [illegible],

किया जाता है। ऐसी तपस्याओं का सामूहिक आयोजन कराने वाले भाई और बहिन बड़े भाग्यशाली होते हैं। करोड़पति सज्जन हाथ जोड़े बड़े विनम्र भाव से अनुमोदन करते हुए अन्तःकरण से तपस्वियों की सेवा सभाल करते हैं।

जैन धर्म में तपस्या का कितना ध्यान, सम्मान रखा गया है और जो प्राथमिकता दी गई है यह बहुत ही गौरव का विषय है। अनुभवी गुरु जनों की महान् कृपा रही है। प्रत्येक पर्व का सम्बन्ध तपस्या से जोड़ दिया है। होली हो चाहे दिवाली आखातीज हो चाहे कोई अन्य पर्व—एक तपस्या तपस्या।

तपस्या के और भी अनेक स्वरूप हैं। उनोदरी, सहनशीलता शील पालना आदि आदि भी तपस्या ही की श्रेणी में आते हैं।

स्वर्गीय आचार्य प्रवर श्री जिन कांतिसागर सूरीश्वरजी महाराज साहब भी तपस्या पर बड़ा जोर देते थे। तपस्या कराना और तपस्वी जनों का बहुमान कराना उनके जीवन की महान् विशेषता थी, ताकि अन्यों में भी जागृति आये। आप श्री ने अपने शासन काल में जगह जगह तपस्या की बड़ी-बड़ी आराधना करवाई। इस क्षेत्र में आचार्य श्री का योगदान आज भी हमारे लिए प्रेरणा स्रोत बना हुआ है।

तपस्वी जनों से हार्दिक निवेदन है कि वे व्यवहारों में क्षमा और शान्ति का विशेष रूप में ध्यान रखें। यह उनकी परीक्षा की घड़ी होती है। देखा गया है कि तपस्वी जनों को क्रोध अधिक आ जाता है। इसलिए तपस्या में खूब ही उपयोग और विवेक रखना आवश्यक है, तभी हमारी तपस्या सफल हो सकती है। निराभिमानता आ जाय तो फिर कहना ही क्या। पूजा में क्या सुन्दर कहा है—

"कर्म निकाचित पण क्षय जाये, क्षमा सहित जे
करता रे

फिर जन और भी अनेक प्रकार से विचार कर सकते हैं। विनती इतनी ही है कि हम किसी न किसी रूप में अपनी शक्ति अनुसार तप की आराधना नित्य अपनाते रहें और अन्य को भी सहयोग देते रहें।

इति शुभम्।

c/o जोहारमल अमोलकचन्द
20, मल्लिक स्ट्रीट
कलकत्ता-7

★ ★

वन्दे वीरम्

तप की ज्योत्स्ना

मानमल कोठारी

जैन धर्म में तप का बड़ा महत्त्व माना गया है। नव पदों में तप को भी एक गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त है। तप के अनेक प्रकार और विधि-विधान हैं। जैसे नवकारसी, पोरसी, बेआसना, एकासना, नीवी, आयंबिल आदि-आदि, सबका एक ही उद्देश्य—शरीर को आहार सम्बन्धी प्रक्रिया में सीमा बद्ध कर सब प्रकार से समर्थ बनाना।

अनुभव और अभ्यास के आधार से व्यक्ति धीरे-धीरे अपने सामर्थ्य को बढ़ा लेता है और उसे स्वतः तपस्या में रुचि उत्पन्न होने लगती है। जो तप उसे प्रथम-प्रथम दुष्कर लगा था अब उसे सहज आनन्द का स्रोत अनुभव होता है। कई दिनों तक आहार पानी न मिलने पर भी वह कातर नहीं होता। यह उसके आत्म-विकास का चमत्कार है।

तपस्या का शरीर की नीरोगता में भी [illegible] है। [illegible]

हमारा सहयोग जुड़ता है उनके लिए भी खाद्य पदार्थ आसानी से बच जाते हैं।

गौतम स्वामी ने तो आजीवन बेले की तपस्या की। तप का विवेचन करते समय हम पुनिया श्रावक को कभी नहीं भूल सकते। भाग्यशाली एक बेला स्वयं खाता दूसरे बेला अपनी स्त्री को खिलाता। भाग्योदय से कभी कोई अतिथि आ जाता तो जिसके खाने की बारी होती वह उपवास कर लेता। कैसा संतोष, कितनी सादगी। आज ऐसी समता का तो हम अनुमान ही नहीं लगा सकते। अपितु यही आश्चर्य करेंगे कि जीवन में इतना धैर्य और त्याग भी कोई सम्भव होता है? धन्य है ऐसी महान् आत्मा।

ऐसी तपस्याओं में गुरुजनों के संरक्षण की भी बड़ी आवश्यकता रहती है—जैसे उपधान तप। इसमें तप के साथ-साथ विधि-विधान, नियम और अनेक प्रकार की क्रियाओं का समावेश है। [illegible]

[illegible]

परम सुख एव परम शाति प्राप्त करने के लिए आत्मा का कर्मों के बधन से मुक्त करना पडता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति किसी लक्ष्य को या वस्तु को हाथ के माध्यम से इगित करता है और दूसरा व्यक्ति उस लक्ष्य को या वस्तु को सहज समझ लेता है। कल्पना कीजिये कि माध्यम के अभाव म क्या दूसरा व्यक्ति उस लक्ष्य को समझ सकता है उसे प्राप्त कर सकता है? नही कदापि नही। माध्यम और लक्ष्य म अत्यधिक घनिष्ठता है। उसी प्रकार हम अपना लक्ष्य अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है और वह माध्यम है तप। तप के अभाव मे कोई मनुष्य मोक्ष प्राप्त नही कर सकता। इन कर्म बधनो को तोडने का बल उन्ह तोडने का अपूव साधन एक ही है और वह है तप। कर्मों के क्षय क लिए तपश्चर्या करनी पडती है। इसलिए विद्वानो ने तप की व्याख्या इस प्रकार की ह—'कमणा तापनात् तप अथात् जो कर्मों को तपावे वह तप है। तपान म आशय नाश करने से है नष्ट करने म है।

इच्छा निरोधस्तप" अथात् स्वेच्छा से सम्भाव पूवक विवेक से इच्छाओ को विविध विषयो स रोकना तप है। इसके अनुसार मात्र भोजन त्याग ही तप नहीं है। भोजन के प्रति रही आसक्ति भी हटनी चाहिये।

'तप्यते कर्माणिमला निवार्येन तन् तपा' अथात् जो कम मल का तपा कर आत्मा से अलग कर द वह तप है। अयत्र भी कहा है—

डोर क बिना पतग नही उडती
सतापति के बिना सेना नही टिकती।
ठीक इसी प्रकार तप के अभाव म,
आत्मा की प्राप्ति नही हो सकती॥

श्री जिनदास गणी जी ने कहा है कि जिस साधना से पाप कम तप्त हो जाते है नष्ट हो जाते है उसे ही तप कहते है। जो कषाय विषय को घटावे वह तप है। विवेक से इन्द्रियादि दमन कर्म क्षय हेतु करे वह तप है। कहा है "साहीण चयइत्ति तवो' अर्थात् भोगोपभोग की वस्तुओ के प्राप्त होने पर उस अपनी स्वेच्छा से बिना किसी दबाव या भय के त्यागे, वही तप है।

तप को भली भाति समझने हेतु तीन शब्दो पर ध्यान देना आवश्यक है—तप ताप सताप। जो तप के नाम पर अज्ञान व कषाय मे स्वय को व दूसरो को क्लेशित करे, वह ताप है। जो स्वाथ या मोह से अपमान आदि से शारीरिक कष्ट सहे वह सताप है। किन्तु जो मात्र कम क्षय हेतु विवेक पूवक विषय कषाय व आहार का निग्रह करे, वह सच्चा तप है। इस प्रकार तप, ताप, सताप म अतर है।

'तप' शब्द से कौन भारतीय अपरिचित होगा? तप करने वाला तो परिचित है ही पर तप नही करने वाला भी तप से परिचित है परन्तु समाज मे 'तप शब्द विशेषकर बाह्य तरीके से प्रसिद्ध हुआ है। तप क्यो करना चाहिए कैसा करना चाहिए और कब करना चाहिए? यह सोचना करीब करीब लुप्त सा हो गया है।

ससार मे सुखी जीव भी दिखते हैं और दु खी जीव भी दिखते ह। सुखी थोडे और दु खी ज्यादा। सुखी सदा के लिए सुखी नही है और दु खी सदा के लिए दु खी नही हैं। यह ऐसा क्यो? क्या यह आत्मा का स्वभाव है? नही, आत्मा का स्वभाव तो अनन्त सुख है, शाश्वत सुख है, परन्तु इसके ऊपर कर्म लगे हुए हैं इसलिए जो जीव बाह्य स्वरूप से दिखता है वह कर्म जन्य स्वरूप है। यह निणय केवल ज्ञानी वीतराग जसे परमात्माओ ने किया था और ससार का यह निणय समझाया था।

जीवन में तप का महत्त्व

□

सन्दीप जैन

"व्याकरण से किसी की भूख नहीं मिटती,
काव्य रस से किसी की प्यास नहीं बुझती।
सिर्फ शास्त्र वाचन से किसी का उद्धार नहीं होता,
बिना तप किए कर्मों का सर्वथा नाश नहीं होता॥

आज के विज्ञान एवं तर्क प्रदान युग में प्रायः यह प्रश्न कर लिया जाता है कि जब किसी आत्मा को कष्ट देना पाप है तो फिर अपनी आत्मा को निज आत्मा को तप के द्वारा क्यों कष्ट दिया जाय? क्या यह पाप नहीं है? यह प्रश्न नया नहीं है। प्रभु महावीर से भी जब ऐसा प्रश्न पूछा गया था। तो प्रभु ने सारगर्भित उत्तर दिया था—"निज्जरट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा।" अर्थात् तप निर्जरा हेतु करना चाहिए। श्रुतधर आचार्य उमास्वाति ने भी ऐसा ही कहा है—'तपसा निर्जरा च।' जैसे शरीर की सफाई हेतु स्नान करते हैं, कपड़ों की सफाई हेतु साबुन सर्फ आदि का प्रयोग करते हैं, पेट की सफाई के लिए जुलाब लेते हैं, वैसे ही आत्मा पर लगे कर्म रूपी मैल को तप से साफ किया जाता है। जिस प्रकार तपाने से स्वर्ण में और अधिक निखार आता है, [illegible] [illegible] होता है [illegible] [illegible]। इसी प्रकार आत्मा का [illegible] विधि से [illegible] होकर [illegible] विशुद्ध स्वरूप आत्मा के [illegible] में प्रकट होता है।

कहते हैं कि वासनाओं पर क्रोधित योगी शरीर पर भी क्रुद्ध होता है और तप से शरीर पर टूट पड़ता है।

भला, तप से शरीर पर क्यों टूट पड़ता है? शरीर तो साधना का साधन है। बिना शरीर के तो परमात्मा भी तप नहीं कर सकते। असलियत तो यह है कि ये वासनायें ही शैतान हैं, तप नहीं। इसलिए तप का निशाना वासनायें होनी चाहिए, शरीर नहीं। इस प्रकरण में ग्रन्थकार अपने को यह विवेक दृष्टि देते हैं कि इन्द्रियों को नुकसान हो ऐसा तप नहीं करना चाहिए। ऐसे तप को वे वर्जित समझते हैं।

बाह्य तप की उपयोगिता आभ्यन्तर तप की प्रगति में वर्णन करते हैं। आभ्यंतर तप को ही आत्म विशुद्धि का साधन बताते हैं।

तप क्या है? कैसे किया जाता है? आदि बातें हमारे हृदय में अनेकों बार उठती रहती हैं। इस हृदय की [illegible] को किस प्रकार शान्त किया जाय? यह सब तप के द्वारा शान्त किया जा सकता है। विभिन्न विद्वानों ने तथा मुनियों ने तप की विभिन्न परिभाषाएँ परिभाषित किया है। अब हम [illegible] समझने के लिए आवश्यक है कि [illegible] तप क्या है?

पावग अथात तप से पुराने पाप भी नष्ट हो जाते है। क्हा है—'भव कोडी सचय कम्म तवसा निज्जरिज्जइ' अथात् क्रोड भवो के सचित कम भी तप से निजरित हा जाते हैं।

उपलखण्डो मे कभी हीरा नही मिलता,
कायरा मे कभी वीरा नही मिलता।
बाह्य पदार्थों के मेरे खोजी लोगो,
विना तप के सुख समीरा नही मिलता ॥

तप सर्वोत्तम व सर्वोत्कृष्ट धम है। सामान्यत व्यवहार धम क चार भेद हैं—दान, शील तप और भावना। मुख्यत निश्चय अपक्षा मे भी धम के चार भेद हैं—ज्ञान दशन चारित्र तप। इन के बाद उत्कृष्ट धम के भी तीन अग बताये है—अहिंसा, सयम व तप। इन सभी पर विचार करने पर यह निष्कष निकलता है कि तप ही एक एसा भेद है जा सबमे प्रधान है। तप धर्म की आराधना कर कमक्षय कर मोक्ष के सुख समीर को प्राप्त करन के लिए देवता गण भी मानव जन्म की अभिलाषा करते है। श्री विनयचन्द जी ने कहा है—

मानस जन्म पदार्थ जाकी आशा करत अमर रे।
ते पूरब सुकृत कर पायो धरम मरम दिल र ॥

यशोविजय जी न कहा था कि तपश्चर्या म अतरग आनन्द की धारा अखडित रहती है उसका नाश नही हाता है। इसलिए तपश्चर्या मात्र कष्ट रूप नही है। पशु के दुख के साथ मनुष्य के तप की क्या बराबरी ? पशु के हृदय मे क्या अतरग की धारा बहती है ? पशु क्या स्वेच्छा से कष्ट सहन करता है ? तपश्चया की आराधना मे तो स्वेच्छा से कष्ट सहन करन मे अतरग आनन्द हिलोरे लता है। इस अतरग आनन्द क प्रवाह को नही देख सकने वाले बोद्धो ने तप को मात्र दुख रूप म ही देखा है। तपश्चर्या करने का मात्र बाह्य स्वरूप ही देखा है। तपस्वियो का कृश देह देखकर उसे लगा कि आहा ! यह विचारा कितना दुखी है ? न खाना न पीना ' शरीर कसा सूख गया है। तपश्चर्या की शरीर पर होती असरा को देख कर तप के प्रति घृणा करना क्या आत्मवादी के लिए योग्य है ?

तप करने वाला घोर तप की भी वीरतापूवक आराधना करन वाले महापुरुषो के आतरिक आनन्द को नापने के लिए महापुरुषो का निकट परिचय चाहिए जान पहचान चाहिए। उदाहरण के लिए हम श्राविका श्री चम्पा को लेत हैं। चम्पा श्राविका के छ महिनो के उपवास ने अकबर सरीखे क्रूर बादशाह को भी अहिंसक बनाया था। कैसे ? अकबर ने इस चम्पा श्राविका का निकट परिचय किया चम्पा के आतरिक आनन्द को देखा। तपश्चर्या को कष्ट नही परन्तु आनन्द रूप समझन की महानता देखी। तब अकबर तपश्चर्या के चरण मे झुक गया। तपस्वी को आतरिक आनन्द का कुआ पाताल का कुआ खोद देना चाहिए।

इस वीरो की जननी मे और भी अनेकों ऐसे उदाहरण है जिससे तप की महिमा ज्ञात होती है। जैसे जैन धम के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव। जिन्होने एक वष की सुदीघ अवधि तक घोर तप की आराधना की। पश्चात् अक्षय तृतीया को पारणा किया। वर्षी तप की परम्परा आज भी देखने को मिलती है जा इन्ही की देन है।

जैना के चौविसवें तीथकर महावीर भगवान ने भी तप का एक अनूठा उदाहरण प्रदर्शित किया। उन्होने साढे बारह वष तक घोर तप किया जिसमे मात्र 349 दिन ही आहार ग्रहण किया था। भगवान महावीर ने सबसे लम्बा तप 6 मास 15 दिन तक निराहार रहकर किया था। इस प्रकार उन्होने लम्बी अवधि तक घोर तप किया था।

परम सुख एवं शान्ति प्राप्त करने के लिए आत्मा को कर्मों के बन्धन से मुक्त कराना पड़ता है। इन कर्म बन्धनों को तोड़ने का अपूर्व साधन तप है। कर्मों के क्षय के लिए तपश्चर्या करनी पड़ती है। इसलिए तप की व्याख्या जैन मुनियों ने अनेक तरीको से की है।

इस तरह उपरोक्त परिभाषाओं एवं लेख से स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि तप क्या है, क्यो किया जाता है, कैसे किया जाता है, इस तप का हमारे जीवन में क्या महत्त्व, है आइये हम इस बिन्दु पर विचार करें।

जीवन क्या है यह आज तक कोई नही जान पाया। परन्तु जीवन की क्षणभंगुरता से प्रत्येक मनुष्य परिचित है। जीवन का समय ठीक उसी प्रकार निकल जाता है जिस तरह हाथ मे दबाई हुई मिट्टी। अर्थात् यदि हम अपने हाथ मे गीली मिट्टी लें और उसे हाथ में बन्द कर लें तो हम देखेंगे कि मिट्टी हमारी लाख कोशिशों के बावजूद हाथ में नही ठहर पा रही है वह कैसे न कैसे किसी भी तरह हाथ से निकलती जा रही है।

समय भी ठीक उस मिट्टी के समान है। इसलिए समय को अधिक महत्त्व नहीं देता। कहा जाता है कि गया समय वापस नहीं आता। हमारी इस क्षणभंगुर जिन्दगी में से भी हम अपना समय ऐसे ही व्यर्थ के कार्यों में नष्ट करते रहे तो हम पुनः इस जन्म मरण के चक्करों में फँस जायेंगे। इसलिए इस जन्म मरण के चक्कर से छूट [illegible]

[illegible]

ऊर्जा है जीवन को विकसित एवं उन्नत करने हेतु तप आध्यात्मिक ऊष्मा है। यह एक ऐसी ऊर्जा है जो वीर्य की शक्ति को विषय वासनाओं से होने वाले अध पतन से बचा कर ऊर्ध्वगामी बना चेतना व प्राणो को सशक्त बनाती है। तप जीवन को निर्विकार और पाक बनाने का प्रमुख साधन है। यह एक ऐसी ऊर्जा है जिससे व्यक्तिगत जीवन की शुद्धि ही नही वरन् सामाजिक जीवन की भी शुद्धि होती है। इस कथन को महात्मा गांधी ने सत्याग्रह के द्वारा सिद्ध कर दिखाया है।

चिन्तन करने से विचारो का सर्जन होता है,
श्रम करने से धन का अर्जन होता है।

किन्तु आत्मा की शुद्धि करने वाले भव्य पुरुषो
तप करने से कर्मो का भंजन होता है॥

जैन धर्म मे आठ कर्म माने गये है :—

1. ज्ञानावरणीय 2. दर्शनावरणीय 3. मोहनीय 4. वेदनीय 5. नाम कर्म 6. अन्तराय कर्म 7. गोत्र कर्म 8. आयुष्य कर्म।

आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादि है? आत्मा कार्मण कर्मों के साथ अनादि काल से बंधी चली आ रही है। जीव पुराने कर्मों का नाश करता हुआ नवीन कर्मों का उपार्जन करता है। जब तक जीव के पूर्वार्जित समस्त कर्मों का नाश नहीं हो जाता। और पुनः नये कर्मों का उपार्जन बन्द नहीं हो जाता, उसकी मुक्ति सम्भव नहीं। इसलिए मुक्ति प्राप्त करने के लिए हमें तप का सहारा लेना पड़ता है। बिना तप के मुक्ति पाना ठीक उसी प्रकार लगता है जैसे बिना पानी के [illegible]

[illegible]

तपश्चर्या की आराधना का प्रारम्भ करते समय ये चार आदर्श नेत्र के सम्मुख रखने हैं। तपश्चर्या जसे जैसे करते हैं उस समय इन चार वाता की इसी जीवन मे विशिष्ट प्रगति होती है। यही तपश्चया का प्रभाव है।

जिन पूजा म तपस्वी प्रगति करता है। ईश्वर के प्रति उसके हृदय म श्रद्धा व भक्ति के भाव उमड पडत हैं। शरणागति की इच्छा तीव्र हो जाती है। जिनेश्वर की भाव पूजा और द्रव्य का उल्लास बढता है।

कषायो का क्षयोपशम होता है। क्रोध, मान, माया लोभ कम होते जाते हैं और अन्त मे नगण्य हो जाते हैं। कषायो का पुन उदय नही होने देते। उदय मे आये कषायो को सफल नही होने देते। तपस्वी को कषाय शोभा नही देता है। वह तपश्चर्या का ध्येय कषायो का क्षयोपक्षय मानता है।

तप का आराधन विवेक सहित एव सम्भाव पूवक मात्र कम क्षय हेतु होना अपक्षित है। कहा भी है कि "तपम्स मूल धित्ती" अर्थात् तप का मूल धैय रखना है। इस लोक म एषणाओ के लिए या परलोक की सुख इच्छा से या वन्दन स्तुति हेतु तप नही किया जाता है। मार्ग म तप आराधना का महत्त्व सर्वोपरि है। बिना तप के नर भव को निष्फल बताया है, बिना तप के धम को सच्चा धम नही कहा गया है। किसी विद्वान् ने कहा है —

हिंसा नही करना मात्र धर्म नही होता,
झूठ नहीं बोलना मात्र धम नहीं होता।
क्योकि जीवानुकम्पा, सत्य एव तप की मुखरता के बिना,
धम सच्चा धम नही होता ॥

3/107 जवाहर नगर, जयपुर

दूसरा के प्रति हमारी दृष्टि ही दुगु णो को जन्म देती है। यदि हम अपने से सम्पन्न व्यक्ति की ओर निगाहे उठाकर देखते हैं तो ईर्ष्या जन्म लेती है। अपने से कमजोर/पिछडे को देखने पर अभिमान पदा होता है।

हमे पर की दृष्टि को छोडकर स्वय को देखना है। स्वय के पास जो है, जैसा है जितना है, वही स्वय को प्रसन्नता दने वाला है उतना स्वय के लिये पर्याप्त है—ऐसी दृष्टि रहो तो वही से साधना का प्रारम्भ होता है। जो व्यक्ति स्वय को नही पर को देखता है वही जीवन हार जाता है।

—गणि मणिप्रभसागर

भगवान महावीर के विशेष शिष्य गणधर गौतम ने भी तप का उदाहरण संसार को दिया। उन्होंने दीक्षा के दिन से यावज्जीवन बेले की घोर तपस्या की थी। भिक्षा हेतु भी स्वयं जाते थे। एक बार आनन्द श्रावक ने संथारा ग्रहण किया तो उसे दर्शन देने पधारे। आनन्द ने स्वयं में उत्पन्न अवधि ज्ञान की सीमाएं कही तो गौतम को शंका हुई कि इतना ज्ञान श्रावक को नहीं हो सकता। गौतम प्रभु महावीर के पास लौटे तो प्रभु ने आनन्द का कथन सही कहा और गौतम को क्षमायाचना हेतु वापिस भेजा। चौदह हजार सन्तों के नायक होते हुए भी गौतम तत्काल क्षमापना व आलोयणा करने हेतु आनन्द के पास पहुँचे। यह उनके तपस्वी होने के साथ-साथ आदर्श विनयी होने का भी बड़ा प्रमाण है।

एक अन्य उदाहरण है महाराज श्रेणिक की रानियों का। फूलों व मखमली शय्याओं पर सोने वाली रानियाँ सारा वैभव त्याग कर जैन श्रमणियाँ बन गई थी। फिर रत्नावलि, कनकावलि, वर्धमान, आयंबिल आदि महान् व घोर तपस्याओं से जीवन को सफल किया। जिनका वर्णन सुनकर रोम-रोम खड़ा हो जाता है। धन्य है, इन महान् तपस्विनी रानियों को।

तप की महानता और उसका स्थान जैन धर्म में ही नहीं वरन् अनेकों इतर धर्मों में भी है। वैष्णव धर्म में कहा है—"[illegible]" श्रीमद् भागवत गीता में कहा है 'विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः' अर्थात् निराहार देह को रखने से विषय वासना से भी निवृत्ति हो जाती है। "महाभारत" में [illegible] [illegible] तप [illegible] है। [illegible] धर्म में भी [illegible] है, [illegible] है। रोजे के दिन में कुछ भी नहीं खाया जाता है। [illegible] है। बौद्ध धर्म में भी [illegible] तप [illegible] है परन्तु

भगवान बुद्ध ने स्वयं ने प्रारम्भ में 6 वर्ष का कठोर तप किया था। किन्तु बाद में मध्यम मार्ग अपना लिया। उनके मतानुसार जैसे वीणा के तार न तो अधिक ढीले छोड़ने चाहिए, वैसे ही शरीर को न तो इतना तपाया जाय कि जिससे समभाव भंग हो, और न ही इतना स्वछंद छोड़ दिया जाय की यह विषय वासनाओं मे लिप्त हो जाय। भगवान बुद्ध ने कहा था—"श्रद्धा मेरा बीज है तप मेरी वर्षा है।" उन्होंने चार मंगलों में तप को सर्वप्रथम मंगल माना है और इसके आराधन की प्रेरणा भी दी है।

अत मे मैं आपको यह बतलाना चाहूँगा। कि तप से मनुष्य को क्या-क्या परिणाम प्राप्त होते है। किस प्रकार उसने तप का परिणाम जान कर जन्म मरण से छुटकारा प्राप्त करने का रहस्य जान लिया है, उसे पा लिया है।

कुशल कुंभकार मिट्टी से कुंभ बना देते हैं,
कुशल शिल्पी ईंट-पत्थर से भव्य भवन बना देते हैं।
तप-तेज से शोभित है जीवन जिसका,
ऐसे व्यक्ति अंत में जीवन का रहस्य पा लेते है॥

देखो, ऐसे बिना विचारे तप करने से काम नहीं चलेगा। इसका परिणाम देखो...... हाँ, यह परिणाम इस जीवन में ही चाहिए। मात्र परलोक सुख की कल्पना में [illegible] तप करने से नहीं चलेगा। आप देखें, जैसे-जैसे आप तप करते है वैसे-वैसे ये चार परिणाम सामने आते हुए दिखाई पड़ते है?

1. [illegible] में शुद्धि होती है।

2. [illegible] होती है।

3. [illegible] घटते है।

4. [illegible] होता है।

संयोजक सौभाग्य मल जी
स्वयं वहन करते सब भार
मालपुरा स्थित दादा बाड़ी
श्री दादागुरु का दरबार ॥ ६ ॥

गतिविधि जीवित रहे धर्म की
ऐसी आशा किया करें।
लिया करें जन लाभ धर्म गुरु
शुभाशीष बल दिया करें ॥ ७ ॥

जिस प्रकार हमारी बुद्धि होगी उसी प्रकार हमारे प्रश्न होंगे। उनके उत्तरों को भी हम अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसेंगे। यदि हमारी बुद्धि सतही है तो उत्तर सही होने पर भी हम गलत मान बैठेंगे। सही और गलत की सम्यक् पहचान के लिये हमें शास्त्रों और तर्कों के आधार पर अपना बुद्धि क्षेत्र विस्तृत करना होगा।

बुद्धि की गहराई से निसृत शंकायें स्वयं समाधान बन जायेंगी। उत्तर मत खोजो, उत्तर बनने का प्रयत्न करो। अपना निर्माण इस ढंग से करो ताकि स्वयं समाधान बन सको।

जो व्यक्ति अपने आपको जान लेता है, वह सकल तत्त्व को जान लेता है। हमारी स्थिति बड़ी दयनीय है। हम अपने आपको ही नहीं जानते हैं। दूसरों को जो जानने वाला है, हम उसी से अपरिचित हैं। उस पर अज्ञान की परतें चढ़ी हुई हैं। सत्संग की भव्यता अज्ञान की जंजीरों को काट देती है। हम अपने से संयुक्त हो जाते हैं—यही ब्रह्मज्ञान है।

—गणि मणिप्रभसागर

एक अपनी विधि

□

नेमीचन्द पुगलिया

"उवहाणवं" वाक्य आगम का,
जीवित रखने वाले लोग।
धन्यवाद के पात्र सभी जो
अपने ऊपर करे प्रयोग ॥ १ ॥

करे, कराये जो अनुमोदे,
तीनों करणों योगों से
कर्म बंध से दूर, दूर नित
भोगों से उपभोगों से ॥ २ ॥

श्री जिन अर्चा, तात्विक चर्चा,
खरचा संचित कर्मों का
तप हित साधक, जपहित साधक
आराधक निज धर्मों का ॥ ३ ॥

स्वाद-विवाद वर्जना मन से
सत्य सर्जना भावों की
बचो परभाव-प्रभाव मनावे
निर्मलता सहज स्वभावों की ॥ ४ ॥

श्री जिन शान्ति गुरु से दीक्षित,
निश्चित मति श्री मति प्रभाकर
विधि विधान [illegible] [illegible]
[illegible] ॥ ५ ॥

अन्तर शुद्धि का साधन

आभ्यान्तर तप

□

प्रवर्तक श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'

बाह्य तप का मुख्य केन्द्र जहा शरीर है, वहा आभ्यान्तर तप का केन्द्र मन है। शारीरिक क्रियाओ के स्थान पर इस तप का सीधा सम्बन्ध आत्मा या मन से जुडता है इस कारण इसे आभ्यान्तर तप कहा गया है। बाह्य तप की साधना मे शारीरिक बल सहनन सस्थान देश काल बाह्य सहयोग आदि की अपेक्षा रहती है किन्तु आभ्यान्तर तप मे इन बातो की गौणता होती है, वहा तो प्राय मन की तैयारी करनी पडती है। दुर्बल सहन वाला व्यक्ति भी आभ्यान्तर तप की उत्कट साधना कर सकता है। तपो के इस विवेचन से एक बात यह भी स्पष्ट समझ लेनी चाहिये कि जैन धर्म एकान्तवादी नही किन्तु अनेकान्तवादी है, वह शरीरवादी नही किन्तु आत्मवादी धर्म है। वह एक ही बात का आग्रह नही करता कि शरीर को तपाये बिना तपस्वी हो ही नही सकता वह कहता है कि यदि शरीर मे इतना बल नही है कि वह दीर्घ तपस्या कर सके धूप आदि मे आतापना सके अनेक प्रकार के आसन कर सके तो कोई बात नही, जितना हो उतना ही करो किन्तु मन को तो साधो मन पर तो सयम कर सकते हो तो यही सही, दोनो मार्ग मे जो मार्ग साधक के लिये अधिक अनुकूल हो उसी मार्ग पर चले हा साधना दोनो मार्ग की करनी होगी एक मार्ग की अर्थात् बाह्य तप की एकान्त उपेक्षा करके आभ्यान्तर तप नही किया जा सकता है और आभ्यान्तर तप से बिल्कुल दूर रहकर बाह्यतप की आराधना भी कोई माने नही रखती। दोनो तपो का समन्वय करके जीवन मे चलना होगा। एक का कम एक का विशेष चल सकता है किन्तु एक की सर्वथा उपेक्षा नही चल सकती।

हाँ तो अब बाह्यतप के बाद आभ्यान्तर तप का वर्णन भी पाठको के सामने प्रस्तुत है।

आभ्यान्तर तप के भी छह भेद है
छव्विहे अब्भितरिए तवेपण्णत्ते, त जहा

पायच्छित्त, विणओ, वेयावच्चे तहेव सज्झाओ झाण विउस्सग्गो।

स्थानाग सूत्र–6

1 प्रायश्चित्त
2 विनय
3 वैयावृत्य
4 स्वाध्याय
5 ध्यान
6 व्युत्सर्ग

ये छह आभ्यान्तर के भेद हैं।

1 प्रायश्चित्त—साधक के मूलगुण एव उत्तरगुण आदि मे प्रमाद, भूल आदि के कारण यदि

उपधान तप

□

साध्वी मनोहरश्री

मल स्वर्ण गतं वह्नि:, हस क्षीर गतं जलम् ।
यथा पृथग्करोत्येव. जन्तो : कर्म मलं तप: ॥

बहिरग व अंतरंग की एकरूपता ही साधना की मौलिकता है । आत्मा की इस एकरूप दिव्यता, भव्यता व पवित्रता के प्रकाशन मे तपस्या की अपूर्व भूमिका है । अध्यात्म साधना के लिये जैसे संयम एक आयाम है वैसे ही उपधान तप गृहस्थ जीवन को संयमी जीवन में ढालने की एक टकसाल है । आत्म-शक्ति की बैटरी को "चार्ज" करने की प्रक्रिया है ।

उपधान क्या है ?

श्रावक जीवन की श्रेष्ठ साधना एवं उपासना यानी उपधान ! इसकी व्युत्पत्ति करते हुये ज्ञानी भगवंत फरमाते हैं कि--"उपश्रीयते-उपष्टम्यते श्रुत मनेन इति उपधानम्" अर्थात् जिस क्रिया से श्रुत ज्ञान उपष्टंमित हो, वृद्धिगत हो वह उपधान कहलाता है ।

वीतराग स्वरूप का ज्ञायक, ध्यान प्रवृत्ति का प्रारंभ, ज्ञानी का समादर, मनोनिग्रह का साधन, इन्द्रियों का दमन, विषयो का वमन, कषायो का शमन, भाववृद्धि की साधना, आत्मशुद्धि की आराधना का अपर नाम है उपधान !

उपधान मे लाभ :—

देव गुरु धर्म का स्मरण समाचरण, ज्ञानी ध्यानी साधु-साध्वी जी म. का निरंतर सत्सं-आशीर्वाद, आरंभ रहित त्याग, धर्म का पालन, संसार वन से मुक्ति पथ की ओर प्रयाण, अनंत तीर्थंकर भगवतों की आज्ञा पालन, ज्ञान क्रिया का समन्वय लाभ । 51 दिन तक ब्रह्मचर्य का पालन, एक लाख नवकार का जाप, वर्तमान में विशाल महोत्सव द्वारा माल परिधान के रूप में संघ बहुमान । भविष्य में ऋद्धि सम्पन्न दैवीय सुख की संप्राप्ति साथ ही ज्ञान की आराधना, दर्शन का शुद्धिकरण और चारित्र का विशुद्धि करण पूर्वक अध्यात्म दशा की जागृति ! यही है उपधान महातप की अपूर्व उपलब्धि ! आत्म अनुभूति, आत्म स्वीकृति और आत्म लीनता ही आत्म दर्शन की शैली है । अध्यात्म की अभिव्यक्ति है, साधना की इस मौलिकता के प्रतिमानों को जीवन मे ढालना ही आत्म विजय का प्रतीक है ।

भयंकर दुष्कर्म रूपी अग्नि शामक यंत्र, भवसागर तारक नौका सम उपधान का आलंबन प्रत्येक उपासकों की अनंत कर्म राशि को एक ही झटके मे शमन करने में कामयाबी प्राप्त कर आत्म विजेता की अमर आनंदानुभूति कराने में समर्थ बन सकता है यदि साधक की अपूर्व निष्ठा उसके साथ जुड़ी हो । चूंकि तप में अपूर्व शक्ति है । जीवन का परिशोधक यंत्र है, अध्यात्म का प्रथम सोपान है । आंतरिक विकास का उद्गम स्रोत है ।

[illegible]

□□

बौद्ध ग्रन्थों मे विनय का प्रथम अथ अर्थात् "आचार शास्त्र" ही मुख्य है। उनका प्रमुख ग्रथ विनय पिटक भिक्षुओ के आचार शास्त्र का ही ग्रन्थ है। जैन परम्परा में जो स्थान निशीथ सूत्र का है प्राय वही स्थान और उसी प्रकार की भाषा शैली विनय पिटक की है।[1] वहाँ विनय का अथ आचार है।

जैन परम्परा मे विनय दोनो अर्थों म प्रयुक्त हुआ है जहा विनय मूल धम वताया गया है, वहाँ विनय का अथ आचार नियम और अनुशासन मे है। उत्तराध्ययन के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा का यह वाक्य—

विणय पाउ करिस्सामि

"विनय का विस्तार करके बताऊँगा।' विनय के आचार धम परक अथ का द्योतक है और उसमे इसी प्रकार का विषय भी है। दशवैकालिक सूत्र के विनय समाधी अध्ययन एव भगवती स्थानाग, औपपातिक आदि आगमो म विनय का जो स्वरूप है वह विशेषकर व्यवहार अनुशासन और शिष्टता आदि पर प्रकाश डालना है।

विनय को आभ्यन्तर तप मानन का बहुत बडा अथ है। विनय की वृत्ति हमारे हृदय मे आचार निष्ठा और विनम्रता पदा करती है। विनय से असयम का निवारण होता है अहकार पर विजय प्राप्त होती है। उत्तराध्ययन म एक स्थान पर पूछा गया है— मदुता से जीव को किस लाभ की प्राप्ति होती है। उत्तर म बताया गया है— मृदुता से आत्मा मे निरहकार का भाव आता है, उससे मदस्थानो का निवारण होता है। यहाँ मृदुता—विनय का ही पर्याय माना गया है। अहकार विजय से ही मृदुता आती है, और उसी से विनय की प्राप्ति होती है। बुद्ध ने कहा है—विनयशील के आयु, यश, सुख और बल सदा बढते रहते हैं।[2]

विनय का स्वरूप

विनय तपसात प्रकार का बताया गया है—
ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय मन विनय, वचन विनय, काय विनय एव लोकोपचार विनय।[3]

जन आगमो म विनय तप का जितने विस्तार के साथ विवेचन किया गया है उतना विस्तार ससार के किसी भी अन्य धर्म ग्रन्थ मे मिलना कठिन है। विनय के विवेचन मे जीवन के आध्यात्मिक और नतिक दोनो ही पक्ष बहुत उदार दृष्टि स प्रस्तुत किये गये हैं। मन, वचन और काय विनय तो हमारी व्यवहारदक्षता, सभ्यता और शिष्टता का मूलाधार ही है। लोकोपचार विनय मे तो यहा तक कह दिया गया है—

सव्वत्थेसु अपडिलोमया

स्थानाग सूत्र—71 भगवती 25/7

सब विषयो मे अप्रतिकूल—अविरोधिभाव रखना लोकोचार विनय है। इससे बढकर व्यवहार कौशल और क्या होगा?

ज्ञान और ज्ञानी का सम्मान करना, किसी का अशातना नही करना त्यागी का बहुमान करना मन म सच्चिंतन करना, वचन से शिष्ट बोलना, काया मे बैठने उठन चलने आदि मे

1 विनय पिटक पालि आमुख भिक्षु जगदीश काश्यप पृ 5 6
2 धम्मपद 7/10
3 देखें— क) भगवती 25/7
(ख) स्थानाग 7 (ग) औपपातिक तप अधिकार

कोई दोष लग गया हो तो उसकी शुद्धि के लिये मन में पश्चात्ताप करना, गुरुजनों के समक्ष अपनी आत्मनिन्दा करना प्रतिक्रमण आदि करना—प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त का शब्दार्थ किया गया है कि प्राय: अर्थात् पाप, चित्त अर्थात् शुद्धि, जिससे पाप की शुद्धि हो, वह प्रायश्चित्त अथवा प्राय:चित्त शोधयति—जिससे मन की शुद्धि होती हो वह क्रिया प्रायश्चित्त है। प्रायश्चित्त की परिभाषा से यह जाना जा सकता है, कि इस तप का मुख्य सम्बन्ध मन की सरलता से है। मन जब सरल होगा, तभी वह शुद्ध होगा—'सोही उज्जुभुयस्स[1]'—जो ऋजुभूत अर्थात् सरल मना होगा उसी की आत्मा शुद्ध हो सकेगी। अत: शुद्धता के लिये मन को सरल, निष्कपट और निरहंकार बनाना आवश्यक है। वही मन-आत्मा अपने दोष को स्वीकार कर सकेगा, उस पर पश्चात्ताप कर सकेगा, और गुरुजनों के समक्ष उसकी आलोचना कर सकेगा जो सरल होगा। अत: मानना चाहिये कि आभ्यान्तर तप की पहली सीढ़ी पर मन को सरल बनाना अति आवश्यक है, सरलता के द्वारा ही इस तप की आराधना की जा सकती है।

प्रायश्चित्त के विस्तार और विवेचन में भगवती सूत्र में 10 प्रकार के प्रायश्चित्त बताये गये हैं, जिनमें आलोचना, प्रतिक्रमण आदि का वर्णन है।[2] ये सभी प्रायश्चित्त के अंग हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र[3] में आलोचना, प्रायश्चित्त आदि का परिणाम भाव-परिणति बताते हुए कहा गया है—आलोचना से मन में ऋजुता आती है, प्रायश्चित्त से आत्मा में निर्दोषता (पाप कर्मविशोधि) और निर्विकारता आती है।

इन प्रतिफलों से यह स्पष्ट होता है कि प्रायश्चित्त का मूल उद्देश्य आत्मा को निर्दोष और सरल बनाना है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि प्रायश्चित्त तभी हो सकता है, जब आत्मा सरल होगी। आत्मा में यदि कपट और कुटिलता रही और ऊपर प्रायश्चित्त लेने का नाटक किया भी गया तो उससे आत्म विशुद्धि नहीं हो सकती, चूँकि प्रथम बात तो यह है कि प्रायश्चित्त अपनी सरलता से ही स्वीकार किया जा सकता है, दूसरों के द्वारा यह थोपा नहीं जा सकता। थोपा हुआ प्रायश्चित्त आत्म शोधन नहीं कर सकता।

प्रायश्चित्त के विषय में एक बात और भी महत्त्वपूर्ण है कि कोई व्यक्ति दोष सेवन कर सरलतापूर्वक उसका प्रायश्चित्त करता है तो उसकी शुद्धि अल्पप्रायश्चित्त से ही हो सकती है, किन्तु यदि उसके मन में कुछ भी कपट रहा, प्रायश्चित्त लेते समय भी यदि वह सरलतापूर्वक नहीं लेता है तो उसे विधि से दुगुना प्रायश्चित्त दिया जाने का विधान शास्त्रों में किया गया है।[4] इसका स्पष्ट भाव है प्रायश्चित्त सरलतापूर्वक ही किया जाता है। तभी वह आत्मा की शुद्धि करने में समर्थ होता है।

2. विनय—विनय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए बताया गया है—जिस क्रिया के द्वारा कर्म आवरण आत्मा से दूर हटते हैं। उस क्रिया को विनय कहा जाता है। इस दृष्टि से विनय का अर्थ आचार व नियम होता है। दूसरी एक परिभाषा के अनुसार सम्माननीय गुरुजनों आदि का सम्मान सत्कार करना, सेवा-सुश्रूषा करना आदि विनय है।

---

1. उत्तराध्ययन 23
2. भगवती सूत्र 25/7
3. उत्तराध्ययन 29
4. निशीथ सूत्र उद्देशक 20 [illegible]

तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान (निष्काम भाव से ईश्वरोपासना) ये तीनों क्रिया योग ह।

बुद्ध ने स्वाध्याय को अज्ञान तिमिर नाशक सूय कहा है और जैन परम्परा ने तो स्वाध्याय को महान् तप मानकर ज्ञानावरणीय कम का क्षय करने वाली अग्नी मानी है।

5 ध्यान ध्यान का अथ है—चित्तवृत्तियों का एकाग्रीकरण। ध्यान की परिभाषा करते हुए आचाय भद्रबाहु ने कहा है—

चित्तस्सेगग्गया हवइ झाण।

—आवश्यक निर्युक्ति 1459

किसी एक विषय पर चित्त को एकाग्र अर्थात् स्थिर करना ह। यह ध्यान शुभ भी हो सकता है और कभी अशुभ की ओर।[1] किन्तु अशुभ ध्यान तप नही ताप ह उसमे आत्मा को उत्पीडन एव क्लेश अनुभव होता है जब कि तप म आन द अनुभव होना चाहिय। इसलिये शुभ ध्यान को ही तप माना गया है।

ध्यान साधना जीवन मे बहुत ही महत्वपूण साधना है। कर्मो का दन नष्ट करने म सर्वोत्कृष्ट अग्नि ध्यान है। कही कही लाख वष की तपश्चर्या से जो कम नष्ट नही होते व दो क्षण के ध्यान से समूल नष्ट हो जाते हैं। एसे उदाहरण भी आगमो म आते हैं।

ध्यान अन्तवृत्तियों के शोधन की प्रक्रिया है। तप जैसे शरीर का शोधन कर देता है, ध्यान वैसे मन का शोधन कर डालता है। मन को शुद्ध निर्मल एव बलवान बनाने के लिए ध्यान अमोघ साधन है। किन्तु यह बात भी स्मरण रखना चाहिए कि जब तक मन निर्मल और स्थिर नही हो जाये ध्यान साधना नहीं हो सकती। बताया गया है—

ओम चित्त समादाय झाण समुप्पाजइ।
धम्मे ठिओ अविमणे निव्वाणम भिगच्छइ॥

दशाश्रुतस्कध 5/1

चित्त की अन्तवृत्तियाँ जब निमल होगी तभी मन ध्यान मे लीन होगा और जो अन्य किसी विकल्प से रहित हो धम (ध्यान) मे स्थिर है उसे निर्वाण प्राप्त करने मे कोई कठिनाई नहीं होगी

अन्तवृत्तियों के परिष्कार के लिये ही तप की पूर्वोक्त विधियाँ, विनय सेवा, स्वाध्याय आदि बताई गई हैं। बिना उसकी साधना के ध्यान साधना सफल नही हो सकती। इसी कारण समाचारी की विधि मे साधक को पहले स्वाध्याय करने का निर्देश दिया गया है। स्वाध्याय से मन को परिष्कृत कर लेने के पश्चात् ध्यान मे आरोहण करना चाहिये।[2]

ध्यान के चार भेद—आगमों मे ध्यान तप के चार भेद बताये हैं—चउव्विहे झाणे—अट्टे झाणे—रोद्दे झाणे धम्मे झाणे, सुक्के झाणे।

एक बात जो पहले हम कह चुके हैं अशुभ विचारो का एकाग्र चिन्तन एकाग्रता अवश्य लाता है, इसलिये उसे ध्यान तो कह दिया गया है किन्तु वह ध्यान तप नही है। अशुभ ध्यान जिसम आत रौद्र ध्यान आते हैं। ये दोनो ही आत्मा का

---

1 पढम पोरिसिमज्झाय बीय झाण झियायई। तइयाए भिक्खायरिय पुणो चउत्थीइ सज्झाय उत्तराध्ययन 26/12/18
2 चित्तनाम नदी उभयतो वाहिनी, वाहिनी, वहति कल्याणाय पापाय च

सभ्यता आदि का पूरा ध्यान रखना—यह सब विनय तप के रूप है, किन्तु इसमें मन को बहुत ही नम्र, शिष्ट और मृदु बनाना पड़ता है, इस कारण इसे आभ्यान्तर विनत तप कहा है।

3. **वैयावृत्य**—वैयावृत्य अर्थात् सेवा तीसरा आभ्यान्तर तप है। सेवा का जैन धर्म म कितना महत्त्व है? यह इससे स्पष्ट होता है कि सेवा को यहाँ तप माना गया है। नीतिकारों ने जिस सेवा को धर्म कहा है, जैन परम्परा उसे "तप" मानती है। "उपवास आदि करने वाला ही नहीं, किन्तु सेवा, विनय भक्ति करने वाला भी तपस्वी होता है" यह उक्ति जैन धर्म की एक महत्त्वपूर्ण उक्ति है।[1] सेवा का फल बताते हुए भगवान महावीर ने कहा है—

वेयावच्चेणं तित्थयरनामगोत्तं कम्मं निबंधइ।

उत्तराध्ययन 29/43

वैयावृत्य करने से (उत्कृष्ट रूप से) जीव तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म का उपार्जन कर लेता है। लोक भाषा में कहें तो इसका अर्थ है सेवा करने वाला भक्त अपनी सेवा के बल पर ही भगवान बन जाता है। सेवा का इससे बढ़कर और क्या फल होगा।

सेवा किसकी करनी चाहिये—इस विषय में स्पष्ट निर्देश देते हुए बताया है—आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी रोगी, नवदीक्षित कुल, गण, संघ और साधर्मिक बन्धुओं की अग्लानभाव एवं उत्साह के साथ सेवा करने वाला इस वैयावृत्य तप की आराधना कर सकता है।[1]

4. **स्वाध्याय**—स्वाध्याय का अर्थ है—सत् शास्त्रों का अध्ययन, वाचन, चिन्तन और प्रवचन। आत्मा को उदत्त बनाने वाले, मन को एकाग्र बनाने वाले सद्-विचारों का अध्ययन करने से मन पवित्र होता है; बलवान बनता है, स्वाध्याय शास्त्र के गहन, गूढ़तम अर्थों का उद्घाटन करने वाला प्रकाश स्रोत है। ज्ञान के नये-नये उन्मेष, चिन्तन के विशिष्ट सूत्र-स्वाध्याय से ही व्यक्त होते हैं। आगमों मुनि की दैनिकचर्या का वर्णन करते हुए उसे दिन एवं रात्रि के प्रथम पहर में स्वाध्याय करने का निर्देश दिया गया है।[2] आठ पहर के दिन-रात में चार पहर स्वाध्याय में बिताने का निर्देश बहुत महत्त्वपूर्ण बात है और इससे स्वाध्याय तप की उत्कृष्टता द्योतित होती है।

यजुर्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य उव्वट ने कहा है—मनस्तावत् सर्वशास्त्रपरिज्ञानं कूप इवोत्स्यन्दति।

—यजुर्वेद उव्वटभाष्य 13/35

कुँए से जिस प्रकार पानी ऊपर की ओर उठता है मनन से भी उसी प्रकार शास्त्रों का ज्ञान ऊपर उठ आता है। योग दर्शन के आचार्य पतञ्जलि ने कर्म प्रधान योग साधना में स्वाध्याय को तप के समान ही माना है—

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः।

योग दर्शन 2/1

---

1. सेवा के विषय में और देखना हो तो देखें—उपाध्याय श्री अमर मुनि का लेख—"जैन संस्कृति में सेवा का स्थान" जैनत्व की झांकी पृ. 20।

2. भगवती सूत्र 25/7

परम उज्जवल एवं विशुद्ध बन जाती हो, वह शुक्ल ध्यान है। शुक्ल ध्यान उसी भव में मोक्षगामी आत्मा कर सकता है। इसके चार भेद हैं--जिनमें प्रथम भेदो में एक द्रव्य, द्रव्य परिणाम आदि को आलम्बन बनाकर ध्यान किया जाता है। तीसरी अवस्था में मन, वचन के व्यापार का निरोध हो जाता है काया के भी स्थूल व्यापार रुक जाते हैं। चौथी अवस्था सम्पूर्ण निरोध अवस्था है। उसमें सब योगो की सूक्ष्मतम चचलता का भी निरोध हो जाता है और परम स्थिर अवस्था म आत्मलीन हो जाता है। शुक्ल ध्यान के चार लक्षण, चार आलम्बन और चार भावनाएँ हैं।

(6) व्युत्सर्ग—यह छठा आभ्यतर तप है। उत्सर्ग का अर्थ त्याग, बलिदान। निछावर हो जाना। व्युत्सर्ग से इसका अर्थ हुआ। विशेष प्रकार का बलिदान। व्युत्सर्ग तप की आराधना तपस्या की चरम कोटि है इसम साधक परम असग नि सगभाव अनाशक्त दशा को प्राप्त हो जाता है। शरीर वस्त्र उपधि शिष्य आदि की ममता से रहित होकर फिर कषाय त्याग और क्रमश ससार त्याग कर कर्म मुक्त अवस्था तक पहुँच जाता है।

मोह ससार का मूल माना गया है—आगम म बताया गया है जड सूख जान पर जैसे वृक्ष हरा-भरा नही हो सकता, वैसे ही मोह कर्म क्षीण होने पर कर्म रूप वृक्ष हरे भरे नही हो सकते।[1] मोह से ही तृष्णा पैदा होती है और तृष्णा से ससार बढता है।[2] व्युत्सर्ग तप की साधना से साधक मोह को क्षीण करता है, अभय की ओर बढता है। और अपने लक्ष्य के लिये बलिदान होने को मचल उठता है। आचार्य अकलक ने कहा है—

नि सग-निर्भयत्व-जीविताशा व्युदासाद्यर्थो व्युत्सर्ग

राजवार्तिक 9/26/10

व्युत्सर्ग से नि सगता, निर्भयता से जीवन के प्रति अमोह भाव प्राप्त होता है और तभी साधक अपने चरम लक्ष्य के लिये सर्वस्व बलिदान कर सकता है।

व्युत्सर्ग के दो भेद बताये गये हैं—द्रव्य- और भावव्युत्सर्ग।

द्रव्यव्युत्सर्ग चार प्रकार का बताया गया है।[3]

(1) सरीर विउस्सग्गे—शरीर का त्याग (कायोत्सर्ग)।

(2) गणविउस्सग्गे—गण सघ का त्याग कर एकाकी साधना करना

(3) उवहिविउस्सग्गे—उपधि—उपकरण आदि सामग्री से निरपेक्ष रहना।

(4) भत्तपाणविउस्सग्गे—आहार पानी आदि का त्याग करना—अनशन।

---

1 बीय घाण विणायइ।
उत्तराध्ययन 26-12-18

2 विस्तार के लिये देखे—भगवती सूत्र 25 17 स्थानाग सूत्र 4 एव उववाई सूत्र तप अधिकार।

3 एव कम्मा न रोहति मोहणिज्जे खय गते।
दशाश्रुत स्कध 5 14

क्लेश उत्पन्न करने वाले हैं। अतः इनका परित्याग करना चाहिये, और शुभध्यान–धर्म और शुक्ल का आश्रय लेना चाहिये। आचार्य हरिभद्र एवं हेमचन्द्र सूरि ने तो अशुभ ध्यान को ध्यान कोटि से ही निकाल दिया है क्योंकि ये आत्मा का पतन करने वाले है।

(1) आर्तध्यान—इसका अर्थ है—पीड़ा सम्बन्धी चिन्तन। इसके चार रूप हैं—

(क) इष्टवस्तु के संयोग की चिन्ता।

(ख) अनिष्टस्वतु के वियोग की चिन्ता।

(ग) रोग आदि उत्पन्न होने पर उनको दूर करने की चिन्ता।

(घ) प्राप्त भोगों के अवियोग की चिन्ता।

आर्तध्यान दीनता प्रधान होता है, उसमें करुणभाव अधिक रहता है, मन दुःखी, संतृप्त एवं उद्विग्न होता है। इसे पहचानने के चार लक्षण हैं—आक्रंदन, दीनता, आँसू बहाना और बार-बार क्लेश युक्त भाषा बोलना।

(2) रौद्र ध्यान—रुद्र का अर्थ—क्रूर, बीभत्स। रौद्रध्यान में मन की दशा बड़ी भयानक, क्रूरतापूर्ण होती है। मन बड़ा ही कठोर और निर्दय हो जाता है।

रौद्र ध्यान चार प्रकार के होते हैं—

(1) हिंसा सम्बन्धी निरन्तर चिन्तन,

(2) असत्य सम्बन्धी निरन्तर चिन्तन,

(3) चोरी सम्बन्धी निरन्तर चिन्तन,

(4) धन आदि के संरक्षण सम्बन्धी

इसके भी चार लक्षण बताये गये हैं।

(3) धर्म ध्यान—धर्म ध्यान में आत्मा शुभ चिन्तन में लीन होता है, इससे मन की गति ऊर्ध्वमुखी बनती है, उसमें निर्मलता और विशुद्धता आती है, क्रमशः धर्म ध्यान का चिन्तन आत्मा के अनन्त रूपों का उद्घाटन करने लगता है और उसकी सुषुप्त शक्तियाँ जागृत होती हैं। विषय की दृष्टि से धर्मध्यान के भी चार प्रकार हैं—

(1) आज्ञा विचय—भगवदाज्ञा के विषय मे चिन्तन,

(2) अपायविचय—राग-द्वेष आदि के अशुभ परिणामों पर चिन्तन,

(3) विपाकविचय—कर्मफल के सम्बन्ध में चिन्तन,

(4) संस्थान विचय—लोक के सम्बन्ध में चिन्तन।

धर्म ध्यान में चिन्तनप्रधान [illegible] रहता है, इसलिये इन सब विषयों पर चिन्तन करना [illegible] इसमें वैराग्य प्रधान चिन्तन है, जबकि शुक्ल ध्यान आत्मा सम्बन्धी अधिक स्थिर चिन्तन है।

धर्म ध्यान के चार लक्षण, चार आलम्बन और चार अनुप्रेक्षाएँ हैं।

(4) शुक्ल ध्यान—शुक्ल का अर्थ है—[illegible]

अब मैं अपने तपस्वी बन्धु बहिनों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ कि जिन्होने गृहस्थ जीवन के मोह को कुछ दिनो के लिए त्यागकर अनुपम साधना मे स्वय को जोड गुरुदेव गणिवय श्री के चरणा मे स्वय को समर्पित किया व जगह जगह से आये हुये एक दूसरे के बीच मे सहृदता सस्नेह, समता के साथ समय व्यतीत किया। कभी किसी के साथ सघर्ष का, अशाति का माहौल नही देखा यह, हमारी साधना का, हमारी प्रगति का प्रतीक है।

इसी प्रकार का वातावरण हमेशा मिलता रहे, इसी माहौल म स्वय का गुजारे इसी शुभ कामना के साथ गुरुदेव के चरणो मे शत-शत वन्दना पूर्वक अपनी लेखनी को समाप्त करता हूँ।

जय कुशल गुरुदेव

—टोंक (राज०)

बाह्य प्रदशन आज के युग की नियति बन गई है। सवत्र प्रदशन की चाँदनी चमक रही है, परन्तु यह बाह्य भौतिक प्रदशनो की छटा क्षणिक है नश्वर है।

धम के क्षेत्र म भी आजकल प्रदशन प्रधान हो गया है जबकि मनुष्य प्रदशन से नही अपितु आचरण से धार्मिक बनता है। बाह्य दिखावा एक प्रकार का छल है।

तिलक लगाना परमात्मा के आदेशो को शिरोधाय करना है। हमारा हर आचरण, हर क्रिया परमात्मा के उपदेशो के द्वारा अनुशासित होनी चाहिये। हमारी हर क्रिया व व्यवहार म धम का दशन तथा आचरण की पवित्रता अनिवाय है।

जैन श्रावक कहलाने का अधिकारी वही है, जो अपने व्यापार मे अनीति, अन्याय नही करता। धोखा, बेईमानी, प्रपच करने वाला धन, वैभव का मालिक हो सकता है, पर उसे शाति नही मिल सकती। न्याय नीति का पैसा न केवल शाति देता है बल्कि साधना के लिए भी सम्बल प्रदान करता है।

— गणि मणिप्रभसागर

मेरा मन तैयार होने लगा कि उपधान करना है, किन्तु शंका थी, भय था कि यह तप मेरे से पूरा हो नहीं सकता है बैठूंगा तो सही लेकिन 20 दिन के उपधान में लेकिन गणिवर्य श्री की क्रिया की रोचकता और सूत्रों की व्याख्या ने दो दिन बाद ऐसा मानस बना दिया कि अब तो उपधान पूरा करना है। पूर्णरूप से मेरी रुचि उपधान तप की क्रिया में लग गयी। यह प्रभाव श्रद्धेय गणिवर्य श्री की क्रिया की सुन्दरता, वाक्-पटुता, प्रवचन कला, तत्त्व को समझाने की शैली, समता, सरलता, अनुशासकता का ही था कि मेरा दुर्बलमन सबल बन गया। गणिवर्य श्री उपकारों को, कृपा को, किन शब्दों से अभिव्यक्त करूँ क्योंकि उपकार अनन्त है, शब्द सीमित है व गुरु के उपकारों का ऋण शब्दों से चुकाया नहीं जा सकता। उनके ऋण को चुकाने के लिए स्वयं को शिष्य रूप में समर्पित होकर सदा के लिए सेवा में ही रहना होगा? तब ही गुरु के ऋण को शिष्य चुका सकता है। ये दिन मेरे जीवन में शोभना से आये, मैं अपने ऋण से मुक्त बनूँ, गुरुदेव के चरणों में यही अभिलाषा है।

मेरी प्रबल इच्छा थी कि पू. प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म. सा. व पू. प्रधानसा अविचल श्री जी म. सा. का भी सान्निध्य मिले लेकिन न मिल पाया। पू. प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म. सा. ने अपनी योग्य शिष्याओं को भेजकर हमें अनुगृहीत किया। वे आज हमारे समक्ष नहीं हैं। हम उपधान [illegible] 9 दिन पश्चात् ही हमारे बीच से बिछुड़ गईं। [illegible] श्रद्धा प्रकट करता हूँ।

[illegible]

क्रिया को अनुशासन के साथ संभाला, उनके प्रति मैं अपनी सादर श्रद्धा अभिव्यक्त करता हूँ।

पू. शशिप्रभा श्री जी म. सा. की मेरे ऊपर पूर्ण कृपा रही। जयपुर होते हुए भी उपधान तप को सफल बनाने में सतत प्रेरणा रही व माल महोत्सव प्रसंग पर पहुँचने का पूरा प्रयास था परन्तु 28 ता. की दो दीक्षायें होने के कारण न आ सके। लेकिन पू. प्रियदर्शना श्री जी म. सा. आदि 3 ठाणों को माल महोत्सव प्रसंग पर पधारने का आदेश दिया। गुरु आदेश पाकर अस्वस्थ होते हुए भी आप मालपुरा पधारे, यह मुझ पर आप श्री अनन्य कृपा का ही परिचायक है।

मैं सर्वप्रथम बीकानेर वाले श्रावक श्री पन्नालाल जी व बांठिया, श्री सूरजमलजी, पुंगलिया, श्री चांदमलजी, पारख व श्री वजीलालजी का आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने आवश्यक सुझाव दिये, जिनके सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हो सका। अपने व्यस्त समय से भी दो महीने का समय दिया व्यवस्था का संचालन किया।

जयपुर संघ का भी आभार करता हूँ कि उन्होंने मालपुरा में उपधान तप करवाने की स्वीकृति प्रदान की व स्थानीय (मालपुरा) संघ को भी साधुवाद देता हूँ कि उन्होंने तपस्वियों की सेवा में व [illegible] अपना अमूल्य समय देकर इसे पूर्ण किया।

दादाबाड़ी के सभी कर्मचारियों को धन्यवाद देता हूँ कि जिन्होंने उपधान तप की व्यवस्था को व्यवस्थित बनाने के लिए [illegible] योगदान किया।

[illegible]

मैं प्रत्यक्ष में कुछ कहूँ। मैंने पूज्यवर्या गुरुवर्या श्री से निवेदन किया और गुरुवर्या श्री ने सहज में एक दिन कहा— सौम्याणी आपसे पढ़ना चाहते हैं।

गुरुदेव श्री ने तनिक मुस्कान से मुझे देखा और कहा—मुझे क्या एतराज है? मुझे तो लाभ ही है कि मेरी एक शिष्या बढ़ रही है क्यों? कहते कहते उन्होंने एक उन्मुक्त हँसी का फव्वारा छोड़ दिया और मेरा तो विस्मय के मारे बुरा हाल था।

पढ़ने का समय उसी दिन निश्चित हो गया। अगणित कल्पनाओं में मेरा मन डूब रहा था। कभी उनकी सहजता और सरलता आश्वस्त करती थी तो उनके चेहरे की गंभीरता हताश कर रही थी कभी उनके व्यक्तित्व की ऊँचाइयाँ मेरे मानस को संकोच से घेर रही थी।

अनेक कल्पनाओं के तोड़ जोड़ में अध्ययन का निश्चित समय आ गया। प्रवचन समाप्त होते ही मुझे पढ़ाने पधार गये। गुरुवर्या श्री पास ही विराज रहे थे। मेरा पसीना छूट रहा था। उन्होंने मेरी हिचक भाँप ली। उन्हें लगा—जब तक विद्यार्थी सहजमना न हो तब तक वह स्थिरमन होकर पढ़ नहीं सकता।

उन्होंने अपने प्रसिद्ध जटाशंकर टाटाशंकर को आमंत्रित किया। सहजमन से एक चुटकुला सुनाया। और सुनते सुनते मेरे मन का संकोच कब तिरोहित हो गया, मुझे खेद अहसास नहीं रहा। कब पाठ प्रारम्भ हुआ और कब पाठ समाप्त हुआ, मुझे पता ही नहीं लगा।

क्रमशः मेरा अध्ययन चलता गया। उनके पढ़ाने की इतनी सरल पद्धति है कि ज्यों ज्यों जटिल से जटिल विषय में मेरा मन डूबता चला गया।

इसी अध्ययन के क्रम में उनके व्यक्तित्व के अनेक पहलू उजागर हुए। कभी उनकी गहरी प्रसन्नता झलकती थी तो कभी भूल होने पर उनके गुस्से का प्रसाद भी मिलता था पर उनका गुस्सा क्षणिक ही होता था और दूसरे ही पल वे पुनः उसी पाठ को अन्य पद्धति से पढ़ाने में तल्लीन हो जाते थे।

एक अनुशास्ता में जो गुण होने चाहिये वे सारे गुण उनमें समाहित हैं और अनुशास्ता के ही क्यों मुझे अपने गहरे अनुभव से लगा कि ऐसा कौनसा गुण है जो इनमें नहीं है। "All in one" वाली उक्ति के ये यथार्थ और सजीव चित्र हैं।

अनेक संभावनाएं उनके व्यक्तित्व से उजागर होने की आशा है। मुझे आशा है भविष्य में वे हमारे संघ का नेतृत्व करते हुए विकास की नयी परिकल्पनाओं के उन्मेष उद्घाटित करेंगे।

मुझे गौरव है कि आपसे सीखने का पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। भविष्य में ऐसे अगणित स्वर्णिम अवसर उपलब्ध हों।

इन्हीं कामनाओं के साथ।

आस्था-केन्द्र गुरुदेव

□

सज्जन चरण रज सौम्य गुणा श्री

परम श्रद्धेय महामनीषी गणिवर्य श्री मणिप्रभसागर जी म. सा. को बहुत बचपन से देखती आयी हूँ। सर्वप्रथम उन्हें एक समर्पित शिष्य के रूप मे देखा। प. पू. गुरुवर्या श्री की निश्रा मे मैं अध्ययनरत थी और तभी चातुर्मास जोधपुर आचार्य श्री की सेवा मे करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मैं उस समय संयमी जीवन का प्रशिक्षण ले रही थी। पूज्य महाराज श्री को उस समय एक आदर्श शिष्य की छवि मेरे मानस पटल पर गहराई से अंकित हो गयी।

पूज्य आचार्य श्री की प्रत्येक आज्ञा उनकी धड़कन थी। उस धड़कन को सुनने के लिए वे प्रतिपल सजग और चौकन्ने रहते थे। स्वयं बेहद प्रतिभासंपन्न होते हुए भी विनम्रता पूर्वक आज्ञा की स्वीकृति मे अपना गौरव समझते थे।

आगम और दर्शन की मान्यताओं मे हुआ उनका [illegible] [illegible] वर्षों चार वर्ष पूर्व समाप्त [illegible] और उसका स्थान लिया [illegible] के [illegible], अपने उपाध्याय [illegible] पूर्ण [illegible] प्रवचन [illegible] । जोधपुर में उनकी [illegible] आगम [illegible] [illegible], [illegible] और उसके बाद जयपुर में [illegible] समारोहों [illegible] देखी।

उनके प्रवचन का बहता प्रवाह ऐसा लगता है जैसे कोई कल-कल करती नदी का शांत अविरल प्रवाह हो। प्रवचन का ही यह आलम था कि जयपुर में लगातार चार-चार माह तक जनता की सुनने की ललक बनी रही।

जयपुर का चातुर्मास संघ की प्रबल भावना की परिणति थी तो साथ ही गुरुवर्या श्री के प्रति उनकी अटूट आस्था भी इसमें अवश्य झलक रही थी। अपने सारे कार्यक्रमों को रद्द कर उन्होंने चातुर्मास की स्वीकृति दी और उसी के साथ मेरी अनेकानेक श्रमणाओं का महल भी भरभराकर गिर पड़ा।

अक्सर हम उन्हें कठोर और स्नेह शून्य की संज्ञा देते रहे हैं। उनकी गम्भीरता को हमने कठोरता की संज्ञा दी है परन्तु चातुर्मास की स्वीकृति ने हमारे भीतर एक सुखद अहसास करवाया कि वे गम्भीर हैं पर कृत्रिम नहीं। स्नेह और संवेदनाओं से सराबोर वे अपने कर्तव्यपालन में सजग हैं और फिर तो [illegible] का [illegible] [illegible] चातुर्मास [illegible] बन गया।

पूज्यवर ज्योतिष के [illegible] विशेषज्ञ हैं। मेरी उत्सुकता रही। [illegible] के [illegible] प्रकार [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि

भावव्युत्सर्ग के तीन भेद—

(1) कसायविउस्सग्गे—क्रोध, मान आदि कषायों का त्याग।

(2) संसार विउस्सग्गे—चार गति रूप परिभ्रमण का अन्त करना।

(3) कम्मविउस्सग्गे—आठ प्रकार के कर्मों का अन्त करना।

इन सब के विस्तार के लिये भगवती सूत्र का टीका व प्रवचन सारोद्धार देखना चाहिये।

शरीर व्युत्सर्ग को प्रतिक्रमण के छह आवश्यकों में पाँचवा स्थान भी दिया गया है।[1] और इसे जीवन की अन्तिम साधना नहीं मानकर दैनिक जीवन की, अपितु क्षण-क्षण की साधना मान ली गई है। साधक जीवन के कदम-कदम पर देह को आत्मा से भिन्न मानकर चले, यह आत्मा विज्ञान कायोत्सर्ग की साधना से ही तेजस्वी बनता है। जब आत्मा को शरीर से भिन्न मान लिया तो फिर शरीर का ममत्व अपने आप हट जाता है और साधक किसी भी दैहिक मूल्य पर अपनी आत्मा को कहा गया है, "अभिक्खणं काउस्सग्ग-कारी[2]—वह क्षण-क्षण कायोत्सर्ग की साधना करता रहे।

उपसंहार

तपस्या के इन बारह भेदों को गहराई से देखने पर जीवन की समग्र साधना का एक क्रमिक रूप लक्षित होता है। साधक सर्वप्रथम शारीरिक दोषों को दूर करने के लिये अनशन आदि का आचरण करता है, अनशन के द्वारा म भी प्रमार्जित होता है, आगे के तपश्चरणों में भी बाह्य कठोरता कम प्रतीत होने लगती है पर आन्तरिक शुद्धि की प्रक्रिया प्रबल और प्रबलतर होती चली जाती है। मन की विशुद्धि—उज्ज्वलता बढ़ती जाती है और फिर आभ्यान्तर तप तो अन्तर विशुद्धि को और भी निखारता चला जाता है। विशुद्धि की चरम प्रक्रिया ध्यान है, ध्यान से आत्मा परम विशुद्ध दशा को प्राप्त हो जाती है उसके बाद शरीर, उपधि आदि की ममता स्वतः ही समाप्त हो जाती है, और व्युत्सर्ग साधना की दशा प्राप्त हो जाती है।

तपरूप आत्मविशुद्धि की यह प्रक्रिया जितनी आध्यात्मिक है उतनी ही वैज्ञानिक भी है। मानव मन की गहरी समझ इस क्रम में लक्षित होती है। इस तपप्रक्रिया विकसित चिन्तन, जितना जैन मनीषियों ने किया है, उतना शायद ही किसी अन्य परम्परा के मनीषियों ने किया है। वैदिक परम्परा में अधिकतर बाह्य तपों पर बल दिया गया है; और प्रायः उन्हें ही तपस्या माना गया है। ध्यान योग आदि को तप से अलग मानकर एक भिन्न धारा का ही विकास वहाँ हुआ है। कुल मिला कर तप इतना सुन्दर और सूक्ष्म चिन्तन वहाँ भी नहीं हुआ है।

गीता के 17 वें अध्याय में तप के सम्बन्ध में कुछ विचार मिलते हैं किन्तु वे बहुत ही सामान्य

1. उत्तराध्ययन 32-8
2. [illegible]
3. [illegible]
4. दशवैकालिक सूत्र 2।

उपधानपति श्री लोढाजी का भाषण

□

सौभागमल लोढा

मैं अपने सौभाग्य की सराहना किये बिना नहीं रह सकता। मेरा परम पुण्योदय ही था कि मुझे मनुष्य जीवन के अमूल्य क्षणों को साधारणवत् जीवन व्यतीत करने के लिये महाप्रज्ञ युग प्रभावक सम्यक क्रिया निष्ठा श्रद्धेय गुरुवर्य श्री का सद् सानिध्य प्राप्त हुआ ? यूं तो दर्शन का सौभाग्य कई बार मिला व आप श्री का आगमन टोंक में भी हुआ। जयपुर चातुर्मास होने के कारण जयपुर भी समय समय पर दर्शन हेतु जाता रहा।

हृदय की एक आवाज की प्रेरणा थी कि मुझे अपने जीवन काल में जिन शासन की प्रभावना हेतु श्रेष्ठ कार्य करवा कर सम्पत्ति का सदुपयोग करना है ?

श्रद्धेय गणिवर्य श्री के टोंक आगमन ने मुझे अन्तर्तम चेतना में प्रेरणा दी उपधान तप करवाने की। बस, इस कार्य का साकार करने के लिये गणिवर्य श्री से इस विषय में जानकारी लेता रहा व पू. प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्री जी म सा व प्रधानसा अविचल श्री जी म सा से भी इस विषय में चर्चा करता रहा।

चर्चा के दौरान मेरी उपधान तप करवाने की भावना को जानकर सभी पूज्यवरों ने मुझे उपधान तप करवाने की प्रेरणा दी। तुरन्त मैंने इस बात को हृदय में स्वीकार करते हुए संकल्प किया कि मुझे यह कार्य जल्दी ही करवाना है। अब इस अवसर से वंचित नहीं होना है।

अब यह प्रश्न सामने था कि यह तपोत्सव कहाँ करवाना क्योंकि टोंक में यह करवाना असम्भव लग रहा था। व्यवस्था व अनुकूल स्थान की दृष्टि से। सोचने पर जयपुर के लिए निर्णय लिया लेकिन योग न होने के कारण वहाँ न हो सका तत्पश्चात् मालपुरा का निर्णय लिया। स्थान का निर्णय तो हो गया लेकिन व्यवस्था सम्भालने के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ। फिर अथक् प्रयत्न से इस व्यवस्था को सम्भालने के लिए बीकानेर वाले तैयार हो गये। जो गत वर्ष ही गणिवर्य श्री के सान्निध्य में हुये उपधान तप में निष्ठापूर्वक व्यवस्था को संभाल चुके थे।

अब प्रसन्नता का पारावार नहीं था। क्योंकि इस कार्य को दादा गुरुदेव श्री जिन कुशल सूरि (मालपुरा) की छत्रछाया में कराने का व तपस्वियों के सेवा करने का सुअवसर प्राप्त होगा। पू. गणिवर्य श्री का उपधान तप करवाने हेतु 26 ता. को मालपुरा में धूमधाम से प्रवेश हुआ।

उपधान तप का प्रारम्भ ता 5 दिसम्बर था। उस बीच मैं टोंक चला गया 30 ता को व्यवस्था देने के लिए पुनः मालपुरा पहुँचा।

साधना काल के अनुभव

□

शांता देवी गोलेच्छा

उपधान शब्द सुनने मे अतिप्रिय लग रहा था लेकिन 51 दिन तक गृहस्थ के कार्यो को छोड़कर जाने के लिए मानस तैयार नही हो रहा था।

किन्तु गणिवर्य श्री के जयपुर चातुर्मास में जब उपधान का निश्चित हुआ तब पू. शशिप्रभा श्री जी म. सा. ने मुझे अनुशासन के साथ कहा कि इस बार उपधान अवश्य करना है, हर हालत मे करना है। उनकी अन्तर की प्रेरणा मेरे अन्तर मे घर कर गयी व संकल्प किया कि उपधान का अनुभव अवश्य करना है।

उपधान की साधना में बैठने के बाद लगा कि इसी तरह की दिनचर्या सदा के लिए रहे! साधना में मन लगाने का कारण था कि गणिवर्य श्री के क्रिया की रोचकता। उनके द्वारा दिलाये एक-एक खमासमण इतना महत्वपूर्ण होता कि हृदय आनन्द की लहरें लेने लगता तो उपधान तप की पूरी क्रिया का आनन्द अपने आप में कितना होगा? इसकी अनुभूति का तो कोई पारावार नही था किन्तु अभिव्यक्ति तो असम्भव ही है।

जयपुर (राज०)

गुरुदेव श्री

□

कुसुमदेवी डागा
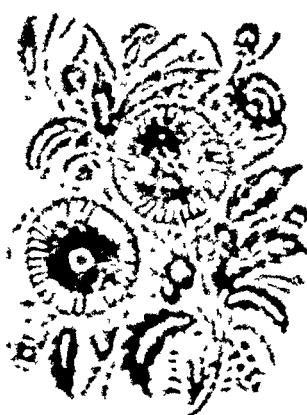
माकलसर की भूमि म ज म

लुकड गोत्र म तुम पनप ॥ 1 ॥

मा रोहिणी के राज दुलार

पिता पारस के सुत प्यारे ॥ 2 ॥

वानवय म सयम धारे

गुरु काति सि धु तुम्ह तारे ॥ 3 ॥

दिया मणिप्रभ तुम नाम

किया मणिवत् तुमने काम ॥ 4 ॥

अल्प उम्र म गणि हुये घोषित

जन मन तुमका पा है हर्षित ॥ 5 ॥

मालपुरा कुशल छत्र छाया

उपधान तप ठाठ लगाया ॥ 6 ॥

श्रेष्ठ उपधान तप पूण करवा

सफल किया सब का ज म मनवा ॥ 7 ॥

तुम चरणा म श्रद्धा 'कुसुम" धरू

सम्यक् दशा प्राप्त कर माक्ष वरू ॥ 8 ॥

जयपुर (राज०)

श्रद्धा ही कुंजी है

□

विद्युत् गुरु चरणाश्रिता साध्वी शासनप्रभा श्री

आत्मिक जगत् की साधना साधने हेतु एक विशिष्ट व्यक्तित्व या सहारे की आवश्यकता होती है। अंधकार मे भटके हुए प्राणी को प्रकाश में लाने के लिये मजबूत आलवन है—गुरु।

गुरु का अर्थ है—जो हमे असत्य से सत्य की ओर ले जाय, अधंकार से आलोक की ओर ले जाय।

अध्यात्मक क्षेत्र मे श्रद्धा को सर्वोपरि माना गया है। जिस प्रकार भौतिक जगत् के कार्य शक्ति के आधार पर सपन्न होते है। उसी प्रकार अध्यात्मक जगत् मे श्रद्धा का महत्त्व है। श्रद्धा-रहित क्रिया को निष्प्राण माना गया है।

परमात्मा महावीर के शब्दो मे—'सद्धा परम दुल्लहा" श्रद्धा परम दुर्लभ है। श्री कृष्ण ने भी अर्जुन को यही संदेश दिया—

"सत्वानुरूपा सर्वस्य, श्रद्धा भवति भारत
श्रद्धा मनोऽयं पुरुपों यो, यच्छ्रद स एव सः"।

हे अर्जुन! यह सृष्टि श्रद्धा से विनिर्मित है। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वह पुरुप वैसा ही बन जाता है। अर्थात् बुराइयो के प्रति श्रद्धा व्यक्ति को समस्याओं में कैद कर देती है तथा आदर्शो के प्रति श्रद्धा मानव जीवन को शांति और प्रसन्नता से भर देती है।

श्रद्धा-अर्थात्-श्रेष्ठता के प्रति अटूट आस्था। श्रद्धा का दूसरा अर्थ है—आस्था, विश्वास। व्यक्ति उसी कार्य मे समुन्नत हो सकता है जिसे वह कर रहा है उसके प्रति उसके मानस मे आस्था है।

श्रद्धा मानव जीवन का प्राण व अन्तरात्मा का विपय है। श्रद्धा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने लक्ष्य को उपव्ध हो सकता है। इसलिये श्रद्धा को जीवन कहा गया है। जहाँ श्रद्धा वहाँ सब कुछ है।

इन दिनों अनेक आराधक परम पूज्य गणिवर्य श्री के कुशल निर्देशन मे उपधान तप की आराधना श्रद्धामय होगी। श्रद्धागुण समन्वित उनका यह अनुष्ठान उन्हे आत्मा की निर्मलता मे सहायक बने। यही शुभकामना।

नियन्त्रण

□

साध्वी विनीतयशा श्री

पाँचो इन्द्रियो मे से रसेन्द्रिय को जीतना सबसे ज्यादा दुष्कर है। सभी इन्द्रियो के पास एक एक काय है, जबकि इस रसेन्द्रिय के पास दो महत्त्वपूर्ण और खतरनाक विभाग हैं—(अ) बोलना (ब) स्वाद लेना। यदि जीवन को सफल बनाना है तो इस पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करना होगा। अनियन्त्रित भोजन स्वास्थ्य का घातक है तो अनियन्त्रित वचन की कटु परिणाम भोगने पर विवश कर देते हैं नियन्त्रित भोजन स्वस्थता प्रदान करता है। नियन्त्रित वचन जीवन मे आनन्द रस से भरपूर बहार लाता है। □

हमारे आचरण मे, हमारे सस्कार बोलते हैं। जैसे सस्कार होग वैसे ही विचार बनेंगे और उन्ही का आचार मे रूपान्तरण होगा।

व्यक्ति तीन प्रकार के होते हैं—एक, अपना गवाकर के भी अन्यो को लाभ पहुचाना चाहते ह, दूसरे वे होते हैं—जो अपने लाभ-हानि के प्रति नजर नही रखते और दूसरो की हानि करते हैं और तीसरे वे होते हैं—जो अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये अन्यो को दुख की आग म धाक देते हैं।

आदमी वही कहला सकता है जो अपने आचरणो मे अन्यो को लाभ पहुचाये। परोपकार की भावना ही व्यक्ति मे मानवता का सचार करती है।

□

बडे बडे व्यक्तियो का भी नाम नही रहता है तो सामान्य व्यक्ति का क्या मूल्याकन हो सकता है ?

अपनी नामवरी के लिये प्रयत्न करना घृणित राजनीति का एक हिस्सा है। नाम उसी का रहता है—जो नामवरी की इच्छा के बिना परोपकार के काय करता है।

वही व्यक्ति महामानव कहला सकता है जो यशोलिप्सा स दूर होकर परोपकार परायण हो। यदि हम अपने नाम के खातिर यशोलिप्सा स ग्रस्त रहते है तो यह हमारा सासारिक दृष्टि कोण है।

—गणि मणिप्रभसागर

जैन ज्योति

□

सुश्री अर्चना चतर

हे जैन ज्योत तुम्हें वंदन !

शत-शत हो आपका अभिनन्दन ।

धवल वस्त्र धारिणी, मन है कितना उज्ज्वल ।

संयमशील तपस्या का है, तेज चेहरे पर आखंडल ।।

जन्म खड्गपुर नाम कमल, लगता है सबको निर्मल ।

दीक्षित नाम है सम्यक् दर्शना, मन मानस है अविचल ।।

जन-जन को दे प्रवचन, जैसे बहता पावन अमृत जल ।

करुणा मूरत समता मूरत, साधना उज्जवल-उज्ज्वल ।।

सौम्य सहजता, पावनता, है जीवन तेरा परम सरल ।।

जीयो हजारो वर्ष और फैलाओ जिनशासन परिमल ।

यही हमारी कामना है, गुरुदेव करेंगे अवश्य सफल ।

मुक्तक (2)

(तर्ज ऐ मेरे दिले नादान)

□
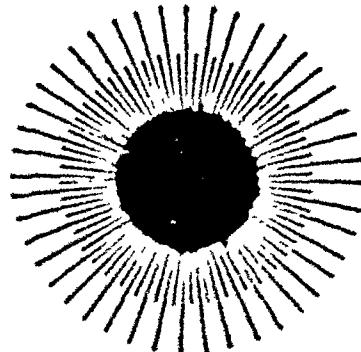
आर्या प्रियदर्शना श्री

ओ सज्जन गुरुवर्य्या ! हमें दर्शन दे देना
हम आयी शरण तेरी यह विनती सुन लेना ॥ टेर ॥

मा महताब की प्यारी थी, जन-जन की दुलारी थी
पिता गुलाबचन्द जी से, पायी सुगन्ध निरानी थी
उस सुगन्ध का इक अंश, हमको भी देना ॥ १ ॥

आगम मर्मज्ञा थी, आशु कवयित्री तुम
अनुवादिका अद्‌भुत थी और सुन्दर लेखिका तुम
तेरी गीतिकाएँ अनुपम, गाते सब दिन रैना ॥ २ ॥

सिद्धान्त विशारद थी, अति शान्त सरल विज्ञा
थी गच्छ प्रवर्तिनी तुम, करती सुमधुर आज्ञा
चहुँमुखी प्रतिभा तेरी, की दूर कर्म सैना ॥ ३ ॥

तेरा स्वर्ग गमन सुनकर, दिल हा हाकार मचा
इस क्रूर काल ने भी, हा ! यह क्या खेल रचा
वंचित किया दर्शन से, भर भर आते नैना ॥ ४ ॥

जब तक इस दुनिया में, रहे 'शशि' ऋक्ष दिनकर
तब तक रहे इस जग में, तेरा उज्ज्वल नाम अमर
तेरी कीर्ति का डंका भी, बजता रहे दिन रैना ॥ ५ ॥

सज्जन मंडल तुम से, करे प्रार्थना प्रतिपल
सम्यग् दर्शन पाकर, धोये कर्मों का मल
शशि सम तुम "प्रियदर्शन कब होंगे ! बना देना ॥ ६ ॥

मुक्तक (I)

(तर्ज : चाँदी जैसा रूप है तेरा…… ……)

□

प. पू. प्र. सज्जन गुरु चरण रज
आर्या प्रियदर्शना श्री

कैसा अनुपम रूप है तेरा, आगम ज्योति महाराज
एक तुम्हारा ही ध्यान, भगवती, तुम सबकी शिरताज ॥ टेर ॥

संवत उन्नीसो पैंसठ की, वैशाख पूर्णिमा आई
लूनिया वंश में शुभ्र समुज्ज्वल, कौमुदी बनकर छाई
महताब मा की रत्नकुक्षि से, लियर जन्म सुखदाई
घर-घर तोरण द्वार बंधे हैं, बज रहे मंगलसाज ॥ १ ॥

पिता गुलाबचन्द जी तू ने पाई सुखद सुवास
आगम ज्ञान का वाचन करके, किया स्वक्ता सुविकास
यौवनवय में लेकर दीक्षा, ज्ञान गुरु के पास
पा उपयोग से अनुपम शिक्षा, बनी सज्जन श्री महाराज ॥ २ ॥

कान्ति गुरु के वरद हस्त से, बनी प्रवर्तिनी सुज्ञा
आशु कवयित्री थी अद्भुत और आगम मर्मज्ञा
ग्रन्थ अनेकों की निर्मात्री, कई भाषाओं की विज्ञा
तेरी गुण गरिमा गाते हैं, सुरनर योगिराज ॥ ३ ॥

संवत दो हजार छियालीस, मौन एकादशी आई
क्रूर काल ने निर्दय हाथों, लिया गुरु को छिटकाई
हा हाकार मचा है निशदिन, दिखत बना दुखदाई
क्षतिपूर्ति कभी हो न सकेगी, कहे सारा जैन समाज ॥ ४ ॥

'सज्जन वंदन' लिखी रचना, [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

उपधान तप की दिनचर्या

विमला देवी झाडचूर

मन मे असीम उत्साह था, हर्षोल्लास था कि शीघ्र ही गणिवर्य श्री की निश्रा म दूसरा उपधान करन का सौभाग्य प्राप्त होगा।

प्रथम उपधान भी गणिवर्य श्री की निश्रा म ही किया था।

द्वितीय बार मालपुरा स्थित दादावाडी मे हो रह उपधान म ज्योंहि प्रवेश किया—गुरुदेव का तीर्थ स्थल होन क कारण मेरा आनन्द दस गुणा बढ रहा था।

गणिवर्य श्री की निश्रा म हुये उपधान की विशेषता थी कि पूरे दिन की चर्या म क्रिया मे समय इतना निश्चित रहता कि एक क्षण भी सोचने क लिये अवकाश नही मिलता कि अब क्या करना ? पूरी क्रिया पणरूपण निर्धारित समय पर व्यवस्थित व सुचारु रूप से होती थी।

हमारी दैनिक चर्या इस प्रकार रहती सुबह 3 बजे शय्या का त्याग करना समय की सूचना के लिये पू सम्यक्दर्शना श्री जी म सा अपनी मधुर वाणी से हम जागृत करती कि कायोत्सर्ग का समय हो गया स्वय कायोत्सर्ग का पाठ बोलकर सभी को कायोत्सर्ग म स्थित करवाती व पश्चात् प्रतिक्रमण प्रतिलेखना सम्न्याय वसति शोधन 7 30 बजे प गणिवर्य श्री का साधना कक्ष म आगमन होता। उन क्षणो म आनन्द का पारावार नही रहता सभी उल्लसित हर्षित प्रफुल्लिता दृष्टि गोचर होते। पू गणिवर्य श्री के मुखारविन्द स निसिहि शब्द क सम्बोधन से क्रिया प्रारम्भ होती। उनक मुख से निकला एक-एक शब्द ऐसा लगता था कि मानो अमृत जल बरस रहा है, एक एक शब्द इतना कर्ण प्रिय होता कि कान दूसरी जगह कही लग नही पाते।

100 खमासमणे व उसी बीच श्रावको के कर्तव्यो पर प्रवचन फरमाते। सामूहिक देव दर्शन, गुरु, वन्दन भक्तामर स्तोत्र का पाठ 100 फेरिया पश्चात् उघाडा पोरसी की क्रिया, एक घण्टा व्याख्यान श्रवण व पश्चात् ऋषिमडल स्तोत्र का पाठ, देववन्दन णमो जिणाण का 101 बार उच्चारण। यह विधिवत क्रिया 12 30 तक समाप्त होती उपवास के दिन आराधक माला मे जुटते व एकासन के दिन धीरे धीरे भोजन कक्ष म 1 बजे तक सभी आराधक पहुच जात। एकासण पश्चात् आधा घण्टा विश्राम, तत्पश्चात् प्रतिलेखना नवकार मत्र की धुन, माला म व्यस्त होत 6 बजे गणिवर्य श्री सन्ध्या की क्रिया करवात। क्रिया पश्चात् 15 मिनिट गेप के पश्चात् प्रतिक्रमण गुरुदेव के भजन ८ से 9 बजे तक गणिवर्य श्री पैंतीस बोल का विस्तृत विवरण करते। तत्त्व चर्चा म सभी का जैन दर्शन की सूक्ष्म जानकारी हुई। चर्चा समाप्त होने पर रात्रि सथारे का पाठ पढाया जाता था। अर्थात् —

मेरा कोई नही है न मैं किसी का, सो कर उठे तब तक के लिये आहार उपधि देह आदि सभी का त्याग करना इस पाठ का सार होता है।

पश्चात् नवकार मत्र का जाप कर शयन करने का

यह थी हम उपधान आराधको की क्रिया। [ ]

जयपुर (राज०)

मुक्तक (3)

□

पू. प्र, सज्जन गुरु चरणोपासिका
रचयित्री–आर्य्या–शशिप्रभा श्री

संवत दो हजार छियालीस, मौन एकादशी शुभ दिन मे
सम्यग् दर्शन ज्ञान भानु की, ज्योति जगी अन्तर मन में
व्रत प्रत्याख्यान समाधि युक्त बन, दादावाडी के प्रागण मे
महाप्रस्थान किया तूंने और जा बसी स्वरांगन मे ॥ १ ॥

राजस्थान की राजधानी है, पिंकसिटी जयपुर नगरी
जहाँ छलकती धर्मध्यान से, भरी हुई अद्‌भुत गगरी
धन्योत्तम हुआ धन्य, लूनिया वंश तुम्हारे जन्म से
पर आज तुम्हारे महाप्रयाण से, दुखित हुई जनता सगरी ॥ २ ॥

अध्यात्म योगिनी गच्छ प्रवर्तिनी, शत-शत वन्दन स्वीकृत हो
अद्‌भुत प्रज्ञा धारिणी भगवती !, तव कीर्ति जग मे प्रसृत हो
सज्जन अभिधान हुआ सार्थक पा, धवलोज्ज्वलवर यश अनुपम
वात्सल्य मयी मां धन्य बनी, तव मृदु पद्म चरणाश्रित हो ॥ ३ ॥

जैनाकाश की दिव्य तारिका, अद्‌भुत गच्छ प्रवर्तिनी तुम
स्वाध्याय ध्यान ज्ञानानुरक्त बन, बनी अध्यात्म योगिनी तुम
ज्ञान ज्योति के दिव्य तेज मे, नष्ट हो गया अन्तर तम
और हो गया मन मंदिर मे, ज्ञान उजेरा सर्वोत्तम ॥ ४ ॥

शिल्पकार सम थी गुरुवर्य्या, घड-घड़ मुझे सुधारा
अनघड़ पत्थर सम था जीवन, तुमने इसे निखारा
उपकारिणी ! तव उपकार से उऋण कभी ना बनूंगी
मात्र तुम्हीं ने 'शशि' के जीवन के कण-कण को सवारा ॥ ५ ॥

आत्मा अनन्त शक्ति का स्रोत है अनन्त ऊर्जा का केन्द्र है। नित्य निरन्तर उसमे शक्ति बहती रहती है। ऊर्जा विनीण होती रहती है। यह निर्भर करता है व्यक्ति के ज्ञान पर, विवेक पर कि वह इसका उपयोग किस प्रकार करता है। शक्ति का उपयोग तो जीवन मे हरपल हो रहा है। हमारी प्रत्येक क्रिया मे शक्ति की आवश्यकता है। हमारे बोलने मे, सोचने मे कदम भरने मे खाने मे पीने मे उठने मे बैठने मे सभी मे शक्ति खर्च होती है किंतु देखने की बात यह है कि वह सही है या नही।

इसके सही उपयोग के लिये चेतना का एक उचित अनुपात मे विकसित होना अत्यावश्यक है आम आदमी की चेतना इतनी विकसित नही होती। उसकी चेतना का विकास पौद्गलिक सम्बन्धो मे जन्य विकृतियो, अशुद्धियो से अवरुद्ध रहता है। फलत शक्ति का ऊर्जा का सही उपयोग होने के बजाय अपव्यय ही अधिक होता है। क्रोध मान, माया लोभ आदि बुराइया पौद्गलिक लगाव जुडाव के ही प्रतिफल हैं। पौद्गलिक अनुकूल परिणतिया राग का कारण है इसके विपरीत प्रतिकूल परिणतिया द्वेष का कारण हैं।

मोह के कारण आत्मा की अनन्त शक्ति का अपव्यय होता है। राग द्वेष जन्य वृत्ति प्रवृत्तियो मे हमारी आन्तरिक शक्ति क्षीण होती है। विकृतियो के पोषण मे शक्ति का शोषण होता है। वैषयिक साधना का जुटान एव उनके उपभोग मे आत्म सामर्थ्य नष्ट होता है। परिणामस्वरूप बुराइया विकृतिया अशुद्धिया आत्मा मे रम जाती हैं। अपनी प्रतिरोधक शक्ति के अभाव मे आत्मा सब कुछ सहता जाता है लुटता जाता है। विकृतियो का आक्रामक ताकत का शिकार बनता जाता है।

इस स्थिति से उभरने का एक मात्र उपाय है मौन भाव। इसके द्वारा आन्तरिक शक्ति या ऊर्जा का सचय करना। अपनी प्रतिरोधक क्षमता को बचाना तथा बढाना। भगवान महावीर के जीवन को टटोलने पर उनकी साढा बारह वर्षीय साधना का रहस्य खोजने पर स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने मौन साधना के द्वारा अपनी शक्ति का अपव्यय, ऊर्जा का दुरुपयोग होने से रोका अन्तर मे शक्ति का सचय किया ऊर्जा का अक्षयस्रोत उपलब्ध किया। जब शक्ति सचय की यह प्रक्रिया पराकाष्ठा तक पहुँच गई भीतर मे उसका इतना घातक विस्फोट हुआ कि आत्मा की सम्पूर्ण अशुद्धिया विकृतिया जलकर भस्म हो गई नष्ट हो गई शेष रह गया आत्म का अपना रूप स्वरूप। यही परमात्म भाव है रहा है 'अप्पा सो परमप्पा' यही निजता मे प्रभुता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मन-वचन काया के पौद्गलिक सम्बन्धो मे विहीन होना ही सच्चा मौन है। ऐसा मौनभाव जब आत्मा मे प्रकट होता है तभी आत्मा अपने सामर्थ्य को उपलब्ध कर सकता है। वही सामर्थ्य उसे विषय विकारो के साथ होने वाले द्वन्द्व मे विजयी बनाता है। फलत आत्मा अपनी यात्रा का पडाव आखिरी मजिल परमात्म पद को प्राप्त कर लेती है। अनन्त सुख, अनन्त आनन्द मे समाहित हो, अजर अमर बन जाती है।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

लक्ष्य-प्राप्ति का सशक्त माध्यम : मौन

☐

साध्वी हेमप्रभा श्री जी म.

"साधनात् सिद्धि" साधना से सिद्धि प्राप्त होती है। यह महर्षियों का वचनामृत उनके जीवन से सत्यापित है। साधना का अर्थ है विधिवत् सतत अभ्यास। किसी भी साध्य को पाने के लिये विधिवत् सतत अभ्यास की आवश्यकता है। बिना इसके सिद्धि पाना मात्र सपना है। किसी साध्य की प्राप्ति के लिये अभ्यास करें किन्तु वह अभ्यास विधिवत् नहीं है, तो भी सिद्धि नहीं मिल सकती। अभ्यास विधिवत् है किंतु वह सतत नहीं है, तो भी सिद्धि पाना मात्र कल्पना होगा। शारीरिक रोग को मिटाने के लिये विधिवत् सतत औषधि का सेवन आवश्यक है। विधि और सातत्य के अभाव में सेवन की गई औषधि कभी कारगर नहीं होती।

सामान्यतः साधना शब्द सुनते ही एक बार हमारे चिन्तन में आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित प्रयास [illegible] पुरुषार्थ व क्रिया उभर उठती है। परन्तु वास्तव में साधना शब्द केवल आध्यात्मिक [illegible] विस्तृत एवं व्यापक है। इसका प्रयोग हर सिद्धि के कारण रूप में होता है। चाहे वह लौकिक हो या लोकोत्तर आध्यात्मिक हो या सांसारिक। शरीर, मानसिक, चिन्तन, शिक्षा, [illegible] आदि सभी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धियाँ साधना के बल पर [illegible]।

यहाँ हम जिस साधना के विषय में चर्चा [illegible] "मौन साधना" [illegible] [illegible] कारण है ही, [illegible] सिद्धियों का भी महत्त्वपूर्ण कारण है। यही कारण है कि सभी तीर्थंकर परमात्माओं ने केवलज्ञान की प्राप्ति से पूर्व मौन साधना को मुख्यरूप से अपनाया था। भगवान् महावीर ने अपनी सम्पूर्ण छद्मस्थावस्था मौन साधना में ही बिताई थी।

सामान्यतः मौनसाधना का अर्थ है—"नहीं बोलना" किन्तु यह इसका पूर्ण अर्थ नहीं है। पू. उपाध्याय यशोविजय जी म. के शब्दों में इसका पूर्ण अर्थ है—

सुलभं वागनुच्चारं मौनमेकेन्द्रियेष्वपि।
पुद्गलेष्व प्रवृत्तिस्तु, योगीनां मौनमुत्तमं॥

"नहीं बोलने रूप" मौन भाव एकेन्द्रिय जीवों में भी होता है। अतः प्रश्न है कि क्या ऐसा मौन मोक्षमार्ग की साधना का अनन्य साधन/अंग बन सकता है? यदि हाँ तो एकेन्द्रिय जीव मुक्त होने का सौभाग्य क्यों नहीं प्राप्त करते जबकि यह कदापि सम्भव नहीं है? अतः मौन का यही अर्थ मोक्ष साधक है।

इस आत्मा से भिन्न जितने भी पदार्थ हैं, वह सब पुद्गल हैं। उनके विषय में चिन्तन [illegible] प्रवृत्ति [illegible] है और उन पौद्गलिक क्रियाओं से उपरत होना ही [illegible] मौन है। यही मौन आत्मशुद्धि और सिद्धि का आधार है।

विभूषित हुए। चारों दिशाओं ने मुस्कुराते हुए उन्हें जयमालाएं पहनायीं।

दिग्विजयी सम्राट ने पाटलीपुत्र में जब चरण रखा—प्रजा हर्ष से उल्लासित हो गयी—सारी नगरी आनन्द से पुलकित हो गयी। नव दुल्हिन की भांति सजी संवरी प्रिय चरणों में पूर्णतः समर्पित हृदय-रस उंडेलती उस नगरी ने पलक पावडे बिछाकर अपने नवीन महान् सम्राट का भव्य स्वागत किया।

सम्राट सीधे मां के महल में गए, उनके चरण स्पर्श किए किन्तु किन्तु कुहासे से आवृत्त म्लान कमलिनी सा उदास मां का मुख देखकर महाराज सम्प्रति कांप उठे। माँ की खुशी के लिए ही तो किया है दिग्विजय। मां ने ही तो सिखाया था यह सब। फिर क्यों उदास है मां?

सम्प्रति ने पुनः मां के चरण स्पर्श करते हुए कहा—'माँ, आपका दिग्विजयी पुत्र आपको प्रणाम कर रहा है। आशीर्वाद दें मां।'

माँ ने उत्तर दिया—बेटे, अभी तो तुमने बाह्य शत्रुओं को ही जीता है आन्तरिक शत्रुओं को जीतना तो अवशेष है। बेटे, जब तक, तुम आन्तरिक शत्रुओं को परास्त नहीं कर लेते हो सम्राट सम्प्रति की मां तब तक प्रसन्न नहीं हो सकती। हो सकती है मात्र तुम्हारी अबोध प्रजा। तुम नहीं जानते बेटा बिना आंतरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त किए कितनी घातक होती है यह राजसत्ता। अहं का ऐसा मादक आवरण डाल देती है यह प्रभुता कि मनुष्य विलासी बनकर न अपना ही कल्याण कर पाता है न प्रजा का। वह तो मात्र समाप्त करता जाता है जन्म जन्म की संचित शुभ्र पुण्य राशि को।

अश्रुपूर्ण नेत्र एवं गद् गद् कण्ठ से सम्प्रति ने शपथ ली—मां, तुम्हारी यह इच्छा भी मैं अवश्य पूर्ण करूंगा। मुझे आशीर्वाद दो।

एक बार सम्राट सम्प्रति उज्जयिनी आए हुए थे। महल के अलिन्द में बैठे सुन्दर नगर की शोभा निहार रहे थे। तभी जीवित महावीर की प्रतिमा का एक बहुत बड़ा जुलूस उसी ओर से निकला। बौद्ध वातावरण में पले सम्प्रति ने सर्वप्रथम महावीर की उस सुन्दर प्रतिमा एवं जुलूस के साथ जाते हुए जैन साधु साध्वियों को देखा। इन्हीं साधुओं में संयम की दिव्य रश्मियों से महिमामय आचार्य सुहस्ति पर ज्योंही उनकी नजर पड़ी स्मृति पर एक आघात सा हुआ। विस्मृति का घना आवरण विदीर्ण होकर पूर्व जन्म की स्मृति प्रत्यक्ष हो गयी—मनश्चक्षुओं के सम्मुख उभर पड़ा वह दृश्य जबकि वे क्षुधा से तिल मिलाकर एक आहार लेकर जाते हुए सन्त के पीछे पीछे होकर उपाश्रय पहुंचते हैं। गिड गिडाकर आहार की याचना करते हैं। वहां ऊंचे पट्ट पर आसीन वहीं आचार्य सुहस्ति उन्हें इस शर्त पर भिक्षा देना स्वीकार करते हैं यदि वे दीक्षा ग्रहण कर साधु बन जाएं। भिखारी सोचने लगता है—इस भयंकर दुष्काल के समय और कहीं से भिक्षा नहीं मिल सकती, तब क्यों न दीक्षा ही ग्रहण कर लूं। पेट भर आहार तो मिलेगा। भूख से व्याकुल वह दीक्षा ले लेता है एवं कई दिनों की भूख शांत करने के लिए खूब डटकर ठूंस ठूंसकर खाता है। वह जितना मांगता है गुरु उसे देते जाते हैं भले ही आज इस प्रक्रिया में अन्य सन्तों को भूखा क्यों न रहना पडे। ज्ञान गंभीर गुरु जान गए थे कि इस व्यक्ति के द्वारा इसके आगामी जन्म में जैन धर्म की महती सेवा होगी प्रभावना होगी।

किन्तु ठूंसकर खाए हुए उस गरिष्ठ आहार को वह भिखारी पचा नहीं पाया। उसी रात्रि में वह विषूचिका रोग से ग्रस्त हो जाता है। सभी साधु एवं बड़े बड़े श्रावक उसकी सेवा सुश्रूषा में लग जाते हैं। साध्वियां एवं महीपि श्राविकाएं उसे वन्दन करने आती हैं। भिखारी सोचने लगता है—धन्य है इस साधु वेष को। एक दिन का साधु

अन्तः व बहिर्शत्रु के विजेता संप्रति

□

श्रीमती राजकुमारी बेगानी

'मां, क्या सचमुच हमारे दादा जी बहुत बड़े राजा हैं?'

'राजा? राजा ही क्या वे तो सम्राट हैं; राजाओं के भी राजा। पाटलीपुत्र के महान् सम्राट अशोक आज अखिल भारतवर्ष के प्राण हैं। उन्होंने समस्त देशों पर विजय प्राप्त कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया है।'

'समस्त देशों पर विजय प्राप्त कर ली? यह तो अच्छा नहीं हुआ मां। अब मैं किन पर विजय प्राप्त करूंगा? मुझे दादा जी से भी बड़ा बनना है।'

'अवश्य बनना बेटे। उनसे बड़ा बनने के लिए बाह्य और आन्तरिक दोनों ही शत्रुओं को पराजित करना होगा।'

'करूंगा, अवश्य करूंगा। तुम मुझे बता देना, मैं अवश्य करूंगा। अच्छा मां! एक बात बताओ—क्या पिताजी ने कभी कोई राज्य नहीं जीता?'

'जीता था। वे तुम्हारे दादाजी के परम सहयोगी थे और साथ ही परम विनम्र भी।.... पर उनकी विमाता के षड्यन्त्र के कारण उन्हें अपनी आंखें खो देनी पड़ीं। नहीं तो वे आज....'

'ओह! अब [illegible]। मैं [illegible], [illegible], [illegible] [illegible]।' [illegible],

आन्तरिक जिन-जिन शत्रुओं का नाम बताया है न, उन सबको जीतूंगा और भी कोई शत्रु हो तो याद कर लेना मां, मैं सबकी खबर लूंगा।'

अश्रुओं के मध्य भी विहंस पड़ी कुणाल-पत्नी मल्लिका। अपने तेजस्वी पुत्र का मुख चूमकर उसे छाती से लगा लिया।

छोटी आयु में ही वह पितामह द्वारा कांकिणी राज्य का राजा बना दिया गया। सोलह वर्ष का होते-होते ही पूर्णचन्द्र की भांति विकसित हो गया चन्द्रानन-सा वह बालक जिसका नाम था सम्प्रति। शौर्य की सहस्र-सहस्र किरणों से उद्भासित उस प्रखर सूर्य को जो भी देखता आंखें चौंधिया जातीं, मन हार जाता, हृदय खो जाता।

कैशोर्य की देहरी को लांघकर ज्यों ही सम्प्रति ने युवा वय में पदार्पण किया उनके महान् दादा अशोक की मृत्यु हो गयी। मौके से लाभ उठाकर अधीन राजाओं ने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। सम्प्रति ने जब यह सुना उनका खून खौल उठा, रग-रग में समाया पराक्रम प्रदीप्त हो गया। सोयी हुई अभिलाषा जाग पड़ी—सम्राट ही अपनी वीर सेना के साथ वह दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। कौशल जीता, काशी जीती, कुरु और पांचाल को जीतता हुआ आगे से आगे बढ़ता गया। चारों ओर उसकी विजय-पताका फहराने लगी। उसका नाम गूंजने लगा। [illegible]

नित उठ वन्दन करता हूँ

□

हेमन्तकुमार पुगलिया

प्रखर प्रवक्ता परम प्रतापी परम प्रभावी उपकारी ।
प्रवचन सुनने दौड़े आते बड़ी सख्या में नरनारी ॥
अपनी आस्था और श्रद्धा का भाव समन मैं धरता हूँ ।
गणिवर मणिप्रभसागर गुरु को नित उठ वदन करता हूँ ॥ १ ॥

श्री जिन कान्तिसागर गुरु के शिष्य बन छोटी वय मे ।
योग्य गुरु के योग्य शिष्य शिक्षा वीणा बजती लय मे ॥
ज्ञान किरण तुमसे पाकर मैं अपने मन को भरता हूँ ।
गणिवर मणिप्रभसागर गुरु को नित उठ वदन करता हूँ ॥ २ ॥

धर्म प्रभावक बोध प्रदायक तप जप आराधक ध्यानी ।
कुशल साधना कुशल गुरु की करते रहते इकतानी ॥
उनकी वाणी योग सिद्धि मे चमत्कार अनुभवता हूँ ।
गणिवर मणिप्रभसागर गुरु को नित उठ वदन करता हूँ ॥ ३ ॥

ऐसे ज्ञानी गुरुवर को पा कर मन का ये चिंतन ।
अर्पण कर दू श्री चरणो मे मैं अपना सारा जीवन ॥
युग युग अमर रहे गणि मणिवर यही कामना करता हूँ ।
गणिवर मणिप्रभसागर गुरु को नित उठ वदन करता हूँ ॥ ४ ॥

बीकानेर नगर मे जिनशासन का मगल घट बजा ।
जिनके चौमासे मे धर्म की लहराई अति भव्य ध्वजा ॥
मधुरी वाणी ओज तेज युत सुनकर आनद भरता हूँ ।
हेमप्रभाजी गुरुवर्या को नित उठ वदन करता हूँ ॥ ५ ॥

जिनके कारण बोध मिला सुन जस नास्तिक व्यक्ति को ।
गुण जीवनभर गाऊँ मैं निशदिन नमता उस शक्ति को ॥
दिव्य भव्य तेरे उपदेशो को मैं नित अनुसरता हूँ ।
हेमप्रभाजी गुरुवर्या को नित उठ वदन करता हूँ ॥ ६ ॥

—बीकानेर (राज०)

जीवन जब मनुष्य को इतना ऊपर उठा सकता है तो दीर्घकाल तक साधु जीवन पालन करने वालों की ऊंचाई की तो कल्पना ही नही की जा सकती। साधु धर्म पालन की इस उत्कट अभिलाषा से भावित होते हुए वह प्राण छोड़कर कुणाल-पुत्र के रूप में जन्म लेता है।

सम्राट सम्प्रति अपने परम उपकारी गुरु को पहचानते ही तत्काल नंगे पांव ही महल से नीचे उतर कर गुरु चरणों में वन्दन कर पूछते है—"आपने मुझे पहचाना गुरुवर ?"

गुरु ने सहज रूप मे ही उत्तर दिया—"भला आपको कौन नही पहचानता राजन् ?"

'किन्तु इस रूप मे नही प्रभो, अन्य रूप मे याद कीजिए।'

गुरु उतर पड़े ध्यान की गहराई मे। उन्हे भी स्मरण हो आया कि यह वही भिखारी का जीव है जिसे मैंने कौशाम्बी मे दुष्काल के समय दीक्षित किया था और वह क्षुधा से व्याकुल ठूंसकर खाने के कारण विशूचिका से आक्रान्त होकर एक ही दिन की दीक्षा-पर्याय पालकर काल-कवलित हो गया था।

गुरु अचानक ही बोल पड़े—'पहचान गया राजन्। एक दिन की दीक्षा ने ही जब आपको सम्राट बना दिया है तो अब आप पुनः अपने इसी जैन धर्म को स्वीकार कर श्रावक व्रत अंगीकार कीजिए। जैन धर्म का प्रचार कीजिए। जैन मन्दिर व मूर्तियों का निर्माण करवाइए।

सम्राट ने अश्रुसिक्त होकर गुरु चरणों में [illegible] हुए कहा—'यही जिन धर्म की [illegible] है। आपने ही मुझे इतना ऊंचा उठाया है—अभी भी मुझे आशा है आपके निर्देशन में ही मेरा पुनः कल्याण होगा।'

सचमुच ही सम्राट सम्प्रति जैन धर्म स्वीकृत कर पवित्र जीवन बिताते हुए आन्तरिक शत्रुओं को जीतने की ओर उन्मुख हो गए। अब कहा आर-पार था धर्म-प्राण माँ मल्लिका के आनन्द का। जब वे अपने प्रिय पुत्र द्वारा निर्मित जिन-मन्दिरो का अवलोकन करती, जिन-मूर्तियों का दर्शन करती हर्ष से गद्-गद् हो उठती, अपनी पावन कुख पर कृत-कृत्य हो पड़ती।

सम्राट सम्प्रति ने जिन-मन्दिर एवं जिन-मूर्तियां ही नही बनवायी बल्कि अपने अधीनस्थ राजाओं को बुलाकर कहा—'मुझे तुम्हारे धन की आवश्यकता नही है। यदि तुम लोग मुझे प्रसन्न रखना चाहते हो तो जैन धर्म स्वीकार कर उसका प्रचार करो। तुम्हारे राज्य मे ऐसी व्यवस्था करो कि जैन साधु निर्विघ्न विचरण करते हुए जीवो का उद्धार कर सकें।' राजाओ ने भी अपने सम्राट की आज्ञा शिरोधार्य की।

सम्प्रति सोचने लगे—'भारत मे तो जैन धर्म का प्रचार हो रहा है—अब भारत के बाहर विदेशो मे भी इसका प्रचार होना चाहिए। किन्तु, कठिनाई यह है कि अनार्य देश मे जैन साधु रहेंगे कैसे ? वहां कौन उन्हे शुद्ध आहार-पानी देगा ? कौन उनकी महिमा समझकर सत्कार करेगा ?'

दीर्घ चिन्तन के पश्चात् उसका भी समाधान उन्हें मिल ही गया। उन्होंने साधु-वेश मे कई विद्वान् एवं तेजस्वी व्यक्तियों को विदेशो मे भेजा। उन लोगो ने वहां की जनता को समझाया—साधु क्या है ? उनसे कैसा व्यवहार करना चाहिए, कैसे उन्हें आहार-पानी देना चाहिए ? साथ ही यह भी बता दिया कि यदि किसी ने भी साधुओं से दुर्व्यवहार किया तो सम्राट सम्प्रति के कोप का भाजन हुए बिना नहीं रह सकेगा। फिर तो उन्हें भी कोई आहारादि कष्ट नहीं होगा।

स आगे बढता हुआ अन्य कर्मों का भी क्षय कर सकेगा। यद्यपि ये बन्धन प्राकृतिक विधान से विपाक अवधि आने पर स्वत ही फल देकर झड जाते हैं किन्तु इस स्वाभाविक निजरा मे असख्यात युग व्यतीत हो जाते हैं एव इस बीच स्वय की क्रिया से और नये कर्मों का बन्धन होता रहता है। इस प्रकार कर्म चक्र रूपी यह भवरजाल बिना समाप्त हुवे अनादिकाल से चला ही आ रहा है।

4 सेकिरियावादी । जस्सिम चह, वारावित्स चह करओ यॉ। समणण्णे भविस्सामि, ण्यावति सव्वावति लोमसि कम्मसमारभा परिजाणि तत्वाभवति [1 1 (3,4 5)] तत्थ खलु भगवना परिण्णापवेदिता। इमस्सचेव जीवियस्स परिवदण माणणपुयणाए, जातीमरणमोयणाए दुक्खव पडिघात हेतु [1 1(7)। मे सुवच मे अज्झत्थवम वधपमोक्खोतुज्नऽज्झत्थेव। [5 2(155)]

स्वय की क्रिया से ही कर्म बन्धन होता है (अर्थात् मैं करता हू, मैं कराता हू मैं करते हुये का अनुमोदन करता हू —तीन करणत्रिकाल रूपी अह कर्तृत्व ही कर्मों का आरभ है) और इससे ही बधे हुए कर्मों का मोक्ष होता है। और चूँकि देहधारी व्यक्ति के लिये सर्वथा अक्रिय रहना असभव है इसलिये कर्म समारम्भ म भगवान द्वारा परिज्ञा विवेक रखने का कहा गया है। इस जीवन को टिकाने के लिये भक्ति आदि सुकृत करने के लिये जन्म मरण से मुक्त होने के लिये और सकटो का प्रतिकार करने के लिये भी क्रिया जरूरी है अत जो बिना कुछ किये या अकेले ज्ञान म या अनुग्रह स या एकान्त निवृत्ति स मोक्ष बतलाते ह वे केवल बातें करने म ही वीर हैं। जिस प्रकार सारे दु खो का कारण एकमात्र तुम स्वय हो उसी प्रकार आत्मोत्थान व मोक्ष स्वय के पराक्रम मे ही समव है एक की क्रिया से दूसरे की मुक्ति नाम नहीं हो सकता—जैसा करोग वैसा भरोग। बिना किसी साथ क अकेला ही सिद्ध होना है। स्वय का ही अपना मित्र समझे, बाहर के मित्र की आशा न करें। सत्सगी न मिले तो अकेला ही प्रयाण करे, भले दुनिया का प्रवाह उल्टी दिशा मे हो। पराधीन को स्वप्न मे भी सुख नहीं है जबकि स्वावलम्बी का प्रत्येक कार्य मोक्षार्थ होता है। फलितार्थ यह है कि (1) मन, वचन, काया के अनावश्यक व सावद्य योगो से यथा शक्य निवृत्ति कर लो, योगो की इस गुप्ति को सयम की सज्ञा दी जाती है (11) जो आवश्यक अनिवार्य अथवा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मोक्ष की ओर ल जाने वाले उपादेय योग हैं उन्ह भी इस कुशलता से करो कि कम म कम कर्म बन्धन और अधिक से अधिक निजरा हो, सयमी की समिति पूर्वक यह प्रवृत्ति अहिंसा आदि यम नियम कहलाती है (111) तप नामक विशेष आत्म पराक्रम से पूर्वबद्ध कर्म दलिको को समय से पहिले ही उदय म लाकर आत्म प्रदेशो स हटादो। अहिंसा सयम व तप रूपी त्रिविध इस धर्म को उत्थितवाद' [5 1(151)] कह सकते हैं जिसका विश्लेषण आगे किया गया है।

5 समियाए धम्म आरिएहि पवेदित [5 3 (157) 8 3 (209)] जमस्म तिपासहात मोणतिपासहा, जमोणतिपासहात सम्मतिपासहा [5 3 (161)]

सामायिक अर्थात् समभाव अगीकार करो—समत्व योग म रहोग तो सावद्य योग का त्याग हो जावेगा। आत्म सतुलन नहीं खाना चाहिये। अध्यात्म प्रत्यनीक पुरुष बार बार मोह को प्राप्त होता है अत आत्म शान्ति प्रसन्नता व समाधि सदैव अनिवार्य है। धृति सहिष्णुता, गम्भीरता, उदारता दृढ़ता सहनशीलता और समन्वय द्वारा आत्मा को सुरक्षित रखो और यदि आत्म प्रदेश निष्कपित रहते है तो वह स्थिरात्मा कर्म बन्धन से बच जावेगा। क्या अरति और क्या आनन्द एक समान रहो। एग आया—आत्मद्रव्य एक जानो और एततुलमण्णेंसि—अपया को आत्मतुल्य समझो [1 7 (56) 3 3(122)]। रागोय दोसो वियकम्मबीय

भगवान महावीर के उपदेश

□

जौहरीमल पारख

भगवान महावीर का व्यक्तित्व इतना विराट् है कि जैन शास्त्रों का गहराई से स्वाध्याय करने वाले बहुश्रुत विद्वान् के लिये भी नपे तुले सरल शब्दों में उनके उपदेशों का सारांश सामान्य जन हितार्थ समग्रतया स्पष्ट कर देना आसान नहीं है तो भी यह बालचेष्टा की जा रही है।

1. संसयं परिजाणतो संसारे परिण्णाते भवति [5.1 (149)] जो अणु संचरति'''सोहं; से आया-वादी [1.1(2,3)]

जिज्ञासा से भेद ज्ञान हो जाता है कि अजीव द्रव्यों से विलक्षण जो भवभ्रमण करने वाला वह आत्मा मैं हूं। वह वादी जड़ जगत् का अस्तित्व भी स्वीकार करे क्योंकि एक की अस्वीकृति दूसरे की अस्वीकृति है।

2. से लोगावादी [1.1 (3)] जे गुणे से आवट्टे (मनट्ठाणे) जे आवट्टे (मूल ट्ठाणे) से गुणे [1.5(41(; 2.1 (63)] लोगंसि जाण अहि-यायदुक्खं : [3.1 (106)]

यह संसार निःसार, अस्थिर व दुःखमय है। मैं अकेला हूँ मेरा कोई नहीं और न मैं किसी का हूँ—सब स्वार्थ की सगाई है, मात्र क्षणिक संयोग है। धन, स्वजन तो क्या, यह स्वयं का शरीर भी शाश्वत नहीं है। धन, पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य, स्वामित्व, यश, कुटुम्ब, भोगोपभोग आदि सभी सांसारिक लौकिक स्थलों में है अतः आशा, तृष्णा, इच्छा, कामना, फलाकांक्षा, निदान, प्रतिज्ञा, गृद्धि, आसक्ति व ममत्व बुद्धि व्यर्थ है। इस उधेड़-बुन में काल अकाल पचकर व हैरान होकर इस अमूल्य मनुष्य जीवन का दुरुपयोग मत करो। अन्त मे वृद्धावस्था और मृत्यु के समय पछतावोगे। ये सब गुणगुणो मे वर्त रहे है; बिना उनमें अहं कर्तृत्व जोड़े, दर्शक-दृष्टि, विरक्ति, उदासीनता, तटस्थता और परम नैराश्य धारण करना चाहिये। संसार में दुःख का अभाव असंभव है—स्वर्ग में देव भी दुःखी हैं। दुःख को अहितकारी समझो और उससे मुक्ति प्राप्त करो। दुःख का मूल कारण है संसार आवागमन अतः भव भ्रमण से मुक्त होना ही जीवन का अन्तिम ध्येय होना चाहिये—यह मोक्ष शाश्वत सुख है।

3 नेकम्मावादी [1.1 (3)] जतो सेमा-रस्स अंतोततो सेदूरे [5.1 (147)] धुणे कम्मसरीरगं [2 6(99) 4.3 (141) 4.4(143), 53 (161)]

लोक में अपना परिभ्रमण कर्म बन्धन के कारण होता है और जब तक कर्म बन्धन है तब तक मोक्ष हो नहीं सकता। जब कर्मों का पूर्णतः क्षय हो जाता है तो उसी समय मोक्ष हो जाता है और एक बार मोक्ष हो जाने पर दग्ध बीज की तरह आत्मा का भी पुनः अवतार नहीं होता। अतः कर्म बन्धनों का आत्यन्तिक विनाश ही परम पुरुषार्थ व कृतिकत्ता है और जो एक कर्म का उपशम, क्षयोपशम या क्षय कर देता है वह आगे

रखो क्योकि अन्यो की हिंसा मे वास्तव मे हिंसा स्वय की होती है और आत्मा का वैर बढता है। अहिंसा की पराकाष्ठा है—'णविरुज्झेज केणइ किसी का विरुद्ध न करे–कोई भी शस्त्र इससे वढकर नही है।

10 पुरिसा सच्चमेव समभि जाणाहि सच्चस्स आणाए से उवहिए मेघावी मारतगति, सहिते धम्ममादाय से यसमणुपस्सति [3 3 (127)]

सत्यमेव जयते नानृनम् । मद्भ्योहित सत्यम् । मन वचन काया से दृढतापूर्वक सत्य म स्थित रहना चाहिये—अप्रिय व मृषावाद का आचरण न हो इसाकी व विश्वास पात्र बनो। सत्यवाणी का प्रधान गुण है। भाषा के दोषो को टालते हुए सोच समझकर सयत भाषा का प्रयोग करे—अनावश्यक व असम्बद्ध वाक्य न बोले–भाषा समिति का पालन करना चाहिये। सत्य म छल का भेलसेन मत करो। सावद्य भाषा की अपेक्षा मौन श्रेयस्कर है।

11 अदवा अदिण्णादाण [1 3(26),3 1 (200)]

बिना दिये दूसरे की वस्तु मत लो–व्यवहार मे पूरे ईमानदार रहो। शोषण व मुनाफा खोरी की मना ही है। अहृनश मत बनो। राजकीय आदि नियमा का उलघन न करो। धर्म वेचकर धनोपाजन बहुत महगा सौदा है। सूक्ष्म दोष है—सतक रहना चाहिये।

12 जेठेये सेसागारियणसेवे [5 1 (149)]
मैथुन व स्त्री ससग दुख मोह मृत्यु व दुर्गति का कारण है इह पर दोनों लोका के लिये अहितकर है। वेद (सज्ञा) होने के नाते ब्रह्मचर्य को उत्तम तप गिना गया है। अन्य वेदो को भी सल्लीनता करके कठोर अनुशासित जीवनचर्या बितानी चाहिये। चूकि वेदो का सम्यग् नियन्त्रण दुस्तर है, अत स्खलना रहित ब्रह्मचर्य पालन के लिये विविक्त शयनासन व विभिन्न रक्षा पक्तियो का यथा प्रणीतरस भोजन का त्याग, पूर्व भोगो का विस्मरण, स्त्री कथा व गुलामी न करे) प्रावधान किया गया है। हस्तकर्म और अनङ्ग क्रीडा तो ब्रह्मचर्य का घात ही है।

13 चित्तमतवा अचित्तमतवाएते मचेव परिग्महावती एवदेवेगेसि महब्भय भवति [5 2 (154)]

परिग्रह साक्षात् बन्धन है अत निर्ग्रन्थ के लिये वस्तु सग्रह की आज्ञा नही है। तनिक सा भी परिग्रह भय व दुख का कारण है। पहिले जो थोडा बहुत दिखाई देता था वह मोक्ष माग भी परिग्रह के कारण ओझल हो जाता है। केवल ममत्व का त्याग अपर्याप्त है—दूसरी बात है द्रव्य से भी अपरिग्रही होना आवश्यक है। यद्यपि जरूरी धर्मोपकरण रखना क्षम्य है किन्तु उनमे भी मूर्च्छा तो नही रखनी है। उपभोग व सचय के भेद को समझकर और भिक्षुचर्या का आदश सामने रखकर कमाई आदि वृत्तियो का भी सक्षेप करना चाहिये और सब तरह से गरीबी अपनानी चाहिये। अमूर्त आत्मा का कुछ भी मेरा कैसे हो सकता है अत व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त की मर्यादा को समझो और भौतिकवाद मे मत पडो।

14 विगिंच ममसाणित [4 4 (143)]
जाता मातए [3 3 (123)] आगत पण्णाणाण किसा बाहाभवति पयणुएय मससोणिए [6 3 (185)]

मुक्ति के दुर्लभ साधन इस पचेन्द्रिय मानव जीवन का रक्षण कर्तव्य है अत जीवन निर्वाह के वास्ते अल्प अरस सादा भोजन करे ताकि शरीर का शोषण न हो बाकी इस नश्वर गदगी भरे शरीर की पोषण की चिन्ता, सस्कार या हिंसाकारी चिकित्सा न करे चाहे मास व रुधिर कम हो जाय। उम्र वढ नही सकती और जब यह सुनिश्चित हो

राग-द्वेष रहित पक्षातीत न्यायिक मनोवृत्ति व मध्यस्थ भावना रखो सम दृष्टि बनो। भेदभाव, प्रेममय घनिष्ठता, पक्षपात घृणा, ईर्षा वैरादि के बिना सबमें समान मैत्री-भाव रहना चाहिये। ममता को विस्थापित कर ही समता प्रतिष्ठित हो सकती है।

6. सेवंता कोहंच माणंच मायंच लोभंय, एतंतिउट्टे, वियाहितेत्तिबेमि [6 5 (198), 3 4 (128)]

कषाय आत्मा के शत्रु हैं। क्रोध को क्षमा से, मान को नम्रता से, माया को सरलता से (ऋजुता से) और लोभ को संतोष से नष्ट कर दो। गौरव त्याज्य और लाघव ग्राह्य है। हास्य (हर्ष, उत्सुकता, दुःसाहस) शोक (चिंता), भय (घबराहट) आदि जो कषाय रूपी वैभाविक परिणतियों को एवं मनोविकारों को हटाकर अकषायी बनना चाहिये। शल्य रहित प्रशस्तलेश्या से आध्यात्मिक भाव लीन करता रहे क्योंकि उस शुद्ध स्थिति में ही आत्मलीनता द्वारा दिव्यज्ञान प्रत्यक्ष हो सकता है।

7. तस्सेते लोगं सि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति सेहुमुणी परिण्णाय कम्मेत्तिबेमि [1.1(9)]

अहंकार बुद्धि रूप अध्यवसाय से सारा पसारा फैलता है अतः जीवन को अविरत या असंयमित मत रखो। आत्मोपयोग द्वारा सतत निरीक्षण करना है कि कहाँ रति नहीं रखनी है, कहाँ अरति नहीं रखनी है, और कहाँ से विरति कर लेनी है। हिंसा, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible]

क्षेत्र भी उत्तरोत्तर संकुचित करते रहो। सांसारिक जीवन का माहौल निम्नतम सतह पर रहे।

8. सेवनुमं सव्व समण्णागतपण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावंकम्मंतंणो अण्णेसी [1.7 (62), 5.3(160)] सव्वत्थ संमतं पावंतमेव उवातिकम्मएस महं विवेगे वियाहिते [8.1 202)]

सर्वत्र जो पाप गिनाये जाते हैं उन सब अकरणीय कामों का त्याग करना धर्म का प्रमुख अंग है। पापी की दुर्गति निश्चित है अतः पापों से निवृत्ति रूप संयम सर्वमान्य कर्तव्य है। पापों का प्रत्याख्यान पहरेदार का काम करता है। हिंसा झूठ, चोरी, कषाय, वन्धन, विकथा, कलह, दुर्ध्यान, दुश्चिन्तन, दुर्भावनायें, कुसंग, चुगली, कुल-गण-संघ व समाज की प्रत्यनीकता, अन्तराय, व्यभिचार, अजीवकाय असंयम, उत्सूत्रप्ररूपणा, पापश्रुत, अज्ञान, मोह, कुशिक्षा मिथ्याभिनिवेश, आत्महत्या, निंदा आदि इत्यादि जो भी दुराचार उपादान या निमित्त रूप में पीड़ादायक हैं वे सब पाप स्वेच्छा से छोड़ देने हैं। हृदय पर हाथ रखो स्वयंमेव निर्देश मिल जावेगा कि यह करना अनुचित है।

9. जेय अतीता जेय पडुप्पण्णा जेय आगमिस्सा अरहंता भगवंता ते सव्वे एव माइक्खति सव्वेपाणा 4 णहंतव्वा जाव उद्दवेयव्वा। एस धम्मे सुद्धे णिणिए, सासए समेच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेदिते तंजहा-उट्ठिएसुवा जाव अणुवरएसु वा [4.1 (132)]

सामाजिक जीवन की आधारशिला अहिंसा होनी चाहिये—यही समाजवाद है। अहिंसा परमो धर्मः अर्थात् अहिंसा का प्रयोग प्रवृत्ति की अपेक्षा रखता है, विधायक निर्माण है निषेधात्मक नहीं। समस्त क्रियायें यतनापूर्वक करो ताकि [illegible] जैसा भी वध हो। हिंसा करने का [illegible] न हो और यदि हिंसा होती है तो [illegible]। [illegible], दया व [illegible] की भावना

करके उसे छिपाना दूसरा अपराध है। इसलिये माया रहित होकर गुरुजनो के समक्ष अपने दुराचार व दोषो का प्रकट कर दो और आलोचना रूपी तपादि जो भी दण्ड दिया जाता है उसको अच्छी तरह वहन करो। वास्तविक आत्मग्लानि व गहा नरका की यातना से भी अधिक निजरा की हेतु ह। आत्म निंदा से भावों की विशुद्धि होती है।

19 त दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कार तस्सण्णी तण्णिव सणे [5 4 (162)] विणयणे [2 5 (88), 8 3 (210)] आरभमाणाविणयवति छदोवणीया [1,7 (62)]

भगवान गुरु सघ धम कुलादि का हमारे ऊपर असीम उपकार है अत उनक प्रति भक्ति भाव सहज जागृत होता है कतव्य भी ह। उनकी भक्ति विनय पूजा, सम्मान परिवदना, कीत्तन, प्राथना नमस्कार स्तुति करने से स्वयमेव अचित्य लाभ होता है। उनकी आज्ञानुसार चलो, स्वछन्दता अहितकारी है। उनकी आशातना मत करो। आत्मा को विनय मे स्थापित करो।

20 उवेहाहि समियाए इच्चेवतत्थ सधी झोसितो भवति [5 6 (169)] पवादण पवाय जाणेज्जा सहसम्मुइयाए परवागरणेण अण्णेसिवा अति सोच्चा एवमेगसि णात भवति [1 1 (2) 56 (172)]

बहुश्रुत भी बना और स्वय भी सत्य का अन्वेषण करो क्योकि धम तत्त्व के अतिम निश्चय की समीक्षा अपनी बुद्धि से ही होती है। लौकिक विद्यायें व्यथ और पाप व मिथ्या श्रुत हेय है। अज्ञान अहितावह है—अज्ञानी स्वय भी डूबता है और अन्यो को भी ले डूबता है। सब काय ज्ञान म समाप्त होत है इसलिये मोह के आवरण दूर करके बोध प्राप्त करना चाहिये। वाचना, पृच्छना परावत्तना, अनुप्रेक्षा व धर्मकथा इस पच विध स्वाध्याय से ज्ञानी, ज्ञाता से विज्ञाता व विज्ञान की सहायता से धम साधन की इच्छा करो। चारित्र धम और श्रुत धम एक दूसरे का उपकारी है। सब यज्ञो मे ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है और ज्ञान दान गुरु का कतव्य है। अत गुरु की महत्ता है। शीघ्रता व सरलता से सम्यग् ज्ञान प्राप्ति गुरु परम्परा व गुरुकुलवास मे होती है।

21 अविमाति से महावीरे आसणत्थे अकुक्कुए झाण [9 4 (320)]

प्रत्येक काय ध्यानपूवक करना चाहिए क्योकि सफलता का रहस्य है शक्ति और शक्ति घनत्व एकाग्रता से आती है। बिखराव/अलगाव से शक्ति कम होती है। मानसिक ध्यान से मन की, कायिक ध्यान से काया की और वाचिक ध्यान से वचन की शक्ति बढानी चाहिये और इन शक्तियों का प्रशस्त उपयोग करो अप्रशस्त नहीं (अर्थात् आत्तरौद्र ध्यान मे न लगकर, धम व शुक्ल ध्यान मे लगना चाहिए)। वीर पुरुष ही प्रशस्त ध्यान क अधिकारी हैं—वे इन तीनो योगो को आत्मानुगामी बना सकते हैं। स्वाध्याय (अनुप्रेक्षा) धम ध्यान का आलम्बन है और उससे आगे बढकर कषायजय द्वारा शुक्ल ध्यान की साधना करो। जागृत (अप्रमत्त) से ध्यानस्थ ऊची अवस्था है।

22 त वो सज्ज कायमण गार [9 3 (299)]

आत्मा को इस काया से उत्सग करने का नित्य अभ्यास करत रहो। भेद, ज्ञान व आत्मप्रतीति का यह व्यावहारिक प्रयोग है।

23 एमवीरे पसमित्ते जे बद्धे पडिमायए [2 5 (91)] दयलोगस्स जाणित्ता वज्जमाणाण

जावे कि शेष जीवन में इस शरीर से धर्माराधना संभव नहीं है तो यावत् जीवन संलेखनाव्रत अंगीकार कर ले-उस पंडितमरण में मृत्यु महोत्सव रूप होती है। अवधि, द्रव्य, प्रमाण, संख्या, अभिग्रह आदि का आधार ले कर तरह-तरह के अनशन तप करने में शक्ति का गोपन मत करो। व्रत-प्रत्याख्यान व त्याग को मुक्ति का सिलसिला समझना चाहिये और साथ में भाव विरति का भी प्रयत्न करो। एकान्त रूप से न सही तो भी द्रव्य व्रत पालन अवश्य उपादेय है। लेकिन द्रव्य के बिना भाव की बातें करने वाले, मानसिक साहस के अभाव में शारीरिक कष्ट का बहाना बताने वाले और व्रत प्रत्याख्यानों को बन्धन समझने वाले लोग प्रायः शिथिलाचारी या असफल होते हैं। अज्ञान तप से बचो।

15. जस्सिमे सद्दाय रुवाय गंधाय रसाय फासाय अभिसमण्णागता भवति से आतव, णाणवं, वेयवं, पण्णाणेहिं परिजाणतिलोगं, मुणी तिवच्चे धम्मविदुत्तिअंजू आवह सोए संगमभिजाणति [3.1 (107)]

शब्द, रूप, गंध, रस स्पर्श, इन पांचो इंद्रियों के व नो इन्द्रिय के विषयों में रस का त्याग कर दे—उनमें मनोज्ञता या अमनोज्ञता आरोपित न करे—स्वाद के लिये उपभोग न करे।

16 जे अचेले परिवुसिते संचिक्खति ओमोयरियाए [6.2 (184)]

इन्द्रियों को पूर्णतया वश में रखता हुआ, इन्द्रियनिग्रह के साथ-साथ अपनी आवश्यकताओं को भी कम से कम करता जावे। इन्द्रियों को खुली छोड़ना हानिकारक है—केवल मूर्ख लोग ही काम भोगों के प्रति आकर्षित होते हैं क्योंकि इनके परिणाम बड़े भयानक, भयंकर दुःखदायक व संसारवर्धक हैं। अतः प्राप्त काम भोगों को भी त्याग दो और स्वयं व मन का पुनर्भोग जैसा निन्दनीय आसेवन मत करो। तिविहा ओमोयरिया—उपकरण, भक्तपान और भाव—उपभोग के स्तर को सहज घटाने की जितनी शक्ति बटोर सकता है उतना ही अवमोदरिका तप उत्कृष्ट होगा। भोगों से संतृप्ति होने वाली नही है—ज्यों-ज्यो लाभ होता है त्यों-त्यों लोभ बढ़ता है।

17 घोरेधम्मे उदीरिते [6.4 (192)] पणयावी रामहावीरीहिं [1.3 (21)] दुरणुचरो मग्गोवीराण अणि यह ग्रामीणं [4.4 (143)] जतिवीरामहाजाणं [3.4 (129)]

मोक्ष साधना कठोर है परन्तु अशक्य नहीं है—अनंतवीर इस पर चल कर मुक्त हो चुके हैं। कायर जन इसके लिये सर्वथा अयोग्य हैं, रास्ते में आने वाले स्वाभाविक, कर्मजनित, स्व पर पुरुषार्थ-जन्य, कालकृत, नियति प्रदत्त या आकस्मिक, सब प्रकार के उपसर्गों और परीषहो को सम्यग् प्रकार से सहन करो ताकि कर्मों की नयी परम्परा न बधे। आकुल-व्याकुल, उद्वेगी या भयभीत होकर हार मत खाओ, वीर्य गुण का भरपूर उपयोग बहादुरीपूर्वक करो—शक्ति ही सफलता का रहस्य है। आत्मा अमर है—जीवन-मरण मे समभाव रखो और मृत्यु की चिंता छोड़ो। धर्म के लिए मृत्यु का वरण भी अप्रशंसनीय है। अन्यो को देखकर साहस रखो। भगवान ने सर्दी, गर्मी, आतप, अचेल दंशमशक भूख-प्यास आदि कितना कायक्लेश सेना था। स्वयं से जूझना तो और भी विशिष्ट है।

18. तं परिण्णाय मेहावी इदाणी णोजमहं पुव्वमकासी पमादेणं। लज्जमाणा पुढोपास [1.4 (33.34)]

इन दुष्कृत्यों से लज्जित होते हुए, पश्चात्ताप करते हुवे, आत्मा को उस पाप स्थान से हटाकर पुनः धर्म पर स्थिर करो और भविष्य में फिर कभी भूल न करने का संकल्प करो। पापों का प्रतिक्रमण किये बिना आराधना असफल ही है तथा पाप

मानसिक व शारीरिक क्रियाओं मे वास्तविक पारदशक एकरूपता की उपलब्धि होती है व प्रज्ञा स्थिर होती है जो मोक्षार्थी के लिय अद्वितीय शक्तिपुञ्ज है। द्वीप की तरह अहत् प्रवचन मे स्वय को सुस्थित समझा। अलवत्ता इसका जीव की भव्यता अभव्यता स सम्बन्ध अवश्य है—काश भव्यता हो। पर हर हालत मे धर्माचरण तो श्रेयस्कर ही है।

26 आयाण भो सुस्सूसभो धूतवाद पवेदयिस्सामि [6 1 (181)]

पूर्णकालिक उत्कृष्ट मोक्ष साधना के लिये घर परिवार समेत गृहस्थी के समस्त सम्बन्ध व लौकिक सयोगो का त्यागान्तर उन्मुक्त, अप्रतिवद्ध, अप्रतिज्ञ नि सग, एकाकी जीवनचर्या का विधान किया गया है जिसके व्रत अत्यन्त कठोर हैं—महाव्रत कहलाते हैं लेकिन हैं व्यवहार सत्य ही। सहनन, सस्थान स्वभाव, शारीरिक व मानसिक क्षमता व देशकाल परिस्थिति को देखकर ही यह आजीवन भार अगीकार करना चाहिये वरना अनाचारी न इधर का रहता है न उधर का। ग्राम या अरण्य म साधु जीवन के निर्वाह हुतु अन्या का आश्रय उत्कृष्ट मध्यम या जघन्य रूप मे लेना ही पडता है।

27 अत्थिलोएणात्थिलोए जाव निरएनिवा अविरएतिवा जमिण विप्पदि वण्णा मामग धम्म पण्णवेमाणा एत्थविह जाणह अकस्मात् [8 1 (200)]

परिज्ञान क्रियावाद का यह माग उत्सर्ग अपवादमय जटिल है किंकर्तव्यविमूढ करने वाला है—वे ही आश्रव परिश्रव और वे ही परिश्रव आश्रव हो जाते हैं अत हर कदम पर उपयोग की आवश्यकता है—एकान्त से काम नही चल सकता। निश्चय जितना सत्य है व्यवहार उतना ही तथ्य है जिस देशकाल परिस्थिति मे वतमान हैं वही से आगे बढना पडता है अत भगवान का सारा दृष्टिकोण व्यावहारिकता लिये हुवे है। ससार व्यवहार की भाति धार्मिक व्यवहार भी होता है जिसमे द्रव्य व पर्याय ज्ञान व क्रिया निश्चय व व्यवहार, सामान्य व विशेष आदि सभी की प्रतिष्ठा होती है। विवाद मे उलझना बेकार है और इसी अनेकान्त दृष्टि से धर्मबाह्य लोगो की उपेक्षा कर दो।

कोई उत्सूत्र प्ररूपणा हुई हो तो मिच्छामि दुक्कड।

नोट —इस लेख मे लगभग सभी उद्धरण आचाराङ्ग प्रथमश्रुतस्कन्ध के हैं जिनके सदर्भ मे पहिला अक अध्याय का और दूसरा अक उद्देशक का द्योतक है और व्यास मे पूज्य मुनिश्री जम्बू विजयजी द्वारा सपादित आचाराङ्ग के अनुसार सूत्र क्रमाक दिया गया है।

रावटी, जोधपुर

□

भगवान् का नाम ही भव-रोग की दवा है। अच्छा न लगने पर भी नाम कीर्तन करते रहना चाहिये, करते-करते क्रमश नाम म रुचि हो जायेगी।

परणाणं 4 से भवति सरणं महामुणी (6.5 (196–7))

साधु एवं गुरुजनों की, दुखियों की, साधर्मिकों की, संघ व समाज की व अन्य सुपात्रों की वैयावृत्य सेवासुश्रूषा पर्युपासना कर्तव्य है। व्यक्ति मोक्ष मार्ग में अग्रसर हो सके, उसमें स्थिर रह सके, धर्म की प्रभावना हो ऐसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दया, दान, पुण्य व परोपकार के क्षेत्र सदैव खुले रखने चाहिये। अतिथि संविभाग श्रावक का एक मुख्य व्रत है। वैयावृत्य का विस्तार अन्नदान से लेकर कलह समाधान, ज्ञानदान व ठेठ मृत्यु संस्कार तक अत्यन्त विशाल है और अभ्यन्तर तप का भाग है अर्थात् शुद्ध सेवा की भावना से किया जाना चाहिये। कुशल पुरुष सेवा कार्य करते हुये, कराते हुये करने हुवे का अनुमोदन करते हुवे कर्म बंधन से बचते हैं (कुसले पुण्णणो) बद्धेणोमुक्के—क्रिया से मुक्त न होता हुआ भी कर्म बंधन से मुक्त रहता है। कदाचित् अशुद्धता रह जाती है तो शुभ (पुण्य) बंधन होता है।

स्पष्टीकरणः—जिस प्रकार धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय केवल अजीव होने के नाते एक सरीखे नहीं हैं उसी प्रकार पाप और पुण्य केवल बेड़ी या बन्धन होने के नाते एक सरीखे नहीं हो सकते, वस्तुतः वे एक दूसरे के विलोम है। यदि जोड़ी बनानी ही है तो शुद्ध व शुभ योग की बनेगी (तत्पश्चात् अनुच्छेद में स्पष्ट है) अशुभ योग तो पहिले से ही अलग कर दिया जाता है।

24. धीरे मुहुत्तमवि णोपमायए [2.1 (165)] सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरंति (3.1 (106))

उठो! प्रमाद (नींद) को छोड़ो। आत्म नियन्त्रण व निग्रह में तिलमात्र भी ढील न करो। प्रमाद स्वयं में कर्म-बन्धन का स्वतन्त्र कारण है और अन्य कर्मों का जनक है। प्रमादी व्यक्ति अविवेकी, भयभीत, व्रतभंग करने वाला, हिंसक व पथभ्रष्ट होता है। निद्रा रूपी प्रमाद को भी जीतना चाहिये। स्फूर्ति, बुद्धि व उत्साहपूर्वक एक-एक क्षण का सदुपयोग करो क्योंकि मृत्यु अवश्यंभावी है, मनुष्य भव दुर्लभ, अत्यल्प और अनिश्चित आयु वाला है। आलस्य, असावधानी, आध्यात्मिक व पारलौकिक लापरवाही, ऐश आराम, एकान्ताश्रय, दिमाग, बुद्धि व ज्ञान का अनुपयोग, दीर्घसूत्रता, शक्ति का गोपन, अकर्मण्यतारूपी प्रमाद को पास में मत फटकने दो—बिल्कुल अक्षम्य है। मनुष्य भव में ही मोक्ष संभव है अतः सशक्त इन्द्रियां, यौवन व उपयुक्त देश-काल व अन्य परिस्थितियों के संयोग रूपी इस स्वर्णिम अवसर का पूरा उपयोग मोक्ष साधना में कर लो—ऐसा मौका बार बार नहीं मिलेगा।

25. आणाए मामगंधम्मं, एस उत्तरवादे इण माण वाणं वियाहिते [6.2 (185)]

साधारण जन के लिये यह उत्तम विधान है कि (भगवद्) आज्ञा में ही मेरा धर्म है और (भगवद्) आचरण का अनुकरण मेरा कर्तव्य है। जिन प्रतिपादित तत्त्व ज्ञान पर भावपूर्ण श्रद्धा, आस्तिकता, रुचि प्रतीति हुये बिना सारा प्रयास मोक्ष रूपी मूल उद्देश्य को सिद्ध नहीं कर सकता। बाह्य क्रिया का दिखाना तो ढोंग है स्वयं को धोखा देना है। भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे—उन्होंने पूर्व तीर्थंकरों के जैसा ही कर्मक्षय को सर्वश्रेष्ठ तरीका बताया है जिसका अनुसरण कर अनन्त प्राणी संसार पार कर चुके हैं अतः उनके दर्शन में शंका, पुनः अस्थिरता बुद्धि भेद या मूढ़ता न लावें—पर मत की आकांक्षा न करें साधर्मिकों के साथ वात्सल्य भाव रखें और धर्म की प्रभावना करें। जिनोक्त तत्त्वों पर श्रद्धा प्राप्त हुये बिना आत्म विकास असंभव है—न उसका चारित्र सम्यक् हो सकता है और न ज्ञान। दृष्टि सम्यक् होने से ही सब सम्यक् परिणित हो जाता। व्यवहार में [illegible],

ग्रन्थ प्राकृत भाषा म है। देखिये महावीर चरित्र की प्रशस्ति—

अणहिलवाडपुरम्मि, सिरिकण्णनराहिवम्मि विजयन्ते।

दोहट्टि कारियाए, वसहीर मठिएण च॥
वासमयाण एक्कारसण्ह, विक्कमनिवस्स विरायाण।
अगुयाली से सवच्छरमि, एव निवद्धति।

पूर्वोक्त दोनो ही कृतिया एक ही नगर और एक ही स्थान मे रची गई हैं। दोनो के रचनाकाल म वारह वष का अन्तर है।

इन दोनों ग्रथो म रचनाकाल और रचना स्थान दोनो का स्पष्ट उल्लेख है। पता नहीं प्रस्तुत ग्रन्थ मे इसका उल्लेख क्यों नही किया? फिर भी इन ग्रथा के रचनाकाल से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि प्रस्तुत ग्रथ का रचनाकाल भी बारहवीं शताब्दी ही है। तथा इन दोनो ग्रथा से बाद मे म रचा गया है। कारण उत्तराध्ययनवृत्ति एव महावीरचरित्र की प्रशस्ति म ग्रथकार क गुरुदेव आम्रदेव सूरि के लिये जो विशेषण दिया है उसस स्पष्ट है कि जब ये ग्रथ रचे गये वे उपाध्याय थे। आचायपद पर प्रतिष्ठित नही हुए थे। यथा—

त्रिभुवस्य महीपीठे, बृहद्गच्छस्य मण्डनम्।
श्रीमान विहारकपृष्ठ सूरिर्द्योतनाभिध ॥ 2 ॥
तस्य शिस्योऽम्रदेवो ऽभूदुपाध्याय सता मत।
यत्रकान्तगुणापूर्णे दोषैर्लेभे पद न तु ॥ 2 ॥
उत्तराध्ययन टीका—

महावीर चरित्र मे भी यही बात है—

'उज्जोअण सरिस्स य सीसो अह अम्मदेवउज्झाओ।'
किन्तु प्रवचनसार की प्रशस्ति अपने गुरु के लिये आचायपद का स्पष्ट निर्देश है।
सिरि अम्मएव सूरीण, पायपक्यपराएहिं।

अर्थात् प्रवचनसार की रचना के समय ग्रथकर्ता के गुरुदेव आचाय बन चुके थे। इससे सिद्ध होता है कि प्रस्तुत ग्रथ पूर्वोक्त दोनों ग्रथो के बाद बना है।

इन ग्रथा की प्रशस्ति से ग्रथकार की गुरु परम्परा के बारे मे दो बातें सामने आती है। उत्तराध्ययन टीका एव महावीर-चरित्र के अनुसार नेमिचन्द्र सूरि के दादा गुरु उद्योतन सूरि हैं, प्रस्तुत ग्रथ म उनका नाम जिनचन्द्र सूरि है। प्रश्न है कि ये दो नाम एक ही व्यक्ति के हैं या अलग-अलग व्यक्तियो के हैं। यदि एक ही व्यक्ति के दो नाम मान लिये जाय, जस कि नेमिचन्द्र सूरि के स्वय के अलग-अलग स्थानो पर दो अलग अलग नामो का उल्लेख है। उत्तराध्ययनवृत्ति मे उन्होने अपना नाम देवेन्द्रगणि लिखा है किन्तु वीरचरित्र मे एव प्रस्तुतग्रथ म नेमिचन्द्र सूरि है। ऐसी स्थिति मे गुरु परम्परा इस प्रकार बनेगी उद्योतनसूरि (जिनचन्द्रसूरि)—आम्रदेवसूरी और नेमिचन्द्रसूरि। किन्तु यदि दूसरा पक्ष मान लिया जाय तो ग्रथकार की गुरु परम्परा इस प्रकार रहगी। जिनचन्द्रसूरि, आम्रदेवसूरि तथा नेमिचन्द्रसूरि।

यदि उद्योतनसूरि और जिनचन्द्रसूरि दो अलग अलग व्यक्ति है तो एक बात और माननी पडेगी कि पूर्वोक्त तीनो ग्रथो का रचयिता भी एक नहीं है।

विद्वान् ग्रथकर्ता का जन्म कब और कहा हुआ था? दीक्षा कब और कहा ली थी? आपके माता पिता कौन थे? आप किस जाति के थे? आपका विहार क्षेत्र कौनसा रहा? आपका शिष्य परिवार कितना और कैसा था? ये प्रश्न आज तक अनुत्तरित ही हैं। इन प्रश्नो को समाहित करने वाला कोई भी चिन्ह नजर नहीं आता। यदि कोई इतिहास विज्ञ अपनी प्रतिभा का उपयोग इन तथ्यो

जैन दर्शन का आकार ग्रन्थ : प्रवचन सारोद्धार

□

साध्वी अमितयशा

'प्रवचन सारोद्धार' तीन शब्दों से बना हुआ नाम है। प्रवचन+सार+उद्धार । जैसा इसका नाम है वैसा ही इसका काम है। 'प्रवचन' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता है, जैसे प्रवचन यानि जिनशासन, जिनवाणी, जिनागम आदि । यहा प्रवचन का अर्थ है जिनागम। सार अर्थात् निचोड। उद्धार यानी उद्धरण, धारण करना–अर्थात् जिसमें समूचे जिनागम का निचोड़ हो वह 'प्रवचन सारोद्धार' कहलाता है।

वास्तव में इसका नाम सार्थक एव यथार्थ है। इस ग्रंथ मे आगम रूप समुद्र के सारभूत प्राय: सभी विषयों की चर्चा है। यह बात इसके अध्ययन मे स्पष्ट हो जाती है।

मूल ग्रन्थ के प्रणेता आचार्यदेव श्री नेमिचन्द्र सूरि है। टीकाकार है सिद्धसेन सूरि।

मूल ग्रन्थ प्राकृत भाषा मे है। कुल मिलाकर इसकी 1599 गाथायें है।

अपनी गुरु परम्परा का वर्णन ग्रन्थकार ने स्वय मे इसी ग्रन्थ की प्रशस्ति मे स्पष्ट रूप से किया है।

धम्मायरियाण महाकहिए जिणचन्दसूरि सिस्साण ।
सिरि अम्मएव सूरीण, पायपंकयपरागेहिं ॥ 1595 ॥
सिरि विजयसेणसूरिहिं, [illegible] सूरि
[illegible] ।
सिरि नेमीचन्द सूरीहिं, सविणयं सिस्सभणिएहिं
॥ 1596 ॥

इससे स्पष्ट हैं कि ग्रन्थकर्त्ता के पू. गुरुदेव आम्रदेवसूरि तथा प्रगुरु जिनचन्द्र सूरि हैं। इनके दो गुरुभाई हैं—बड़े विजय सेनसूरि और यशोदेव सूरि।

आपका समय विक्रम की बारहवी शताब्दी है। समय का निर्णय स्वयं आपके ग्रन्थों मे हो जाता है। आपके द्वारा रचित मुख्य तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते है।

1. उत्तराध्ययन की सुखबोधा टीका 2. महावीर चरित्र और 3. प्रवचन सारोद्धार।

1. उत्तराध्ययन टीका विक्रम संवत 1129 मे रची गई आपकी सर्वप्रथम रचना है। इसकी रचना पाटण मे, दोहड्डि श्रेष्ठीकी वसति मे रहकर की थी। इस बात का उल्लेख ग्रन्थ के अन्त मे आचार्य श्री ने किया है।

अणहिल्लपाडय नगरे, दोहड्डि सेट्ठिसन्तिआ वसही ।
[illegible] ॥

उनकी दूसरी कृति श्री महावीर चरित्र है। जिसका रचनाकाल वि. सं. 1141 है। यह ग्रन्थ भी पाटन मे ही रचा गया था। यह चरित्र-

व्याकरणसम्मत व्युत्पत्ति देंगे। फिर उसके पर्याय वाची देकर सरल सुबोध भाषा में अर्थ और भावार्थ देंगे। ताकि सामान्य व्यक्ति भी आसानी से समझ सके। जैसे 'शीलांग' को समझाना है तो सर्वप्रथम शब्दों को अलग करके उनका अर्थ बतायेंगे—शील = संयम अंग = अंश। अब इसका सरल अर्थ बता दिया—'चारित्र के कारणभूत धर्म—आचरण 'शीलांग' कहलाते हैं। फिर उनके भेद प्रभेद बताकर स्पष्ट किया है। भावना को समझाते हुए प्रथम भाव्यते इति भावना, व्युत्पत्ति की। बाद में अर्थ बताते हुए कहा भावना—'परिणामविशेषा इति। इस प्रकार समझाने की बडी सुगम शैली अपनाई है।

आपकी भाषा साहित्यिक है प्रवाहबद्ध है। शैली सुगम किन्तु विवेचनात्मक है। टीका पढने से लगता है कि आप व्याकरण और साहित्य के तो प्रकाण्ड विद्वान् हैं ही, आपका न्याय दर्शन का ज्ञान भी कोई कम नहीं है। नय निक्षेप क्रम इत्यादि की चर्चा में उन्होंने नैयायिकों की शैली का भरपूर उपयोग किया है। तथा दार्शनिक चर्चा भी छेडी है। विषय को और अधिक स्पष्ट बनाने हेतु टीकाकार ने स्वयं अपनी ओर से प्रश्न उठाये और हाथोहाथ समाधान भी दे दिया है।

276 मूलद्वार में कई द्वार ऐसे हैं जो एक दूसरे से संबंधित हैं। ग्रन्थ पढने पर मालूम हुआ कि संबंधित द्वारों की व्यवस्था क्रमबद्ध नहीं है। अलग अलग बिखरे हुए हैं। समझ नहीं आता कि ग्रन्थकार ने संबंधित द्वारों को क्रमबद्ध व्यवस्थित क्यों नहीं किया। इस ग्रन्थ को मैंने कई बार पढा। पढा ही नहीं अनुशीलन परिशीलन भी किया। इससे एक चिंतन उभरा कि—एक दूसरे के पूरक परस्पर सम्बन्धित द्वारों को एकत्र संकलित कर विषय के अनुरूप नाम देकर 'विभाग' बना दिये जाय तो व्यवस्थित काम होगा। पढने वाले को एक ही विषय की सम्पूर्ण सामग्री एक स्थान पर मिल जायगी। अन्यथा सम्बन्धित द्वारों को अलग अलग स्थानों पर खोजना पडता है। चैत्यवन्दन साधु श्रावक संबंधी जो भी द्वार हैं उन्हें एक ही क्रम में जोड दिया जाय ताकि उनका एक विभाग बन जाय। अगर विधि संबंधी द्वार हैं तो उन सभी को मिलाकर एक नाम दे दिया जाय 'विधि विभाग'।

पढते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा कि कौन कौन से द्वार परस्पर संबंधित हैं और एक साथ जोडे जा सकते हैं। यह भी विचार आया कि इसे हिन्दी में अनूदित कर दिया जाय और संबंधित द्वारों का अलग अलग विभाग बनाकर उन्हें क्रमशः व्यवस्थित कर दिया जाय तो बहुत ही उपयोगी काम होगा।

मेरा परम सौभाग्य है कि 'प्रवचनसारोद्धार' को पढते समय मैंने जो कल्पना की थी वह पू. गुरुवर्या श्री हेमप्रभा श्री जी म. सा. के अथक प्रयास ने साकार कर दी। मेरा सपना पूरा कर दिया। उन्होंने इस ग्रन्थ का बडी गहराई से अनुशीलन-परिशीलन किया। अलग-अलग बिखरे सम्पूर्ण द्वारों को विषयबद्ध किया। 276 द्वारों को कुल मिलाकर नौ भागों में बांट दिया। फिर समूचे ग्रन्थ का सरल प्रांजल और प्रवाहबद्ध भाषा में अनुवाद किया। हिन्दी भाषा में अनूदित यह ग्रन्थरत्न आशा है शीघ्र ही प्रकाशित हो जिज्ञासुओं का अतीव उपयोगी बनेगा।

9 विभाग—

1 विधि विभाग 2 आराधना विभाग 3 सम्यक्त्व और श्रावक धर्म 4 साधु धर्म 5 जीव स्वरूप 6 कर्म साहित्य 7 तीर्थंकर 8 सिद्ध 9 द्रव्य क्षेत्र काल और भाव।

1 विधि विभाग इसमें 9 द्वार हैं।

1 चैत्य 2 वंदन 3 प्रतिक्रमण 4 प्रत्याख्यान 5 नियमित 6 कृतिकर्म संख्या 7 रात्रिजागरण

को उजागर करने में करें तो इतिहास की बहुत बड़ी सेवा होगी।

आपकी ग्रंथरचना का काल देखते हुए स्वर्गवास का अनुमानित काल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ही ठहरता है।

प्रवचनसार के टीकाकार :—

जिस प्रकार चाबी से ताला खुलता है, वैसे टीकाकार अपनी बुद्धिरूप चाबी से ग्रन्थकर्त्ता के भावों को खोलकर रख देता है। दूसरों के भाव को स्पष्ट करना आसान बात नहीं है। यही टीकाकार की सफलता है। इस ग्रंथ के टीकाकार हैं सिद्धसेनसूरि। इनके बारे में समय एवं रचना के अतिरिक्त और कुछ भी विदित नहीं है। उनका समय विक्रम 13 वी शताब्दी है। प्रस्तुत ग्रंथ की टीका से स्पष्ट हो जाता है।

करिसागररवि संख्ये, श्री विक्रमनृपतिवत्सरे चैत्रे।
पुष्यार्कदिने शुक्लाष्टम्यां वृत्ति समाप्तासी॥

टीका का समापन वि. सं. 1248 की चैत्र सुदी 8 रविपुष्य के दिन हुआ था।

'सिद्धसेन' नाम के तीन आचार्य हुए है। प्रश्न है कि इस ग्रंथ के टीकाकार कौन से सिद्धसेन है ?

प्रथम सिद्धसेन जो सिद्धसेन दिवाकर के नाम से प्रसिद्ध है, दूसरे तत्त्वार्थ वृत्तिकार सिद्धसेन है। ये दोनो इसके टीकाकार नहीं हो सकते। कारण प्रथम सिद्धसेन विक्रम के समकालीन है। तत्त्वार्थवृत्ति को भी कई जगह प्रवचनसार की टीका में प्रमाण रूप में उद्धृत किया है अतः दूसरे सिद्धसेन भी इसके टीकाकार नहीं हो सकते। स्पष्ट है कि इसके टीकाकार उपर्युक्त दोनों सिद्धसेन से भिन्न

है। आपके द्वारा रचित और भी ग्रंथों के नाम मिलते हैं—1. सामाचारी 2. पद्मप्रभचरित्र 3. स्तुतिग्रंथ।

मूल ग्रन्थ—

मूल ग्रन्थ प्राकृतभाषा मे है। श्लोकबद्ध है। कुल मिलाकर इसके 1599 श्लोक हैं। जैसा कि इसका नाम है, इसमें मुख्य सभी विषयों की चर्चा है। ग्रन्थ की प्रतिपादन शैली प्राचीन है। प्रत्येक विषय को द्वार-प्रतिद्वार के द्वारा समझाया गया है। इस ग्रन्थ को देखने से लगता है कि विषय-संग्रह की दृष्टि से यह ग्रन्थ 'सागर' है। विषय से संबधित सभी उपविषयों का जिस खूबी से इसमें संग्रह हुआ है यह ग्रन्थकार की सूक्ष्म-बुद्धि, संभावना-शक्ति एवं प्रतिभा का परिचायक है।

इसमें कुल मिलाकर मुख्य द्वार 276 है। इसमे सामान्य से सामान्य विषय जैसे चैत्यवन्दनादि, गंभीर से गभीर विषय जैसे कर्म, नवतत्व, पुद्गल, लोक संरचना, अध्यवसाय स्थान आदि की भी चर्चा है। वास्तव मे ग्रन्थकार की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। विविध विषयों का एक साथ इतना बड़ा संग्रह अन्यत्र कही नही है।

मूल ग्रन्थ की तरह टीका भी अन्वर्थक नाम है 'तत्त्व विकाशिनी'। वास्तव मे यह तत्त्व का विकास करने वाली विशद एवं विशाल व्याख्या है। विषय को सरल, सुबोध रीति से प्रस्तुत करना, गम्भीर विषय को रुचिकर बनाना, टीकाकार की विशेषता है। इस दृष्टि से सिद्धसेन सूरि पूर्ण सफल है।

पदार्थ को समझाने की उनकी शैली बड़ी [illegible] है। [illegible]

53 आहार उच्छ्वास काल 54 अनाहारक 55 आहारक शरीर 56 वैक्रियकाल 57 समुद्घात 58 अपहरण अयोग्य 59 मरण 60 लब्धि 61 जीव अजीव का अल्पबहुत्व 62 तिर्यंचस्त्री की गर्भस्थिति 63 मनुष्यस्त्री की गर्भस्थिति 64 गर्भ की कायस्थिति 65 गर्भ का आहार 66 गर्भोत्पत्ति का काल 67 एक साथ कितने गर्भ 68 एक गर्भ के कितने पिता? 69 कितने समय बाद स्त्री पुरुष अबीज बनते हैं 70 शुक्र रुधिर ओजस आदि का परिमाण 71 मनुष्य-भव के लिये अयोग्य।

6 कर्मसाहित्य विभाग—

1 आठकर्म 2 उत्तर प्रकृति 3 पुण्य प्रकृति 4 पाप प्रकृति 5 बंध उदय उदीरणा सत्ता 6 स्थिति अबाधा 7 गुण स्थान 8 गुणस्थान में परलोक गति 9 गुणस्थान का काल 10 उपशम श्रेणी 11 क्षपक श्रेणी 12 मार्गणास्थान 13 योग 14 उपयोग 15 भाव 6 16 षट्स्थान 17 सम्यक्त्व चारित्रादि अन्तर 18 आठ प्रमाद 19 आठ मद

7 तीर्थंकर विभाग—

1 भरत ऐरवत जिननाम 2 आदि गणधर नाम 3 प्रवर्तिनी नाम 4 माता पिता नाम 5 माता पिता गति 6 उत्कृष्ट जिनसंख्या 7 उत्कृष्ट जन्म संख्या 8 गणधर 9 मुनि 10 साध्वी 11 वैक्रियधर 12 वादी 13 अवधिज्ञानी 14 केवली 15 मन पर्यवी 16 चौदपूर्वी 17 श्रावक 18 श्राविका 19 यक्ष 20 यक्षिणी 21 शरीर प्रमाण 22 लंछन 23 वर्ण 24 दीक्षा परिवार 25 सर्वायु 26 निर्वाण परिवार 27 निर्वाणस्थान 28 अन्तराल 29 तीर्थच्छेद 30 दश आशातना 31 चौरासी आशातना 32 प्रातिहार्य 33 अतिशय 34 दोषापगम 35 जिनचतुष्क 36 दीक्षातप 37 ज्ञानतप 38 निर्वाणतप 39 भाविजिन 40 शाश्वतप्रतिमा 41 अन्तिम जिननीथ काल

8 सिद्ध विभाग—

1 ऊर्ध्वादि सिद्धसंख्या 2 एक समय सिद्ध संख्या 3 सिद्धभेद 4 सिद्ध अवगाहना 5 गृहिलिंगादि सिद्ध संख्या 6 वनीमादि सिद्ध संख्या 7 अनन्तर सिद्ध संख्या 8 सिद्ध संस्थान 9 सिद्ध अवस्थिति 10 उत्कृष्ट अवगाहना 11 मध्यम अवगाहना 12 जघन्य अवगाहना 13 अन्तर 14 सिद्ध के 31 गुण।

9 द्रव्य क्षेत्र काल भाव—

1 षड्द्रव्य 2 छ अनन्त 3 चौदह राज 4 नवनिधान 5 कल्पवृक्ष 6 पातालकलश 7 तमस्काय 8 चक्रपंजर 9 पुष्करावर्त 10 प्रासुक जल काल 11 धान्य की अबीजता 12 क्षेत्रातीत की अचित्तता 13 धान्य के नाम 14 भक्ष्य 15 लोकस्वरूप 16 आमदनी 17 अनार्य देश 18 नन्दीश्वर द्वीप 19 अष्ट-कृष्णराजी 20 लवण शिखाप्रमाण 21 मानोन्मान प्रमाण 22 उत्सेधांगुलादि 23 पल्योपम 24 सागरोपम 25 अवसर्पिणी 26 उत्सर्पिणी 27 पुद्गल परावर्त 28 पर्याप्ति 29 पूर्वपरिमाण 30 मासपाच 31 बंध पात 32 सप्तनय 33 तीन सौ त्रेसठ पाखंडी 34 क्रियास्थान तेरह 35 मानभयस्थान 36 पापस्थानक 18 37 भाषी भेद 38 अष्टांगनिमित्त 39 दश आश्चर्य 40 दश स्थान विच्छेद 41 चौदहपूर्व।

इस प्रकार द्वारों को विषयबद्ध कर नौ भागों में व्यवस्थित कर दिया गया। फिर प्रतिद्वार सहित टीका का हिन्दी में अनुवाद हुआ।

वास्तव में यह ग्रन्थ आकर ग्रन्थ है। उपयोगी सभी विषयों का एक स्थान पर संग्रह सामान्य लोगों के लिये बड़ा ही ज्ञानवर्धक है।

इस ग्रन्थ का अधिकाधिक स्वाध्याय कर तत्त्वजिज्ञासु आत्मा श्रुतज्ञान को आत्मसात् करें शुभेच्छा है।

विधि 8. आलोचना दायक गुरु अन्वेषण और 9. स्वाध्याय-अकाल।

2. आराधना विभाग—

1. बीस जिननाम स्थानक 2. विनय भेद 3. ब्रह्मचर्य 18 भेद 4. इन्द्रिय जयादि तप 5. परिषह 6. कायोत्सर्ग 7. महाव्रत भावना 8. अशुभ भावना।

3. सम्यक्त्व और श्रावकधर्म—

1. समकित के 67 भेद 2. सम्यक्त्व के प्रकार 3. सूत्र और सम्यक्त्व 4. सम्यक्त्व के आकर्ष 5. गृहस्थ धर्म के भागे 6. श्रावक की प्रतिमा 7. प्राणातिपात के 243 भेद 8. 108 परिणाम 9 गृहस्थ के 124 अतिचार 10. श्रावक के 21 गुण।

साधुमार्ग—

1. साधु के 27 गुण 2. अठारह हजार शीलांग 3. चरणसतरी 4. करण सतरी 5. महाव्रत संख्या 6 क्षेत्र विषयक चारित्र संख्या 7 निर्ग्रन्थ पंचक 8 श्रमण पंचक 9. भवनिर्ग्रन्थ संख्या 10. आगमादि 5 व्यवहार 11. जंघाविद्याचारण गमनशक्ति 12. आचार्य के गुण 13. चतुर्गतिक निर्ग्रन्थ 14 दीक्षा-अयोग्य पुरुष 15. दीक्षा अयोग्य स्त्री 16. दीक्षा अयोग्य नपुंसक 17. विकलांग स्वरूप 18. स्थविर कल्पी के उपकरण 19. साध्वी के उपकरण 20. वस्त्रमूल्य 21. वस्त्र ग्रहण विधान 22. चोलपट्टकादि 23. दंडक पंचक 24. तृण पंचक 25. चर्म पंचक 26. दुष्यपंचक 27. अवग्रह पंचक 28. उपधि का प्रक्षालन 29 भिक्षामार्ग 30. सागारिक पिंड [illegible] 31. शय्यातर पिंड [illegible] 32 [illegible] 33. [illegible] पंचक 34. [illegible] के भाग 35. [illegible] प्रकरण 36. [illegible] प्रकरण 37. [illegible] प्रकरण 38. [illegible] प्रकरण 39. [illegible] भेद 40. [illegible] 41 साधु विहार स्वरूप 42. अप्रतिबद्ध विहार 43. वसति शुद्धि 44. वृषभादि द्वारा वसति ग्रहण 45. स्थित-कल्प 46. अस्थित कल्प 47. जात-अजातकल्प 48. दुखशय्या 49. सुखशय्या 50. शुद्ध-अशुद्ध वस्तु से गुरु सेवा 51 ओछ समाचारी 52. माडली 7 53. छेदग्रन्थ समाचारी 54. प्रायश्चित 55. दशविध समाचारी 56. भाषा के चार प्रकार 57. सोलह-वचन 58. छः प्रकार की अप्रशस्त भाषा 59. सलेखना 60. जिन कल्पी के उपकरण 61. एक स्थान में जिनकल्पी कितने 62. यथा-लंदिक स्वरूप 63. परिहार विशुद्धि।

5. जीवस्वरूप विभाग—

1. जीव के 14 प्रकार 2. अजीव के 14 प्रकार 3. जीव संख्या 4. मनुष्य गति के अयोग्य 5. एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय-संज्ञी 6. जीवों की काय भव स्थिति 7. एक समय में जन्म-मृत्यु (एकेन्द्रिय आदि) 8. देवता 9. एक समय में जन्मने वाले नारक 10. एक समय मरने वाले नारक 11. देवों की स्थिति 12. देवों के भवन, देवों का प्रविचार 13. नरक 14 नरकावास 15. नरक में जीवों का उत्पाद 16 वेदना 17. परमाधामी 18. नरक से निकले हुए क्या हो सकते हैं? 19. पन्द्रह कर्मभूमि 20. तीस अकर्मभूमि 21. अंतरद्वीप 22. शरीर प्रमाण (एकेन्द्रियादि का) 23. देवों का 24 नारक का 25 आयुष्य (नरक का) 26. इन्द्रिय स्वरूप (एकेन्द्रियादि का) 27. लेश्या (एके.) 28. देवों की 29. नरक की अवधिज्ञान 30. देवों का 31. नारक का 32. एके. आदि की गति 33 आगति 34. गति देवों की 35. आगति 36. एके. का विरह 37. देवों का जन्म विरह 38. मृत्यु विरह 39 नरक का जन्म मृत्यु विरह 40. जीवों की कुलकोटि 41. जीवों की योनि। सात 42. दस 43. पन्द्रह 44 चार 45. तीन 46 भरत क्षेत्र के अधिप 47. बलदेव 48. वासुदेव 49. प्रतिवासुदेव 50. [illegible] प्रधान 51. [illegible] 52. [illegible] 6

शुभाशंसनम्

आचार्य रामकिशोर पाण्डेय

धन्यो मणिप्रभो विद्वान् क्रियाकाण्डे धुरन्धर ।
कान्तिसागर सूरीणा वितनोति यशोऽमलम् ॥

भवतु सुखिन सर्वे कर्तारोऽप्यनुमोदका ।
दातारो वसुधाराणा सेवा धर्म परायणा ॥

जन धर्मरता माया शान्ता पीयूष वर्षिणी ।
सती ह्यमप्रभा विना, वितनोतु सता शिवम् ॥

उपधानाभिध चेद तपश्चातीव दुर्लभम् ।
कुर्वान्ति कारयन्ते ये त सर्वे शिव गामिन ॥

जिनालय सुसम्पन्ने कलशा रोपण वरम्'
उपधानतप प्रान्ते दीक्षा दान महाफलम्॥

दक्षिणातु पुरा लब्धा आशीर्वादा विनीमने।
इहोपत्य विप्रातस्य स्मारकोऽनुमवाश्रिया ॥

गुरु समर्पण

□

पुखराज डागा

जिनवाणी का सिंहनाद कर
तुमने हमें जगाया ।
सत्य-धर्म की राह दिखाकर,
ज्ञान का दीप जलाया ।
कान्तिसूरि के शिष्य गणिवर
मणिप्रभ नाम कहाया ।
तेरी आभा ने जिन शासन में
स्वर्णिम सूर्य उगाया ॥ १ ॥

तेजोमय मुखमुद्रा तेरी,
ओजभरी प्रिय वाणी ।
कलकल गंगाजल-सी बहती,
करती धर्म की लाणी ।
एक बार दर्शन पाने से,
हो जाते नौनिहाल ।
सम्यग्दर्शन ज्ञान निधि से
भरते [illegible] ॥ २ ॥

सत्य प्रतिष्ठित जीवन तेरा
अटल आस्था स्वर में ।
निराश में उल्लास भरा,
वैराग्य गूंजता रग में ।
श्वासों में वरदान, चरण में
[illegible] धरती धाम ।
कान्तिशिष्य पुखराज चढ़ावे
श्रद्धा भरी प्रणाम ॥ ३ ॥

वहिन 10 वप की किसलय कोमल वय म मा के साथ प प प्रवर्तिनी जी म सा की शिष्या बनकर विद्युत्प्रभा श्री जी म (वहिन म) एव रत्नमाला श्री जी म बन । पू साध्वी जी श्री विद्युत्प्रभा श्री जी म अच्छी विदुषी, व्याख्यात्री एव लेखिका ह। वे दशनशास्त्र म एम ए कर चुकी हैं तथा अभी शोधकाय में रत हैं। उनकी बुद्धि एव प्रतिभा पर हमें वडा नाज है । अपने हृदयहार के अनमोल रत्न तुल्य पुत्र पुत्री को शासन को समर्पित कर मा न अपना रत्नमाला नाम वास्तव म सार्थक बनाया।

मनोविज्ञान का नियम है कि प्रेम प्रीत को खीचती है, दिल की बात दिल जानता है उमे शब्दो की अभिव्यक्ति की कतई आवश्यकता नही होती। शिष्य का समपण गुरु के स्नेह का खीचता ह । समपण जितना गहरा होगा गुरु के स्नेह का स्रोत उतनी गहराई से उछलेगा । समपण एव स्नेह जीवन मे एसा अनठा रस पदा करते है कि गुरु-शिष्य एक दूसर मे समा जाते ह । इसी म जीवन का माधुय छिपा है । गुरु का स्नेह शिष्य क जीवन का मबल है तथा शिष्य का समपण गुरु की आशा का केन्द्र हैं।

गुरुवर्यश्री का पल पल गुरु समर्पित था। उनक हृदय का कण कण आराध्य के चरणो म अर्पित था। यही कारण है कि सिफ 13 वष के अति अल्प गुरु सान्निध्य ने उन्ह गुरु का महान् कृपा पात्र बना दिया। आचाय श्री के क्रातिकारी एव युगप्रभावक व्यक्तित्व ने अपन प्रिय शिष्य को यथाथ म 'मणि बनाया। आज वे ही 'मणि गाव गाव एव नगर-नगर मे ज्ञान की आभा एव सयम की प्रभा विखेर कर हजारो हृदयो का प्रकाश मे भर रहे हैं।

गुरुदेव के वाह्य एव आभ्यतर दोना ही व्यक्तित्व वडे आकषक सम्मोहक एव प्रेरक हैं।

गेहुआ रग, औसत कद, गठीला बदन, उन्नत ललाट, तेजोमय चमकीले पारखी नेत्र, जादू भरी मुस्कान बिखेरते होठ, शात, सौम्य, सदाबहार तेजस्वी चेहरा, ओजस्वी वाणी, काले घु घराले घने बाल, चुस्त चाल, गभीर व्यक्तित्व को और भी अधिक गम्भीर बनाने वाली काली घनी दाढी यह है उनके बाह्य व्यक्तित्व की झलक, जो एक बार देखते ही अन्तर को गहराई से छू लेती है।

वाह्य व्यक्तित्व की अपेक्षा आपका आन्तरिक व्यक्तित्व और अधिक आकषक एव समृद्ध है। कठोर जलवायु मे पलने के कारण आपश्री स्वभावत कठोर परिश्रमी सहिष्णु एव वडे ही साहसी हैं। गम्भीर इतन हैं कि कैसी भी विषम परिस्थिति क्या न हो कभी विचलित नही होते। सयत इतने हैं कि अनचाहे मनोभावो की एक शिकन भी चेहरे पर नही उभरती। व्यक्ति को परखने की परिस्थिति का भापने की, ज्ञान की गहराई को समझने की अद्भुत शक्ति है आप मे। बुद्धि विचक्षण है तो प्रतिभा विलक्षण है। आपकी जिज्ञासावृत्ति बडी तीव्र है। यही कारण है कि आपश्री के ज्ञान विज्ञान का क्षेत्र विशद एव व्यापक है तथा ज्ञान के क्षेत्र मे नित्य निरन्तर नये नये आयाम खुलते जाते हैं।

बुद्धि कथन ग्रहण करती है जबकि प्रतिभा नित्य नूतन की सजक है। आपकी सृजन शक्ति उवर है। आपश्री का चिन्तन नित्य नई कल्पनाओ मे समृद्ध है। धडकते दिल म कल्पना पैदा होना या भावो की उर्मिया उछलना कोई वडी बात नही है किन्तु अपन भावो को कलम की सहायता से हूबहू कागज पर उतारना वडी बात है। अपने भावो को शब्दो मे वाधना वास्तव मे कमाल है। पू गुरुदेव मे अपने भावो का हूबहू शब्दो मे बाधने की अपूव कला है।

आपके जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता तो यह है कि आप प्रबुद्ध चिन्तक, सिद्ध-हस्त लेखक, ओजस्वी वक्ता एव प्रतिभासम्पन्न कवि

अनुभव के आइने में पू. गणिवर्य श्री

साध्वी कल्पलता   साध्वी शुभ्रांजना एम. ए.

हिमालय में ऊंचाई है। समुद्र में गहराई है किंतु गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व में ऊंचाई एवं गहराई दोनों है। कितने भी नजदीक से उन्हें देखने की कोशिश क्यो न की जाय, उनकी ऊंचाई एवं गहराई को मापना अशक्य ही नहीं अपितु असंभव है।

'कितनी सौभाग्यशाली है मोकलसर की धरती, जहां यह-शतदल कमल खिला।

कितना महान् है मां रोहिणी का पुण्य कि गोद में ऐसा लाल मिला।

कृतपुण्य है वह आंगन, जहां इनका पलना झूला।

धन्य है वह लूंकड़ कुल जहां ऐसा दीपक जला।'

परम पूज्य, परम श्रद्धेय, महाप्रज्ञ, ज्योतिर्विद गुरुदेव श्री का जन्म वि. सं. 2016 में फाल्गुण शुक्ला 14 को हुआ था। आपके पिता का नाम पारसमल जी था। उस समय कौन जानता था कि सामान्य सा दीखने वाला यह बालक छोटी सी उम्र में ही सर्वतोमुखी प्रतिभा का धनी, एक महान् संयमी सन्त बनेगा। पिता के स्नेह का सबल तो बचपन में ही क्रूर कुदरत ने उनसे छीन लिया था। किन्तु मां के असीम प्यार एवं संस्कार ने अपने नन्हे-मुन्ने के हृदय के कण-कण को भर दिया। बस, ये ही संस्कार समय पाकर कार्यरूप में परिणत हुए।

नन्हा-सा पुत्र मीठालाल एवं नन्ही मुन्नी पुत्री विमला दोनों मां की आंखों के तारे, बड़े ही प्यारे एवं दुलारे थे। सजीव खिलौने से मां के मन को मुग्ध करते थे। किंतु पति वियोग की पीड़ा रह रहकर मां के दिल को कचोटती थी। अपने जीवन साथी के विछोह की वेदना उनके हृदय को गहराई तक झकझोरने के साथ उन्हे जीवन की नश्वरता, संसार की असारता एवं संबंधो की विचित्रता का बोध कराती थी और बार-बार इन सबसे मुक्त होने को प्रेरित करती थी। बच्चों की भावना को देखा-परखा, सोचा-समझा एवं निर्णय लिया कि क्यों न अपनी कुक्षि के अनमोल रत्नों को स्वयं के साथ परमात्मा के शासन को समर्पित कर अपने मातृत्व को सफल एवं सार्थक बना लूँ। बस, मां की प्रबल भावना एवं प्रदत्त संस्कारों ने भाई-बहन की होनहार जोड़ी को सुयोग्य गुरुओं का सुयोग दिया।

भ्राता ने प. पू. प्रज्ञापुरुष युगप्रभावक आचार्य देव श्री जिन कांतिसागर सूरीश्वर जी म. सा. की तथा माता-पुत्री ने प. पू. आगम ज्योति प्रवर्तिनी जी श्री प्रमोद श्री जी म. सा. की पावन निश्रा प्राप्त की। गुरुजनों के सान्निध्य में लगभग एक साल तक सतत धार्मिक अध्ययन एवं संयम जीवन का कठोर अभ्यास किया। अंत में आपने 13 वर्ष की अल्पायु में प. पू. गुरुदेव के चरणों में समर्पित हो, मीठालाल से मुनि मणिप्रभसागर जी बने।

है। जिन्हे गाते गाते गायक भक्ति मे भूम उठते हैं। उनके गीतो मे परमात्मा के प्रति अटूट श्रद्धा, अपूर्व भक्ति एव पूर्ण समर्पण भाव टपकता है। सिनेमा की रागों मे भक्ति गीतो की रचना का लाभ यह है कि आज के लोग उन्हें आसानी से गा सकते हैं। दूसरा छोटे छोटे बच्चो के होठो पर जो पिक्चर के गाने रमते रहते हैं। उनका स्थान भजन ग्रहण कर लें। आपके गीत नवीन रागों म हान हुए भी गम्भीर रागो मे है। गाने वाला यदि अच्छी तरह गहरी राग से गाये तो आत्म विभार हो उठता हे।

आपके उपदेशक पद वैराग्योत्पादक हैं। आपके मुक्तक चिन्तन प्रधान धर्म भावना से ओत-प्रोत सामाजिक एव मानवीय कमजोरियो के प्रति गहरी चोट करते हैं।

आपकी प्रवचन शैली अनूठी है। नपे तुले शब्दो मे अपने भावो को गहराई से अभिव्यक्त करने की अद्भुत कला है आपमे। विषय की विवेचना मार्मिक हृदयस्पर्शी भावात्मक एव आत्म-स्पर्शी है। वाणी ओजस्वी है। कल कलकरती गगा की धारा की तरह बहने वाला प्रवचन प्रवाह, विषयाधार कभी कभी इतना जोशीला हो जाता है कि पू गुरुदेव की स्मृति ताजा कर देता है। अधिकाश तया आपके प्रवचन आत्म केन्द्रित होते हैं। बीच-बीच मे सामाजिक, व्यावहारिक एव पारिवारिक विषयों को भी छू लेते हैं किन्तु परिणति सभी विषयो की आत्माभिमुखी होती है। प्रवचन के बीच कहानियो का सामजस्य उनके प्रवचन के भावो को और अधिक स्पष्ट, प्रभावी एव सक्रिय बना देता है।

प्रवचन की सफलता श्रोता की तन्मयता म निहित है। श्रोता को एकाग्र बना देना वक्ता की वाणी का जादू है। कल-कल बहते झरने की तरह जब सरस्वती आपके होठो पर प्रस्फुटित होती है श्रोता उसकी फुहार पाकर झूम उठते हैं। आत्म विभोर हो जाते है।

शब्द सयोजन, वाक्य विन्यास सभी कुछ इतना उच्चकोटि का है कि कुल मिलाकर वातावरण बडा ही प्रभावोत्पादक बन जाता है। श्रोता के हृदय पर उसका इतना प्रभाव पडता है कि वह अन्दर ही अन्दर अपने को उस परिधि से, उस प्रभाव से बधा बधा महसूस करता है।

दीक्षा प्रतिष्ठा अजनशलाका-उपधान आदि के छोटे-बडे विधान धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। साधना के साथ-साथ मुनि जीवन मे इनका ज्ञान ही नही इनका गहरा ज्ञान होना अत्यावश्यक है। इन विधि विधानो को करते कराते पूज्य गुरुदेवश्री को आँखो देखा है और महसूस किया है कि आप विधि विधान के ममज्ञ है। इन विधि-विधानो को करने-कराने का आपका ढग बडा ही रुचिकर है।

पूज्य आचार्य गुरुदेव के दिवगत हो जाने के बाद सघ व शासन का उत्तरदायित्व जिस खूबी के साथ आपने निभाया ह उस पर हमे नाज है, बडा गर्व है। उनके कार्यकलापो से लगता है और भी कई अनकुरित क्षमतायें गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व मे निहित हैं आशा है वे योग्य अवसर पाकर अवश्यमेव अकुरित होकर फलेगी-फलेगी।

आपम एक अच्छे अनुशास्ता के सभी गुण मौजूद है। आपमे सचालन एव सयोजन की पर्याप्त शक्ति है। आप दृढ सकल्प के धनी हैं तो आत्मीय-जनो के प्रति विनम्र भी हैं। आपके व्यक्तित्व म कठोरता एव कोमलता दोनो हैं। बाहर से कठोर दीखने वाला व्यक्तित्व अन्दर से बडा ही स्निग्ध एव कोमल है कहा भी है—

> वज्रादपि कठोराणि, कोमलम् कुसुमादपि
> लोकोत्तराणा चेतासि को विज्ञातुमर्हति ॥

सुना है गुरु अपने सुयोग्य शिष्य म शक्ति पात करते हैं। तन्त्र मे जिसे शक्तिपात अथवा शक्ति सचार कहते हैं उसी को भक्ति और ज्ञान

हैं। एक व्यक्ति में इतनी विशेषतायें होना वे भी पराकाष्ठा की, यह पूर्व जन्म की महान् आराधना-साधना का ही प्रतिफल है।

आपका चिंतन स्पष्ट, तर्कसंगत एवं विवेक-पूर्ण है। आप कल्पनाशील हैं, किन्तु आपकी कल्पनायें यथार्थ के धरातल पर होने से ठोस है, जीवनोपयोगी है। आपका चिन्तन आत्मकेन्द्रित है, सत्यप्रधान है। उसमें मत-पंथ-सम्प्रदाय का कोई अवरोध नहीं है। वे अन्तःकरण से सदा सत्य को समर्पित हैं। आपका चिंतन पैना है, शब्द के कलेवर को भेदकर, भावों की गहराई में पहुँचकर वह तथ्य को ग्रहण करता है।

आपकी ग्रहण शक्ति एवं धारणा शक्ति बड़ी तेज है। किसी व्यक्ति या चीज को एक बार देखने के बाद कभी भूलेंगे नहीं। देखते ही पहिचान लेंगे। यही कारण है कि अल्प समय में ही आपश्री व्याकरण, साहित्य-न्याय-दर्शन एवं आगम का गम्भीर तलस्पर्शी अध्ययन कर सके। आप अच्छे ज्योतिषविद् हैं। साधु-जीवन में ज्योतिष-ज्ञान भी आवश्यक है। इससे शुभ-अशुभ ग्रहों के प्रभाव से व्यक्ति अपने को सजग कर लेता है। अवसर का लाभ उठाकर संघ व शासन हित में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है। समय आने पर अपने ज्ञान द्वारा विशिष्ट-पुरुषों को प्रभावित कर अपने धर्म व शासन को विपत्तियों से बचा सकता है, शासन प्रभावना कर सकता है। अंत में अपनी आयु का पता लगाकर विशिष्ट आराधना द्वारा सद्गति का भागी बन सकता है। मुहूर्त ज्ञान भी दीक्षा-प्रतिष्ठादि के लिये आवश्यक है।

आगमिक अध्ययन के प्रति आपकी विशेष रुचि है। आपका आगमिक अध्ययन तलस्पर्शी है। [illegible] अध्ययन के द्वारा आगमों के गम्भीर रहस्यों को [illegible] [illegible] विश्लेषण [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

आपके चिन्तन की झलक आपके लेखन में स्पष्ट परिलक्षित होती है। लेख, कहानियाँ मुक्तक, राग या भजन के रूप में जो कुछ लिखा है, पठनीय है। समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में आपके छोटे-छोटे लेख प्रकाशित होते रहते हैं, विचारों दृष्टि से ये बड़े महत्त्वपूर्ण होते हैं। विषय की दृष्टि से स्पष्ट, तर्कसंगत एवं जीवनोपयोगी चिन्तन होता है उनमें साल भर पहले राजस्थान पत्रिका में एक छोटा सा लेख निकला था उनका— 'दुख को आमन्त्रण क्यों दें?' वास्तव में वह लेख दिखने में छोटा था किन्तु उसके भाव बड़े गंभीर थे। हमें कोई दुखी नहीं करता, हमारे स्वयं के अविवेकपूर्ण विचार, दुर्वृत्तियाँ एवं गलत प्रवृत्तियाँ ही हमें दुखी करती हैं। कितना स्पष्ट, सीधा एवं सचोट चिन्तन है यह। सैकड़ों लोगों ने इस लघु लेख को सराहा था दीपावली पर इसी पत्रिका में उनका लघुकाय लेख था 'दीप जले अन्तरतम के।' उसमें यही प्रेरणा दी कि जीवनगत बुराइयाँ, स्वार्थ, अविवेक भ्रष्टाचार, द्वेष के अंधकार को नष्ट कर, भीतर में मानवीय सद्गुणों के दीये जलाना ही सच्ची दीवाली होगी। उपयोगी दीवाली होगी। इस प्रकार छोटे किन्तु मार्मिक विचार बिन्दु करोड़ों के जीवन को मोड़ देते हैं। उनके द्वारा लिखी गई कहानियाँ भी बड़ी रोचक एवं प्रेरक हैं। कथा के साथ जुड़ा उपदेश की सुगमता से जीवन की दिशा बदलने की क्षमता रखता है। 'गुरुदेव की कहानियाँ' आपका छोटा सा कथा-संग्रह है।

संवेदनशील व्यक्ति ही कवि बन सकता है। संवेदना के बिना कल्पनायें उभर नहीं सकतीं। म. गुरुदेव भी संवेदनशील कवि हैं। उनकी कल्पनायें बड़ी उर्वर हैं। उनका एक-एक भाव [illegible] हृदय को छू जाता है। आपकी कवित्व शक्ति [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

आपके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

योग में 'अनुग्रह' कहते हैं। समर्थ गुरु दृष्टि, शब्द, स्पर्श अथवा संकलन इन चार प्रकारों में से किसी एक प्रकार द्वारा शक्तिपात करते हैं। इससे शिष्य साधना के क्षेत्र में आत्म-निर्भर हो जाता है लगता है पूज्य आचार्य गुरुदेव का आपश्री को पूर्ण अनुग्रह प्राप्त है।

आपकी इन्हीं सब क्षमताओं एवं योग्यताओं को देखते हुए वर्तमान गच्छाधिपति प. पू. आचार्य देवश्री जिन उदयसागरसूरीश्वर जी म. सा. ने आपको गणिपद से विभूषित करने की अनुमति प्रदान की। वि. सं. 2045 की जेठ सुद प्रथम दसमी को आप गणिपद से विभूषित किये गये। पादरु संघ बड़ा ही सौभाग्यशाली है कि आपको महान् पद देने का गौरव उसे प्राप्त हुआ। कहा जाता है कि आपको गणिपद से सुशोभित किया गया किन्तु मेरी धारणा इससे बिल्कुल विपरीत है। मेरा मानना है कि आप जैसे सुयोग्य व्यक्तित्व को पाकर गणिपद सुशोभित हुआ। गणिपद की गरिमा बढ़ी।

बीकानेर की धर्मधरा पर श्रीयुत् नेमचन्द खजाची द्वारा आयोजित उपधान-तप उन्हीं गरिमामय गणिश्री की निश्रा में सम्पन्न हो रहा है। उपधान-तप के अन्तर्गत साधना-आराधना एवं ज्ञानोपासना का जो क्रम चल रहा है, वह सदा अविस्मरणीय रहेगा।

यह निष्कंप दीप युगों-युगों तक इसी प्रकार अपना प्रकाश फैलाता रहे यही मंगल-कामना।

चिरंजीव, चिरं नन्द

बहुत अधिक बोलने से व्यर्थ और असत्य शब्द निकल जाते हैं इसलिये कर्मक्षेत्र में जितना कम बोलने से काम चले, उतना ही कम बोलना चाहिये।

□

क्रोध मनुष्य का बड़ा भारी वैरी है, लोभ अनन्त रोग है, सब प्राणियोंका हित करना साधुता है और निर्दयता ही असाधुता है।

उपधान–महिमा

□

भ सागर

(तज–तेरी सुमति नाथ जय हो)

वीर प्रभु भगवान् जय हो। तेरी जय हो, मेरी विजय हो ॥ टेर ॥

महानिशीथ सूत्र फरमाया, प्रभुवर ने अमृत बरसाया।
निर्देशन उपधान ॥ 1 ॥

योग देशविरति का उत्तम, नवकारादिक का सर्वोत्तम।
तप उपधान महान ॥ 2 ॥

शुद्ध क्रिया सुविशुद्ध बनावे, अतर चेतन दीप जलावे।
हो उद्योत वितान ॥ 3 ॥

उपधाने हो आत्म रमणता, दूर भगे सब दोष कुटिलता।
निज चेतन पहिचान ॥ 4 ॥

गुरुवर पासे धारण करना, कर उपधान भवोदधि तरना।
तपस्या है गुणखान ॥ 5 ॥

अधिकारी श्रावक बनता है, चेतन पावनता वरता है।
पावे केवल ज्ञान ॥ 6 ॥

दादा वाडी ठाट लगा है रोग शोक सब दूर भगा है।
आनद परमोल्लास जगा है मालपुरा शुभ स्थान ॥ 7 ॥

सोभागमलजी टोंक निवासी, लोढा गोत्री हैं मृदुभाषी।
क्रिया कराया उपधान ॥ 8 ॥

कुशल गुरुवर की है छाया, आनद मगल यश बरताया।
मणि करे गुणगान ॥ 9 ॥

जय गुरु जय गुरु मणिप्रभ प्यारे

मुक्तिप्रभ, मनीषप्रभ

जय गुरु जय गुरु मणि प्रभ प्यारे।
तारण हारे गच्छ सितारे॥
मोकलसर में जन्म तुम्हारा।
फाल्गुन सुद चौदस दिन प्यारा।
संवत् सोलह दोय हजारे॥ 1 ॥
पारसमलजी नूं कड़ प्यारे।
माता रोहिणी के हैं दुलारे।
आज बने जन जन के तारे॥ 2 ॥
गुरुवर हैं जिन कान्ति सूरीश्वर।
शिक्षा दीक्षा पाई अमर वर।
मिथ्यामत को दूर निवारे॥ 3 ॥
तेरह बरस की बाल उमर में।
रजोहरण ले लीना कर में।
नाम मणि प्रभ सागर धारे॥ 4 ॥
गुरुवर की है मीठी वाणी।
अनुपम रत्नों के गुणखाणी।
हम सब के हैं मात्र सहारे॥ 5 ॥
अनुपम तेली क्रिया करवाते।
आराधक जन के मन भाते।
गुरुवर मणि प्रभ मोहन गारे॥ 6 ॥
नित नित गीत नवीन बनाते।
मंदिर दादा बाड़ी में गाते।
सेवा के है सेवन हारे॥ 7 ॥
मोहाजी उद्यान सजाने।
मालपुरा में ठाठ लगाने।
सदा बरसा [illegible] संवारे॥ 8 ॥
ज्ञानी ध्यानी निरभिमानी।
[illegible] श्री है यही निशानी।
मुक्ति मनीष करें जयकारे॥ 9 ॥

सेवाभावी उपरोक्त श्रावकों ने इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

उपधान की आराधना का स्थान चुना मालपुरा तीर्थ। मालपुरा तीर्थ प्रत्येक दृष्टि से साधना योग्य क्षेत्र है। स्थान की शांति और दादा गुरुदेव की असीम अनुकंपा उस क्षेत्र के कौने कौने से जैसे बरस रही है। नित्य प्रति शताधिक यात्री आकर दादा गुरुदेव के दर्शनो से अपने आपको भाग्यशाली महसूस करते हैं।

मालपुरा तीर्थ की प्रसिद्धि इस सत्य तथ्य से और भी अधिक विस्तृत हो जाती है कि तृतीय दादा श्री जिन कुशल सूरि का महाप्रयाण जब देराउर (पाकिस्तान) में हो गया। श्रद्धालु भक्तजन देराउर की यात्रा नही कर पाते थे। तब कुशल सूरि ने मालपुरा में एक भक्त का आशीर्वाद की मुद्रा मे दर्शन दिये। बस तब से आज तक हजारो ने उनका कृपा प्रसाद प्राप्त किया। बिना किसी गच्छ, पथ भेदभाव के दर्शनार्थी जाते हैं और अपनी मनोकामना पूर्ण करते हैं।

पूज्य महाराज श्री के चयन को सभी ने स्वीकार कर लिया। जयपुर में गुरु सप्तमी का समारोह उल्लासपूर्वक सपन्न हुआ और भावभीने वातावरण में गणिवर्य श्री ने विदा ली। वात्सल्य मूर्ति, सरलता की मिसाल गुरुवर्या श्री ने भीग स्वरो मे जयपुर चातुर्मास हेतु कृतज्ञता विशेष रूप से अभिव्यक्त की। स्मरण रहे इस चातुर्मास का लाभ गुरुवर्या श्री के अपरिहार्य आग्रह और निवेदन के फलस्वरूप ही जयपुर संघ को प्राप्त हुआ था।

ज्ञान प्रतिमा मातृहृदया पूज्या गुरुवर्या श्री के प्रति प्रारम्भ से ही गणिवर्य श्री का आदरभाव था। स्वयं ज्ञानपुंज होते हुए भी नियमित गणिवर्य श्री के प्रवचनो मे उपस्थित होना उनका सर्वोपरि कर्तव्य था। अहंभाव का रेशा भी उनके मानस मे प्रविष्ट नही हो सका था। चातुर्मास दौरान जब गणिवर्य श्री सौम्याजी को ज्योतिष का अध्ययन करवा रहे थे तो जिज्ञासु भाव से वहा उनकी उपस्थिति अवश्यभावी थी।

पूज्य गणिवर्य श्री का मन भी भारी हो रहा था क्योंकि गुरुवर्या श्री ने कहा भी कुछ इसी ढग से था। दादाबाडी में प्रात विदायी देते हुए उन्होंने याचना के स्वर मे कहा—संघ और गच्छ के क्षितिज मे आप अपने नाम के अनुरूप ही प्रकाश की किरणें फैंके। ये नेत्र तो दुबारा आपके दर्शन कर पायेंगे या नही परन्तु मेरी शुभकामनाएं पल प्रतिपल आप श्री के साथ है।

गणिवर्यश्री भारी मन से मालपुरा तीर्थ की ओर बढ चले। उपधान के अनुष्ठान को आध्यात्म की धारा से सराबोर करने के नये नये उन्मेष आपकी कल्पनाओ मे करवटें ले रहे थे। और मालपुरा का पूरा रास्ता इसी चिन्तन मे तय किया। कदम मंजिल तक पहुच गये। मन की अव्यक्त प्रसन्नता दादा गुरु के चरणो को पाकर फूट पडी। कल्पनाएं विभोर हो गई। समस्त रोम उल्लसित होकर नृत्य कर उठे।

अभी उपधान प्रारम्भ होने मे चार दिन शेष थे। उपधानपति सपरिवार व्यवस्था में जुटे हुए थे। व्यवस्थापक भी व्यवस्था में जुटे हुए थे।

आखिर वह घडी और पल भी पहुच गयी जिसका उपधानपति को, व्यवस्थापकों को, निश्रा दाता को इतजार था। वह सन् 1989 के दिसम्बर मास की पहली तारीख थी। सभी के मन मयूर प्रसन्नता से नाच रहे थे। आराधकों का मन इस कल्पना से ही थिरक रहा था कि कुछ समय के लिए ही सही उन्हे संयमी जीवन का अनुभव तो होगा। सामाजिक उत्तरदायित्वों से, पारिवारिक

आंखों देखा हाल

(उपधान तप के आयोजन का विस्तृत वर्णन)

□

साध्वी सम्यक्दर्शना श्री

पूज्य गणिवर्य श्री का चातुर्मास राजस्थान की राजधानी गुलाबी नगरी जयपुर में आराधना के साथ चल रहा था। अनेक-अनेक उस आध्यात्मिक गंगा में आप्लावित होकर अपने भीतर प्रसन्नता और अहोभाव का अनुभव कर रहे थे। साधना का क्रम जारी था। चातुर्मास की पूर्णाहुति में अभी काफी दिन थे कि एक दिन टोंक से स्वनाम धन्य गुरुभक्त, परम आत्मनिष्ठ अध्यात्मरसिक श्रीयुत् श्री सौभागमलजी लोढा का पधारना हुआ।

श्री सौभागमलजी लोढा अपने आपमें गहरे आत्मनिष्ठ धर्मरुचि संपन्न श्रावक हैं। वर्षों से उनके भीतर एक भावना करवटें ले रही थी कि श्रद्धा-निष्ठ, भावनाशील श्रावकों के लिए शास्त्रविहित उपधान तप की महत्वपूर्ण आराधना कराने का सौभाग्य प्राप्त करें। वे अवसर की टोह में थे।

श्री लोढाजी ने कुछ देर की बातचीत में ही जान लिया कि गणिवर्य श्री अल्पवयी अवश्य हैं पर शिक्षा, अनुभव और त्याग की दृष्टि से प्रौढ़ हैं। उन्होंने अपनी वर्षों की संजोयी हुई भावना को साकार करने का मन ही मन निर्णय ले लिया। निवेदन के रूप में उन्होंने प्रार्थना की कि—मैं चाहता हूँ कि आप मेरे सपने को साकार करने हेतु उपधान की सुदीर्घ आराधना की सान्निध्यता एवं निर्देशन प्रदान करें।

पूज्य गणिवर्य श्री एकाएक इस प्रस्ताव को सुनकर चमक उठे। साथ ही उनके मानस को आनंद की अनुभूति भी हुई कि आज के इस आपा-धापी और मशीनरी युग में भी ऐसे दानवीर और सेवाभावी श्रावक विद्यमान हैं जो स्वप्रेरणा से एक मुश्त इतनी बड़ी राशि खर्च करने में और साथ ही इतनी लम्बी अवधि के लिए समय का भोग देने हेतु तत्पर होते हैं। अन्यथा सामाजिक दायित्वों की पूर्ति हेतु संपूर्ण जीवन और संपूर्ण जीवन की उपज देने में तनिक भी हिचकिचाहट का अनुभव नहीं करते और वे ही देव, गुरु और धर्म की सेवा में अपना आंशिक योगदान देते हुए भी कतराते हैं।

लोढ़ाजी के दृढ़ संकल्प और परम पूज्य विचक्षण मंडल के प्रधानता श्री अविचल श्री जी म. सा. गुरुवर्या आशुकवयित्री प्रवर्तिनी जी श्री सज्जन श्री जी म. सा. एवं पूजनीया विदुषी आर्या श्री शशिप्रभा जी म. सा. के अत्याग्रह फलस्वरूप गणिवर्य श्री ने स्वीकृति प्रदान कर दी।

पूज्य गणिवर्य श्री ने व्यवस्था का भार बीकानेर के श्री पदमचन्द जी खजांची सुरजमलजी पुंगलिया आदि को सौंपना निश्चय किया क्योंकि उन्होंने बीकानेर उपधान की सारी व्यवस्था सुव्यव-स्था और तत्परता पूर्वक निभायी थी।

भी बढायेगी जबकि हम मुक्ति के निकट पहु चने का प्रयास करने आये है। हमे ससार घटाना है और मुक्ति के निकट पहु चना है।

अगर आप उपधान की क्रिया द्वारा ससार को घटायेंगे तो निश्चित ही सीमित दिनो म बहुत वडी उपलब्धि होगी। आराधना मगलमय बने, लक्ष्य सिद्धि मे सफल बने इस मगल आशीर्वाद के साथ उपधानवाहियो को अपनी आराधना मे सजग भी कर दिया था।

गणिवय श्री ने सभी क्रियार्थियो को स्नेह-भरी निगाहो से देखा। उनकी उत्कट अभिलाषा को परखा, उनके निर्मल भावो की अनुमोदना की और कुछ क्षणो के लिए आनदमग्न बन गये। पलकें स्वय मु द गयी, हाथ स्वय जुड गये। दादा गुरुदेव को अपनी स्मृतियो के झरोखे मे सजाकर कामना की कि ये सभी शारीरिक रूप से स्वस्थ आये हैं और जब यहा से जावे तब इनके मन वचन, काया तीनो का ही शुद्धिकरण हो।

अदश्य सत्ता को नमन कर व पुन यथाथ मे लौट आये। पलकें खुल गयी और देव, गुरु धम की साक्षी से उन्हें क्रिया करवानी प्रारम्भ की और ज्योंहि पौषध का पच्चक्खाण किया त्योंहि मन की विविध कल्पनाए थम गयी। अब उनमे चचल उडान की जगह आराधक की गभीरता आ गयी। वह गभीरता इन भावो के कारण कि कही हमसे अल्प भी विराधना न हो जाय। अब उन्ह एक एक कदम सभल कर चलना था।

प्रवेश विधि परिपूर्ण होने पर पूज्य श्री ने सभी आराधको का आलचना डायरिया दे दो ताकि उपधान की अवधि मे होने वाली अनजान भूलो को वे अकित कर सकें और उनका पुन प्रायश्चित्त ले सकें।

आराधना स्थल पर प्रवेश किया जो उस समय उत्सुक थे कि कितनी जल्दी हमे आराधक की भूमिका प्राप्त हो और जब पुन बाहर आये तब वे सामायिक चारित्र की गभीरता से ओतप्रोत थे। अब उन्हे प्रतिपल यह अहसास रहता था कि कही आराधक से हम विराधक न बन जाए।

मणो दूध भरे वर्तन में अगर जरा सा नीबू का रस डाल दिया जाय तो सारा दूध व्यर्थ हो जाता है। आराधना की भी यही स्थिति है। पूज्य महाराज श्री ने सभी को अच्छी तरह समझाया कि उन्हें किस समय क्या करना है? और यह भी समझा दिया कि अत्यन्त सौभाग्य से इतनी महत्त्व पूर्ण आराधना का मौका मिला है। कही यह मौका हाथो मे सरक न जाए।

क्रमश समय आगे सरकता रहा पर यह समय व्यर्थ नही जा रहा था। आराधक इस समय की मूल्यवत्ता को पहचान गये थे और सम्पूर्ण सार खीच रहे थे। हम समय को रोक पाने मे अक्षम हैं पर बीत रहे समय का हम ज्यादा से ज्यादा सही उपयोग तो कर सकते हैं और अगर सही उपयोग हो जाय तो यह एक तरह से समय पकडने का काम ही है।

दादा गुरुदेव की अदृश्य अनुकपा, गणिवय की पुनीत निश्रा, साध्वी मडल की स्नेहसिक्त क्रियाए आराधको को असीम सतुष्टि से भरती थी। दिन कब उगता और कब अस्त होता इस ओर तो आराधको को झाकने की भी फुर्सत नही थी। काम ज्यादा था और समय कम। उनका उल्लास तो इतना बढ रहा था कि वे सोचते-समय इतना जल्दी क्या दौड रहा है?

समय वही होता है पर उल्लास के क्षणो म हमें लगता है कि यह भाग रहा है और अव-साद के क्षणो मे लगता है कि यह रेंग रहा है।

समस्याओं से दूर रह कर मात्र आत्मा के समीप पहुंचने का प्रयास करने का उन्हे एक स्वर्णावसर उपलब्ध हो रहा था।

उपधानार्थी निश्चित कार्यक्रमानुसार मालपुरा तीर्थ के प्रांगण मे दादागुरु देव के चरणों मे पहुंच चुके थे। अनोखा तेज उनके चेहरे से टपक रहा था। अंग-अंग जैसे नृत्य कर रहा था। दूर सुदूर से अनेक श्रद्धालु पहुंच गये थे परन्तु निकटवर्ती जयपुर के लोगों का केसे आना एक समस्या बनी हुई थी क्योंकि जयपुर मे उसी दिन दंगे के कारण कर्फ्यु लग गया था। जो भाग्यशाली थे वे तो कर्फ्यु लगने से पहले ही जयपुर की सीमा छोड़ चुके थे। जो पहुंच गये थे उनमे उल्लास था और जो नही पहुंच पाये थे उनमे खिन्नता और उदासी थी। आराधकों को भेजने मे पूजनीया शशिप्रभा श्री जी म. सा. ने पूर्ण परिश्रम किया था।

उपधान की पूर्व सन्ध्या को ही विधिविधान पूर्वक उपधान मे प्रवेश करवा दिया गया। इस उपधान की यह अपूर्व विशिष्टता थी कि उपधानपति स्वयं सपत्नीक इस आराधना मे जुड़ रहे थे। सभी के उल्लास की कोई सीमा नही थी। उपधान करवाना यह भी अपने आप मे एक अपूर्व अवसर होता है तो उपधानपति स्वयं अगर इस अनुष्ठान मे जुड़ जाय तो उसकी शोभा मे निश्चित ही चार चांद लग जाते है।

सुनने वालों के आश्चर्य की कोई सीमा नही थी। उल्लास तो स्वाभाविक था परन्तु आश्चर्य उससे ज्यादा था। उपधानपति स्वयं बैठेंगे तो क्या आराधक एवं आयोजक दोनों की भूमिका बखूबी निभा सकेंगे? क्या मन का इतना संतुलन रख पायेंगे कि व्यवस्था की चिन्ता से हटकर आराधना का आनन्द उठा सकें?

परन्तु उपधानपति [illegible] गुणों के सरल और मधुर भावों पर समर्पित उपधानवाहियों हाथ-कर प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर बढ़ चले।

आराधना का प्रथम दिन था। सभी ने भोर होने से पहले ही अपनी नित्यक्रियाएं सम्पन्न की एवं अपने-अपने उपकरण व्यवस्थित करके उस समय का इन्तजार करने लगे जब प्रथम दिन की प्रथम क्रिया उन्हें करनी थी। मानसिक भावों में उल्लास था और साथ ही प्रथम उपधानवाहियों के मन में तो विभिन्न कल्पनाएं अंगड़ाइयां ले रही थीं।

आखिर इन्तजार की घड़ियां भी व्यतीत हुई। घड़ी की सुइयां वांछित समय पर पहुंच गयी। सभी आंखें आयोजन स्थल पर ही गड़ी हुई थी। पाण्डाल खचाखच भरा था। पूज्य गणिवर्य श्री समय से पूर्व ही वहां पधार गये थे क्योंकि उन्हे तो सारी व्यवस्था पर अपनी पैनी नजर रखनी ही थी।

विषय वासना का रस तो आत्मा अनादि काल से लेती आ रही है पर संयम का आनन्द इसे कभी-कभी प्राप्त हो पाया है और कई बार तो संयम भी मात्र आडंबर ही बनकर रह गया है। बाहर और अन्दर तो संयम कम ही घटित हुआ है। पूज्य गणिवर्य श्री ने उपधान प्रवेश की पूर्व सन्ध्या को ही अपने प्रेरक उद्बोधन मे यह स्पष्ट कर दिया था कि अब हमें बाहर-अन्दर दोनों से संयममय बन जाना है। भोग हमने खूब भोगे परन्तु परम पूज्य से योग का सुनहरा मौका पाया है और इस सुनहरे मौके को खोना नही है।

गृहस्थ की भूमिका से उठाकर मुनित्व की भूमिका मे प्रवेश करना है। आप कायिक रूप से तो 51 दिन के लिए गृहत्याग कर आये है पर यह त्याग मात्र कायिक ही नही रहना चाहिए। मानसिक और वाचिक भी होना चाहिए तभी आराधना सम्यक् सफल और श्रेष्ठ बन पायेगी।

गृहस्थ जीवन की स्मृति मात्र भी तुम्हारी आराधना को दूषित करेगी और साथ ही सफल

आत्मा मे आनन्द का भरना बहा सकती है। एक ऐसा झरना जिसमे कर्मों का कचरा बह जाय।

खमासमणे समाप्त होते तक तब एकासण का समय हो जाता। एकासणा भी गणिवर्य श्री अपनी देखरेख मे करवाते। किसे, क्या, कितनी मात्रा मे लेना है इस पर गणिवर्य श्री अपना पूरा ध्यान रखते। कार्यकर्त्ताओ की दौडधूप अवर्णनीय थी। वे तो जैसे अपना होश ही भूल गये थे तो घर की चिन्ता का तो प्रश्न ही कहा था? उन्हे मात्र एक ही बात का होश था कि कही कोई कमी न रह जाय। तपस्वियो की जरा सी परेशानी उन्हें बैचेन बना देती थी। बस प्रतिपल उनका ध्यान तपस्वियो की व्यवस्था की ओर लगा रहता था। कभी कार्यकर्त्ता एकमत और सुन थ अत उपधान व्यवस्थित चल रहा था।

पुज्य गणिवर्य श्री स्वय भी नित्य प्रति एकासणे करते थे। सभी तपस्वियो का एकासणा करवाकर बाद मे स्वय एकासणा करते। दिन रात गहरा परिश्रम होने के बावजूद गणिवर्य श्री को किसी भूल पर भी चलाते हुए किसी ने शायद ही देखा हो। सहिष्णुता ता जैसे उनका जन्मजात गुण है।

जिस दिन एकासणा नही होता था उस दिन जाप स्वाध्याय मे तपस्वी लग जाते। सध्या को पुन प्रतिलेखना, प्रतिक्रमण स्वाध्याय और आत्मचिन्तन करत करत सथारापूर्वक लगभग 10 बजे तक शयन।

हा एक महत्त्वपूर्ण बात तो रह ही गयी। मालपुरा की शाति सभी के दिलो म एसी गहराई स जम गयी कि एक और नया अध्याय जुड गया।

पूज्य महाराज श्री ने आदेश फरमाया कि हमारा सारा समय अध्यात्म से ओतप्रोत हो। वातावरण मे भी अध्यात्म की अनुगूज होनी चाहिए। दिन रात आठो प्रहर नमस्कार महामत्र धुन प्रारम्भ रहनी चाहिए और इसमे आगतुक दर्शनार्थी भी भाग लेंगे परन्तु उपधानआहियों की खास जवाबदारी है। दिन मे बहिनें सभालेंगी और रात्रि को पुरुष।

बहिनो ने बडी प्रसन्नता से यह उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया। पुरुष वग पीछे कैसे रहना वे तो बहिनो स भी आगे थे। अब ता सारा माहौल मत्रमय बन गया था। ऐसा लगता था कि वास्तव में ससार विसर्जन हो रहा है। सारी दुनिया हमारे लिए तो मालपुरा मे ही सिमट गयी थी।

धुन से वातावरण की पवित्रता में चार चाद लग गये। सभी बहिने-पुरुष अप्रमत्त भाव से उत्साहपूर्वक भाग लेन लगे।

इतना क्रिया विधिविधान होत हुए भी महाराज श्री पूर्णतया सतुष्ट नहीं थे। उन्हें अधूरेपन का अहसास होता रहता। उनके दिल मे एक अव्यक्त बैचेनी थी और अचानक विचारो के सागर म गोते लगाते लगाते उन्होंने समाधान ढूढ ही लिया।

एक दिन प्रात ही उन्होने एक सवथा अछूता निर्णय लिया। सभी तपस्वी चौंक उठे पर चूकि वे अनुशासित और समर्पित थे। 51 दिन के लिए वे पूर्ण समर्पित थे। उन्हें तो वही करना था जो उन्हें निर्देश दिया जाता। वह अनुष्ठान था स्वय के द्वारा स्वय की प्रेक्षा।

हमने आज तक हजारो क्या लाखो से परिचय किया है परतु वह परिचय बाह्य ससार का है। दुनिया के सम्बन्ध मे हम जानते हैं परन्तु स्वय से स्वय अनजान हैं। कैसी घोर विडबना है हमारी

पूज्य गणिवर्य श्री इतनी आध्यात्मिक खुराक देते थे कि सुस्ती पास ही नहीं फटक रही थी।

ज्ञान और क्रिया का अपूर्व संगम था। मुझे उपधान के प्रथम दिन ही पूज्य गणिवर्य श्री का आदेश मिला कि तुम्हें तीन का टंकोर लगते ही हाथ में डंडासन लिए एक-एक कमरे में जाकर बहिनों को उठाना है और उन्हें अपने ही कमरे में 100 लोगस्स का काउसग्ग करवाना है। मैंने इस आदेश में छिपे उनके गहरे वात्सल्य को देखा और यह सोचकर अभिभूत हो उठी कि परम भाग्यशाली हैं ये उपधानवाही जिन्हें इतना व्यवस्थित संरक्षण मिला है। इस व्यवस्था का कारण था कि तप से कृश बनते जा रहे ये तपस्वी अगर इस ठिठुरती और खून को जाम करने वाली सर्दी में यहां आकर बैठेंगे तो इन्हें कष्ट होगा। शारीरिक बीमारी मानस को भी आकुल बना सकती है। तपस्वियों को किसी प्रकार की परेशानी न हो इसके लिए यह सर्वोत्तम व्यवस्था थी।

नियमित तीन बजे उठाने जाना असंभव तो नहीं कठिन अवश्य था परन्तु महाराज श्री के आदेश की आंशिक अवमानना तो दूर, ना नुकुर भी संभव नहीं था। मैंने तुरन्त इस आदेश को सिर झुकाकर स्वीकार कर लिया।

आज स्वयं मुझे भी उस घटना की स्मृति मात्र से ही रोमांच हो जाता है। यही बात जब मैंने अपनी बहिन गुरुणी सखी पं. श्री विपुलप्रभा श्री जी म. सा. को बताई तब सुनते ही उन्होंने कहा— विश्वास नहीं होता कि आप इतनी सर्दी में तीन बजे उठकर बाहर गये होंगे परन्तु सत्य यही था।

वातावरण सारा स्पंदित हो चला था। माहौल एकदम शांत और उसमें भी मालपुरा का एकांत रमणीय प्रवेश तपस्वियों की आराधना में सहायक बन रहा था। कोई आवाज नहीं। कोई बाधा नहीं। जिधर देखो उधर सारा वातावरण आराधना की खुशबू से महक रहा था। कल्पना उन दिनों तो सभी की यही थी कि ऐसा वातावरण तो संपूर्ण जीवन के लिए मिल जाए तो परम तृप्ति हो जाए।

प्रातः लगभग 3 बजे उठना, 100 लोगस्स का काउसग्ग, प्रतिक्रमण, पडिलेहण और उसके बाद पहुंच जाते गुरुदेव के चरणों में प्रातः की क्रिया करने।

गुरुदेव श्री विद्वत्ता में जितने प्रौढ़ हैं स्व-भाव से उतने ही सरल, सहज, सौम्य और विनम्र हैं। उनकी एक ही निश्छल और निर्दोष मुस्कान आराधकों की सारी सुस्ती दूर कर देती। तत्पश्चात् चतुर्विध संघ के साथ परमात्मा के दर्शन, 100 प्रदक्षिणा, प्रवचन, श्रवण 30घाटा पोरिसी के समय मुंहपत्ति की प्रतिलेखना, देववंदन और फिर प्रारम्भ हो जाते 100 खमासमणे। 100 बार खड़े होना और 100 बार साष्टांग नमन! बड़ी थकान भरी यह प्रक्रिया है परन्तु तपस्वियों को थकान का अनु-भव हो जाए, यह तो क्रियाकारक की सफलता पर प्रश्न चिन्ह है।

[illegible] भरी क्रिया में प्रसन्नता प्रफुल्लता ढूंढ़ना महाराज श्री की विशेषता है। उन्हें तप-स्वियों के मनोभावों का अनुमान था। अतः वे 25 खमासमणे होते ही रुकते और उपधान की क्रियाओं का रहस्य समझाते। हम जिन क्रियाओं को निर-र्थक समझकर मात्र करते हैं, वे कितनी रहस्यभरी हैं।

तपस्वी आत्मसंयमित थे। उन्हें समता शिक्षा के साथ शारीरिक श्रम समझाते थे यह क्रिया अगर ज्ञान और विवेक से की जाए तो वही क्रिया

पूज्य गणिवर्य श्री क्रिया करवा रहे थे। उन्हे ज्योंहि यह दु खद समाचार मिले स्तब्ध रह गये वे तो और उनकी कल्पनाए पलक झपकते ही चातुर्मास विदाई के दृश्य म पहुच गयी। उन्होंने जो कहा था—वह सत्य हो गया था। उपधान तपस्वी भी व्यथित हो गए। अगर एक काच का हीरा खो जाय तो भी हम परेशान हो जाते हैं यह तो जैन जगत् का जाज्वल्यमान जीता जागता हीरा था।

शोकसभा का आयोजन हुआ। सभी वक्ताओ ने सरलता और ज्ञान की तेजस्वी मूर्ति के चरणो म भाव सुमन समर्पित किये। दिवगत आत्मा की अखण्ड शान्ति हेतु प्रार्थना की गयी।

मेरे मन की शान्ति और स्थिरता गुरुवर्या श्री के देह विसर्जन के दु खद क्षणो म विचलित हो गयी थी परन्तु सहन तो करना ही था। गुरुवर्या श्री से वर्षों तक जो प्रशिक्षण लिया था उसकी कसौटी ऐसे समय म ही तो होनी थी। गणिवर्य श्री की आत्मीयता ने मुझे सभलने मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। अपनी पीडा को छिपाकर मैंने अपने आपको व्यवस्थित किया और अपने कर्त्तव्यो के प्रति पूर्णतया सजग बन गयी।

लाढाजी के अत्याग्रह से एव गणिवर्य श्री के आदेशानुसार ज्येष्ठ भगिनी श्री प्रियदर्शना श्री जी म सा भी कुछ समय बाद पधार गय। उन्हे देखते ही भीतर की पीडा द्रवीभूत बनकर फट पडी। यद्यपि सज्जन मडल की प्रमुखा मातृवत् निर्देशिका श्री शशिप्रभा श्री जी म सा खुद पधारने वाले थे पर उनका आप्रेशन कुछ समय पहले ही हुआ था। अत वे स्वय न पधार कर प्रियदर्शना श्री जी आदि ठाणो को भेजा था।

माला परिधान के दिन निकट आते जा रहे थे। चारो ओर वातावरण मे एक सनसनी थी। आराधक और भी ज्यादा आराधना म तल्लीन हो रहे थे। अत यहा का शात सुरम्य वातावरण आराधको के मानस पर एक अमिट छाप अकित कर चुका था। सभी को अपने घर जैसा ही अपनापन व आत्मीयता प्राप्त हो रही थी। सन्ध्या को नित्य ही श्री सुशील जी लाढा आदि का व्यक्तिगत तौर पर कुशल क्षेम पूछना करना निश्चित कार्यक्रम म शुमार था।

पूज्य गणिवर्य श्री उपधानी भाई बहिनो को उनका उत्तरदायित्व समझाते।

माला परिधान पूर्व उपधानी भाई बहिनो का एव साधना म सहयोगी साधु साध्वी वृन्द का गणिवर्य श्री ने अपनी विशिष्ट शैली म इन्टरव्यु भी लिया।

सर्वप्रथम इन्टरव्यु था मोहिनी देवी छाजेड बाडमेर वाला का अपनी बाडमेरी भाषा म।

गुरुदेव ने पूछा, 'बाडमेर सु थे अकेला हा थाने अकेलापन री अकुलाहट हुई कानी ?'

मुस्कुराते हुए उन्होने कहा, आपरा इतरा गहरा वात्सल्य भाव होता छता मैं अकेली थी ही कद ? मैं तो मात आपरो सहारो लेकर चली थी और म्हारा विश्वास अखड रहया इणरो मने गौरव है और ए आराधक, ए व्यवस्थापक सभी तो म्हारा है। मारी इन उपधानपति लाढाजी को देखने आ भावना वे है कि मैं भी कदी एडो अत्युत्तम आराधना करवारो सौभाग्य प्राप्त करू ।

उपधानपति से राष्ट्र भाषा मे पूछा, "आपने उपधानपति और उपधानवाही दोनो भूमिका एव साथ निभायी है। क्या कभी व्यवस्था को लेकर आपकी आराधना म विघ्न नही पडा ? आपने इतना सन्तुलन कैसे स्थापित किया ?'

जानकारी की। क्रिया हम खूब करते हैं परन्तु क्रिया का परिणाम आंशिक ही मिल पाता है क्योंकि क्रिया में हमारा मन एकाग्र ही नही बना। शरीर अवश्य अनुष्ठान से जुड़ता है परन्तु मन और विचार वे तो जैसे स्वच्छन्द विचरण करते हैं।

प्रेक्षा नही करते और उसीका यह परिणाम है कि आज वर्षो से धार्मिक अनुष्ठान से जुड़े हैं फिर भी अगर कोई कसौटी पर हमारी क्रिया को कसना चाहे तो खरी उतर नही पायेगी।

पूज्य महाराज श्री ने सभी को सहज भाषा मे "प्रेक्षा क्या है और कैसे होती है" समझाया और सामूहिक रूप से ध्यान का प्रशिक्षण दिया।

मै प्रतिदिन उपधानवाही भाई-बहिनो के चेहरो को सावधानी पूर्वक टटोलती। उनके शरीर की कृशता अवश्य बढ़ रही थी। परन्तु चेहरे का तेज तो वह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। उनकी प्रसन्नता, उनका उल्लास, जैसे रोम-रोम से टपक रहा था। उस प्रसन्नता को इस जड़ लेखनी से लिखना संभव नहीं है।

आराधना क्रमशः आगे बढ़ती रही। तपश्चर्या से तपस्वियों के शरीर कृशकाय अवश्य नजर आ रहे थे परन्तु उनका आत्मविश्वास, उनके चेहरे की तेजस्विता, नयनों की निर्मलता दिन प्रतिदिन और अधिक प्रबल बनती जा रही थी। समय किधर व्यतीत हो रहा था, आराधकों को इसका कोई होश नही था। बस उनका तो एक मात्र लक्ष्य था कि जिस उद्देश्य से वे यहां आये है, उसमें कहीं चूक न हो।

गणिवर्य श्री का प्रेरक उद्बोधन नियमित आराधकों को मिल रहा था। अगर जरा भी चेहरे पर परिवर्तन देखते तुरन्त मुस्कराते हुए कहते—अरे! काया को खूब खिलाया, पिलाया आज तक इसकी आकांक्षा को पूरा किया। खूब इसमें माल पानी डाला है। कम से कम उसका आंशिक लाभ तो उठाओ। जब हमने इसको आज तक मनाया है तो क्या शरीर हमें अर्थात् हमारी चेतना को नही मनायेगा? यह सुनते ही सभी पूर्ण उत्साह और चुस्ती से भर उठते।

वाचना मे बारह व्रत का विवेचन और तत्-पश्चात् पैंतीस बोल की व्यवस्था चलती। पैंतीस बोल जैसे पूर्ण आध्यात्मिक विवेचन में सभी को इतनी जिज्ञासा पैदा हुई कि चारों ओर से उस पुस्तक की माग उठने लगी। जो धर्म और धर्म-स्थान से सर्वथा नये जुड़े थे उन्हे भी इस अनुष्ठान से जुडने के पश्चात् अहसास होने लगा कि वास्तव मे आज तक धर्म को ढकोसला मानकर दूर रखा पर वह कितना महत्त्वपूर्ण है।

इस बीच मौन एकादशी की संध्या और वह सन्ध्या एक कहर बन मुझ पर टूट पड़ी। सारी आकांक्षा, सारे अरमान जीवन का सारा आनन्द जिसे केन्द्र मानकर समर्पित किया था वह श्रद्धा और आस्था की साक्षात् मूर्ति मौन बन गयी थी। पूज्य गणिवर्य श्री सन्ध्या की क्रिया करवा रहे थे और इतने में टेलीफोन की घंटी बजी। मुझे क्या मालुम था कि यह घण्टी मेरे जीवन मे एक ऐसा घाव देगी जो बीतने वक्त के साथ भरने के स्थान पर नासूर बनकर जब तक जिन्दा रहूंगा। ऑफिस में बैठे किसी ने चोगा उठाया और सुनते ही चिल्ला पड़ा, "क्या हुआ? प्रवर्तनीजी म. सा...?" बस यह सुनते ही मन्दिर की दहलीज पर खड़े मेरे पांवो मे जैसे जड़ लग गये। मुझे लगा मेरी धड़कनें बन्द हो रही हैं। हाथ पांव एकदम शिथिल हो गये। सारी शक्ति एक ही पल में निचुड़ गयी। हतप्रभ रह गयी थी मैं। [illegible] आंखों से बहती रही पर उन आंसुओं को पोंछने वाली ममतामयी मां तो हमेशा-हमेशा के लिए विदा हो चुकी थी।

सकते थे जब तक कार्यक्रम के समाप्ति की घोषणा नही होती। अपने क्षेत्र में व्यवस्था का उत्तर-दायित्व फिर भी सहजतया संभव है पर बाहर और वह भी तीर्थ क्षेत्र मे । यद्यपि व्यवस्थापक अपनी कार्यक्षमता से आशान्वित थे परन्तु उनमें अतिविश्वास भी नही था।

माल्यार्पण के एक दिन पूर्व प्रातः व्याख्यान के समय श्री लोढाजी के अभिनन्दन का कार्यक्रम रखा गया। जयपुर, केकडी टोंक बीकानेर माल-पुरा इत्यादि विभिन्न संघो के प्रतिनिधियों ने उपधानपति एवं उनकी धर्मपत्नी शांतादेवी का भावभीना स्वागत किया। उपधानपति एवं उनकी धर्मपत्नी ने विनम्रता के साथ उनके अभिनन्दन को स्वीकार किया।

दोपहर जलयात्रा का वरघोडा था। जिस मोक्षमाला को पहनने के लिए 51 दिन लगातार आराधना की थी कडा परिश्रम किया था उस मोक्षमाला के साथ विभिन्न द्रव्यों को लेकर वस्त्रा भूषणों से सुसज्जित गम्भीर चाल से उपधानवाही चल रहे थे। वरघोडे की शानदार शोभा देखते ही बनती थी। मालपुरा आज जैसे इन्द्रपुरी बना हुआ था। विभिन्न शहरों से उपधान आराधकों के परि-वार दौड लगा रहे थे मालपुरा की ओर। सभी का नयनतारा मालपुरा बना हुआ था। हजारो लोगो की उपस्थिति के कारण मालपुरा का कोना-कोना जगमगा रहा था। इतनी विराट जनमेदिनी होते हुए भी व्यवस्थापकों की कुशलता और कर्म ठता के कारण कही भी अव्यवस्था नही थी। पंक्तिबद्ध जनता जुलूस की शोभा को शतगुणी कर रही थी। आखें फाड फाडकर मालपुरा की जनता इस मन मोहक दृश्य को अपनी आखो के माध्यम से हृदय मे अंकित करती जा रही थी।

शहर के मुख्य मुख्य मार्गों पर होता हुआ दर्शन करता हुआ जुलूस नियत स्थान पर पहुंच कर विसर्जित हो गया। रात्रि मे माला की बोलियां बोली गयी। प्रथम बोली उपधानपति के खाते मे गयी।

आज माला परिधान का शुभ दिन था। आज तो सभी का उल्लास चरम सीमा पर था। प्रातः सूर्योदय की सूचना स्वरूप लालिमा भी अभी तक छायी नही थी। प्रकृति का तो नियमित समय पर ही अपनी क्रियाएं करनी होती है परन्तु उल्लास उमंग आनन्द की किरणें उसे तो प्रकृति का कोई भी बंधन नही बांध सकता। सभी प्रफु-ल्लित वदन पलक बिछाये उस क्षण का इन्तजार करने लगे जब उनकी वर्षों की मुराद पूरी होनी थी।

प्रातः सभी प्रतिक्रमण, प्रतिलेखना, वस्ति मशोधनादि क्रियाओं से निवृत्त हो पूज्य गुरुदेव श्री की सन्निध्यता मे पहुंच गये। पूज्य गणिवर्य श्री गंभीर मुखमुद्रा मे पाट पर आसीन थे। आज उपधान तपाराधना का अन्तिम दिन था। सभी कल्पना मात्र से भावुक हो उठे। पूज्य गुरुदेव श्री के आज विदाई संदेश को सुनकर बरबस सभी की आखे गीली हो गयी।

बारह व्रत का विवेचन प्रतिदिन चलता ही था। बारह व्रत की मार्मिक एवं कथानिक शैली ने सभी उपधानी भाई बहिनो को गहरा प्रभावित किया था। प्रवचन उपधान के दौरान नित्य निय-मित चलते थे। कभी कभी पूज्य गणिवर्य श्री के गुरुभ्राता मुनि श्री मनोज्ञ सागरजी म. सा. जो चातुर्मास बाद तुरन्त उग्र विहार कर पधार गये थे वे एवं कभी कभी गणिवर्य श्री के दाहिने हस्त, परम समर्पित श्री मुक्ति प्रभसागर जी म. सा. भी प्रवचन देते थे और उन प्रवचनों ने सभी के मन में आत्म विकास की एक प्रेरणा का शंखनाद किया था।

सभी ने दो दिन पूर्व ही अपनी अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार एक व्रत किसी ने दो और

उपधानपति ने सधी भाषा में कहा, "मैंने आराधना करते हुए कभी यह महसूस ही नहीं किया कि मैं उपाधनपति हूं। मुझे अपने परिवार और सुयोग्य पुत्रों व बीकानेर के कार्यकर्त्ताओं पर पूर्ण विश्वास था। यही विश्वास मेरी आराधना का निमित बना। मैंने आराधक का पूर्ण आनन्द प्राप्त किया।" कु. प्रतिभा बैराठी जो ग्रेजुएट है उससे भी पूछा कि—"तुम तो भौतिकवाद के रंग मे रंगी हो फिर उपधान जैसे पूर्ण आध्यात्मिक क्षेत्र से तुम्हारी रुची कैसे जुड़ी ?"

विनम्रता से उसने कहा—"हमें तो धर्म के प्रति रुचि थी ही नहीं। हम तो साधु साध्वीजी म. के पास जाने से भी कतराते थे परन्तु आपके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का ही यह प्रभाव था कि धर्म से जुड़े और आपके चुम्बकीय व्यक्तित्व ने हमें मालपुरा मे आराधना से जोड़ दिया।"

मेरा भी इन्टरव्यु हुआ। बड़ा अटपटा सवाल पूछा-"तुम रोजाना तीन बजे उठकर ठिठुरती सर्दी में सभी को उठाने जाते थे इसमे तुम्हारा अपना भी कोई स्वार्थ था कि मेरा कोई भक्त बनेगा अथवा शिष्या बनेगी ?" नम्रता से मैंने प्रत्युत्तर दिया—"न मेरा अन्तरंग कोई स्वार्थ था न भक्त और शिष्या का बाह्य स्वार्थ मात्र आज्ञा का पालन मेरी क्रिया का आधार था।" इसी प्रकार से अन्य सभी उपधानवाहियों के इन्टरव्यु लिए और इस आयोजन से सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई।

एक दिन अति महत्त्वपूर्ण क्रिया आयोजित की गई—पुद्गल वोसिराने की क्रिया। सर्वप्रथम उपधानवाहियों को इस प्रक्रिया से अवगत कराया कि यह क्या है ? इसमें जन्म-जन्मान्तर से जीवात्मा ने जिन अनेक पदार्थों से सम्बन्ध जोड़े हैं। आगम के अनुसार जब तक हम उन सभी से अपना सम्बन्ध विच्छेद के रूप में प्रत्याख्यान नहीं करते तब तक हमें उसका दोष लगता रहता है। अतः आवश्यक है कि हम भव आलोचक लें। आम भाषा मे इस नितांत आध्यात्मिक क्रिया की गहराई में तपस्वियों को गणिवर्य श्री ने उतारा और तपस्वी जैसे वे तो इसी प्रतीक्षा में थे कि उन्हें और कुछ उपलब्ध हो। सभी ने गणिवर्य श्री के निर्देशानुसार भव आलोचना ग्रहण की, पुद्गल वोसिराये।

माला समारोह से पहले जयपुर की वैराग्यवती बहनें सुश्री बेला एवं श्रीमती अनीता आयी जो जयपुर मे कुछ ही दिनों बाद गणिवर्य श्री के श्रीमुख से दीक्षा मंत्र पाकर हमारी मंडली की सदस्यता बनने वाली थी, उनका उपधानपति द्वारा भावभीना स्वागत किया गया।

माला समारोह का कार्यक्रम व्यवस्थित रूप से लिपिबद्ध हो चुका था। कब क्या करना है यह सारा उत्तरदायित्व अलग-अलग युवकों को सौंप दिया था। बीकानेर के श्रीयुत् पन्नालाल जी खजांची, सुरजमल जी पुंगलिया, चांदरतन जी, बंशीधर जी बोथरा, धनपत बाबू खजांची एवं लोढाजी के सुपुत्र श्री राजेन्द्र जी, विजयकुमार जी, अनिल जी, सुनील जी सपरिवार कार्यक्रम को सफल बनाने हेतु पूर्ण रूप से समर्पित हो चुके थे। इधर से उधर चारों तरफ एक ही गूंज, एक ही स्वर.. मालपुरा का उपधान अपने आप में एक सफलतम रहा है, उसी के अनुरूप माला व्यवस्था भी ऐतिहासिक होनी चाहिए। लोढाजी के सुपुत्रों की उपासना प्रशंसनीय ही नहीं अनुकरणीय भी थी। क्योंकि एक स्वर उनके कानों से टकराता कि अमुक चीज की आवश्यकता है, तुरन्त ही हाजिर।

सारे कार्यक्रम की रूपरेखा व्यवस्थित बन चुकी थी। आयोजक व लोढाजी की कार्यक्षमता [illegible] पर सम्पूर्ण विश्वास था। अतः वे निश्चिन्त थे परन्तु व्यवस्थापक [illegible]

लोढाजी ने अपना मस्तक गुरुदेव के चरणो में झुकाया जो उनके श्रद्धाभावो की अभिव्यक्ति एव स्वीकृति रूप था। उन्हे पूर्ण आत्मीयता से गणिवर्य श्री ने घोषणा पत्र थमाया। हर्षाश्रु से उनकी दाढी भीग रही थी। आज वे इस अत्युत्कृष्ट पद को पाकर खुशियो के आसु बहा रहे थे।

अब गुरुदेव ने स्वर परीक्षण किया। माला का समय आ पहुचा था। गम्भीर मुस्कान एव बोलती आखो से गुरुदेव ने एक क्षण के लिए माला परिधान हेतु उत्सुक तपस्वियो को देखा और खडे होने का निर्देश दिया।

पूज्य श्री ने माला मगवायी, विशिष्ट मन्त्रो से उसे अभिमन्त्रित किया। प्रथम माला पहनने वाले परम भाग्यशाली श्री लोढाजी का नाम पुकारा। नीची निगाह किये खुशी से कापते कदमो के साथ श्री सौभागमलजी आगे बढे। उन्हे माला पहनाने हेतु श्री राजेन्द्रकुमार जी भी आगे आये एव वह पल भी आ गया जब उन्होने देव गुरु धर्म की साक्षी से प्रथम मोक्षमाला का परिधान किया। भगवान महावीर के जय की उदघोषणा की गयी। दूसरी माला थी श्रीमती मोहनी देवी छाजड की। माला अभिमन्त्रित हुई नाम पुकारा गया। उन्हे माला पहनाने वाले थे भाग्यशाली बधु श्री मोहन लाल जी बडेरा। दोनो भाई बहिन परम आनन्द के साथ आगे बढे। दोनो ने गणिवर्य श्री से वास क्षेप स्वरूप आशीर्वाद ग्रहण किया एव खुशी से झूमते श्री मोहनलाल जी ने अपनी तपस्विनी बहिन को माला पहनाकर परम तृप्ति का अहसास किया।

माला परिधान पश्चात् मच से उतरते समय प्रत्येक तपस्वी को श्री उपधान पति अपनी ओर से स्मृति रूप रजतमय सुरम्य दर्शन एव अभिनन्दन पत्र भेंट कर रहे थे, साथ ही श्रीमती शान्तादेवी लोढा सभी तपस्वियो को अक्षता से बधा रही थी। क्रमश नामों की उदघोषणा हो रही थी। शान्ति के साथ तपस्वी आते माला पहनते और लोढाजी की ओर से भेंट स्वीकार कर रहे थे। कुछ ही मिनिटो मे माला का कार्यक्रम व्यवस्थित रूप से सम्पन्न हो गया।

लोगो ने उपधान माला का प्रसग अपने जीवन मे कई बार देखा था परन्तु ऐसी व्यवस्थित एसी सतुलित व्यवस्था तो उन्होने प्रथम बार देखी थी। जनता आश्चर्य चकित थी। कभी वह निर्देशक गणिवर्य श्री को, कभी वह आयोजक लोढाजी को, कभी वह व्यवस्थापक बीकानेर ग्रुप को देखती। उन्हे लगता कार्य की सफलता के लिए योग्यतम टीम नितात आवश्यक है। तपस्वियो को तो 51 दिन के सतत परिचय से व्यवस्था पर विश्वास हो गया था। वे तो मुस्कुरा रहे थे।

कार्यक्रम की परिसमाप्ति पर सघ के कई प्रमुख व्यक्ति गणिवर्य श्री को बधाई दे रहे थे। मद मद मुस्कराते हुए गणिवर्य श्री उन बधाइयो को झेलते जा रहे थे। उनके चेहरे पर आत्मसतुष्टि की रेखाए स्पष्ट रूप से झलक रही थी।

कार्यक्रम समाप्ति की घोषणा की गई क्योंकि घडी का छोटा काटा 11 एव बडा काटा 3 पर पहुच चुका था।

उपधानपति का परिवारजनो द्वारा अभिनन्दन पूज्य गणिवर्य श्री के पाडाल से बाहर पधार जाने के पश्चात रखा गया था।

पूज्य श्री पाट से उतर गये थे। उन्ही के साथ आर्या मण्डल एव अन्य सभी खडे हो चुके थे। सभी लोगो के बीच पूज्य श्री ने कार्यकर्त्ताओ की ओर उन्मुख होकर कहा मालपुरा उपधान व्यवस्थित सम्पन्न होने के पीछे आपका सक्रिय परिश्रम रहा। आप जैसे कर्मठ और निष्ठावान कार्यकर्त्ताओ के परिश्रम का यह सुपरिणाम है। मैं आपकी कार्यजा शक्ति का हार्दिक अनुमोदन और अभिवादन करता हू। कार्यकर्त्ताओ के पास इतना समय नही था कि वे गुरुदेव के अभिवादन और प्रशसा का विस्तृत प्रत्युत्तर देते क्योकि उन्हे तो तुरन्त ही पुन खाने की व्यवस्था का निरीक्षण करना था। मात्र वे प्रसन्नता और तुष्टिभाव से मुस्काये सिर झुकाया और भोजन व्यवस्था देखने चल पडे।

किसी ने इससे भी अधिक व्रतों को अंगीकार किया था।

पूज्य गुरुदेव श्री ने विदायी उद्बोधन मे फरमाया—लगातार 51 दिन आप आराधना के निमित मेरे साथ रहे। मैं अपने आपको गौरवान्वित महसूस करता हूं कि आप जैसे आत्मप्रिय आराधक मुझे मिले जिन्होने मेरे निर्देश को आदेश माना। पूर्ण सक्रिय सहयोग प्रदान किया। अपनी निश्छल भावना से आप सभी ने मेरे हृदय मे एक अमिट छाप तो अंकित की ही है पर मुझे आप सभी मेरे अपने लग रहे है। हैं भी मेरे ही धर्मसघ के सदस्य। परमात्मा महावीर ने श्रवण सघ और श्रावक सघ को एक अटूट कडी से जोड़ा है वह वास्तव मे पूर्णतया सत्य है। आप और हम एक ही रथ के पहिये है। अगर एक पहिया दूसरे पहिये को सहयोग न दे तो अवश्य रथ का सतुलन बिगड जाता है। आज के सदर्भ मे हम दृष्टिपात करे तो लगेगा कि साधु समाज और श्रावक समाज के आपसी संबंधो मे आत्मीयता का भीगापन सूखता जा रहा है। अगर यह आत्मीयता की कडी कमजोर हो गयी तो निश्चित ही हमारी साधना मे बाधा आ जायेगी क्योकि साधु और श्रावक दोनों ही एक-दूसरे के पूरक है।

आपने मुझे पूर्ण सम्मान, पूर्ण स्नेह दिया मैंने भी यथासंभव पूर्ण आत्मीयता प्रदान की परन्तु जहां इतने समय का लगातार अटूट संपर्क हो, वहां आवश्यकतानुसार मुझे कभी कटु शब्द का प्रयोग भी करना पड़ा हो यद्यपि वह कृत्रिम कटुता ही होगी फिर भी किसी के मानस को मेरे द्वारा मेरे अन्य मुनियो द्वारा पीड़ा पहुंची हो तो "मिच्छामि दुक्कड़ं" शब्द पूरे भी नहीं हो पाये। पूज्य गणिवर्य श्री भी अपने प्रिय संघ से बिछुड़ते हुए आतरिक वेदना का अनुभव कर रहे थे। सघ का तो कहना ही क्या ? जिन्होंने स्वयं की कभी चिन्ता नहीं की। मात्र आराधकों की चिन्ता उन्ही की सुविधा .. आंखो मे गीलापन तो सभी ने अनुभव किया और कई तो रो पड़े।

पुनः गणिवर्य श्री की आवाज कानों मे टकरायी—मैं इस आराधना का परिणाम देखना चाहता हूं। मेरा, लोढाजी का एवं आपका यह समस्त परिश्रम तभी सार्थक बनेगा, जब आप यहां से जाने के बाद भी प्रतिपल यह अहसास अपने मानस में रखेगे कि—आपने उपधान किया है। अब आपका खान-पान, आचार-विचार, रहन-सहन, क्रिया-कलाप बदल जाने चाहिए। हर उपक्रम से यह झलकना चाहिए कि आपने उपधान किया है। हर क्रिया, आपका उठने वाला हर कदम अन्य के लिए प्रेरणा स्रोत बने, बस यही मेरी मगल कामना है। आप मन वचन काया की पूर्ण स्वस्थता प्राप्त कर आगे भी इसी प्रकार की आराधना से जुड़े रहे।

51 दिनों की पूर्णाहुति के फलस्वरूप सर्व प्रथम पौषध पारना था। तत्वज्ञ श्री लोढाजी भयवं का उच्चारण अवश्य कर रहे थे पर उनकी आखे गीली थी। मन व्याकुल था। आवाज अस्पष्ट हो रही थी। आज सभी विरति मे जा रहे थे। सयम का प्रतीक चखला मुहपत्ति छूट जाना था। सभी इस भाव से पौषध पार रहे थे कि आजीवन हमे संयमी जीवन की आराधना का सौभाग्य मिले।

सभी तैयार होने पांडाल से बाहर चल दिये। कुछ ही समय बाद उन्हें पुनः मान परिधान हेतु आना ही था, साथ ही श्री लोढाजी का आराधको द्वारा बहुमान भी होना ही था। गणिवर्य श्री के निर्देशानुसार सभी प्रभुपूजन आदि से निवृत्त होकर पुनः रंग बिरंगी पोशाकों में सुसज्ज प्रसन्न वदन और गम्भीर ध्यान से पांडाल में पहुंचने लगे। मन को भव्य और मनमोहक साज-सज्जा पूज्य गणिवर्य श्री एवं व्यवस्थापकों के सम्मिलित परिश्रम की परिणति थी। एक-एक इंच जगह का पूज्य महाराज श्री ने अपने निर्देशन में साथ लेकर नक्शा तैयार करवाया था। कौन कहां बैठेगा ? यह [illegible]

उपधानवाही-महिला वर्ग

□

क्र स	उपधानवाही का नाम	पति/पिता का नाम	स्थान	उपधान
1	श्रीमती पुष्पा सेठिया	श्री कृपाचन्द जी सेठिया	कलकत्ता	प्रथम
2	श्रीमती शान्ता बाई गोलेच्छा	श्री केसरीचन्द जी गोलेच्छा	जयपुर	प्रथम
3	श्रीमती कुसुम बाई डागा	श्री मुनीलाल जी डागा	जयपुर	प्रथम
4	श्रीमती शान्ताबाई लोढा	श्री सौभाग्यमल जी लोढा	टोंक	प्रथम
5	श्रीमती शान्ता बाई मेहता	श्री पारस कुमार जी मेहता	टोंक	प्रथम
6	श्रीमती युगलबाई मेहता	श्री उम्मेदमल जी मेहता	मकराना	प्रथम
7	श्रीमती चन्चल बाई कास्टिया	श्री हरीचन्द जी कास्टिया	जयपुर	प्रथम
8	श्रीमती सन्तोष बाई महमवाल	श्री शिवराम जी महमवाल	जयपुर	प्रथम
9	श्रीमती मदनबाई मेहता	श्री राजेन्द्र कुमार जी मेहता	जयपुर	प्रथम
10	श्रीमती रूपाबाई श्रीश्रीमाल	श्री गोपीचन्द जी श्रीश्रीमाल	जयपुर	प्रथम
11	श्रीमती इन्दरबाई लोढा	श्री सम्पतमल जी लोढा	कोटा	प्रथम
12	श्रीमती रतनबाई गोलेच्छा	श्री रतनचन्द जी गोलेच्छा	जयपुर	प्रथम
13	श्रीमती चन्द्रकला	श्री केवलचन्द जैन	कोटा	प्रथम
14	श्रीमती चन्द्रावती बाई भन्साली	श्री मांगीलाल जी भन्साली	कोटा	प्रथम
15	श्रीमती सुशीलाबाई श्रीश्रीमाल	श्री मूलकचन्द जी श्रीश्रीमाल	कोटा	प्रथम
16	श्रीमती कजोडबाई मेडतवाल	श्री मगनलाल जी मेडतवाल	केकडी	प्रथम
17	श्रीमती भगवानीबाई सिंघवी	श्री तीरथदास जी सिंघवी	जयपुर	प्रथम
18	श्रीमती ताराबाई लोढा	श्री प्रकाशचन्द जी लोढा	कोटा	प्रथम
19	श्रीमती लाडबाई भण्डारी	श्री हुकमचन्दजी भण्डारी	बून्दी	प्रथम
20	श्रीमती भवरबाई चारडिया	श्री गुलाबचन्द जी चारडिया	बून्दी	प्रथम
21	श्रीमती सन्तोषबाई गोलेच्छा	श्री विनयचन्द जी गोलेच्छा	जयपुर	प्रथम
22	श्रीमती माणकबाई लोढा	श्री फतेहमल जी लोढा	जयपुर	प्रथम
23	श्रीमती भवरबाई खाबड	श्री मोतीचन्द जी खाबड	जयपुर	प्रथम

उपधानवाही-पुरुष वर्ग

□

क्र सं	उपधानवाही का नाम	पिता का नाम	स्थान	उपधान
1.	श्री सौभागमल जी लोढ़ा	श्री सम्मीरमल जी	टोंक	प्रथम
2.	श्री चैनरूप जी बोथरा	श्री ईश्वर दास जी	जयपुर	प्रथम
3.	श्री पारस कुमार गोलेच्छा	श्री तिलोक चन्द जी	जयपुर	प्रथम
4.	श्री माणक चन्द जी गोलेच्छा	श्री कालूराम जी गोलेच्छा	जयपुर	प्रथम
5.	श्री विजय कुमार जी लोढ़ा	श्री सम्मीरमल जी लोढ़ा	केकड़ी	प्रथम
6.	श्री सन्तोक चन्द जी डागा	श्री दीपचन्द जी डागा	जयपुर	प्रथम
7.	श्री गणेश दास जी पारख	श्री भंवरलाल जी पारख	टोंक	प्रथम
8.	श्री चतुर्भुज जी बोथरा	श्री कुशालचन्द जी बोथरा	ब्यावर	द्वितीय
9.	श्री दुलीचन्द जी बोहरा	श्री उदयचन्द जी बोहरा	जयपुर	द्वितीय
10.	श्री अनूपचन्द जी कोटड़िया	श्री भभूतमल जी कोटड़िया	राजनन्दगांव	तृतीय
11.	श्री इन्दरचन्द जी भण्डारी	श्री गोरधनलाल जी भण्डारी	जयपुर	तृतीय
12.	श्री मदनलाल जी कोठारी	श्री घासीलाल जी कोठारी	ब्यावर	तृतीय
13.	श्री मोहनलाल जी पारख	श्री इन्द्र चन्द जी पारख	नारायणपुरा	तृतीय
14.	श्री भंवरलाल जी लोढ़ा	श्री मुन्नीलाल जी लोढ़ा	पाली	तृतीय
15.	श्री भंवरलाल जी सिपाणी	श्री देवचन्द जी सिपाणी	बीकानेर	तृतीय

**

क्र स	उपधानवाही का नाम	पति/पिता का नाम	स्थान	उपधान
52	श्रीमती पपी देवी वैद	श्री मगनमल जी वैद	कूचविहार	द्वितीय
53	श्रीमती रतनदेवी कोचर	श्री कान्तिचन्द जी कोचर	बीकानेर	द्वितीय
54	श्रीमती राजदवी महमवाल	श्री शान्तिलाल जी महमवाल	जयपुर	द्वितीय
55	श्रीमती चन्दन मेहता	श्री चैनसिंह जी मेहता	कोटा	द्वितीय
56	श्रीमती चन्द्रकला पालावत	श्री ज्ञानचन्द जी पालावत	जयपुर	द्वितीय
57	श्रीमती चादबाई छाजेड	श्री सूरजमल जी छाजेड	कोटा	द्वितीय
58	श्रीमती मानबाई लोढा	श्री माधोलाल जी लोढा	कोटा	तृतीय
59	श्रीमती सन्तोषबाई महता	श्री बिरदीचन्द जी मेहत्ता	जयपुर	तृतीय
60	श्रीमती अनोपबाई धूपिया	श्री मनोहरसिंह जी धूपिया	कादेडा	तृतीय
61	श्रीमत चौथादेवी गोलेच्छा	श्री केसरीचन्द जी गोलेच्छा	बीकानेर	तृतीय
62	श्रीमती प्रेमकुमारी दासौत	श्री एस के जैन	कलकत्ता	तृतीय
63	श्रीमती राजा देवी वद	श्री आसकरण जी वैद	बीकानेर	तृतीय
64	श्रीमती बजरीदेवी सेठिया	श्री नेमचन्द जी सेठिया	बीकानेर	तृतीय
65	श्रीमती प्रभावतीबाई पारख	श्री हीरालाल जी पारख	जयपुर	तृतीय
66	श्रीमती उमराववाई वाठिया	श्री प्रेमचन्द जी वाठिया	जयपुर	तृतीय
67	श्रीमती ज्ञानकवर भण्डारी	श्री एन सी भण्डारी	जयपुर	तृतीय
68	श्रीमती अमरा देवी ढढा	श्री बुलादीचन्द जी ढढ्ढा	बीकानेर	तृतीय
69	श्रीमती सुन्दरदेवी भुगडी	श्री मगलचन्द जी भुगडी	बीकानेर	तृतीय
70	सुश्री मन्जु बाई भुगडी	श्री ज्ञानचन्द जी भुगडी	बीकानेर	तृतीय
71	श्रीमती लाडबाई मेहता	श्री उम्मेदमल जी मेहता	जयपुर	तृतीय
72	श्रीमती हगम कवर मेहता	श्री उमरावमल जी मेहता	जयपुर	तृतीय
73	श्रीमती मदनबाई पारख	श्री सौभाग्यमल जी पारख	राजनन्द गाव	तृतीय
74	श्रीमती कमलाबाई कोटडिया	श्री अनूपचन्द जी कोटडिया	राजनन्द गाव	तृतीय

□□

क्र सं.	उपधानवाही का नाम	पति/पिता का नाम	स्थान	उपधान
24.	श्रीमती इन्द्रबाई मुणोत	श्री मांगीलाल जी मुणोत	जयपुर	प्रथम
25.	श्रीमती उमाबाई मालू	श्री दीपचन्द जी मालू	कोटा	प्रथम
26.	श्रीमती मोहिनी देवी छाजेड़	श्री शंकरलाल जी छाजेड़	जोधपुर	प्रथम
27.	श्रीमती शान्ता देवी गोलेच्छा	श्री पदमचन्द जी गोलेच्छा	जयपुर	प्रथम
28.	सुश्री बेला छाजेड़	श्री देवराज जी छाजेड़	जयपुर	प्रथम
29.	श्रीमती लाडादेवी	श्री लालचन्द जी श्रीमाल	मालपुरा	प्रथम
30.	सुश्री सुनीता श्रीमाल	श्री भंवरलाल जी श्रीमाल	मालपुरा	प्रथम
31.	श्रीमती शान्ती देवी लोढा	श्री रतनलाल जी लोढ़ा	मालपुरा	प्रथम
32.	श्रीमती मुन्नीदेवी जैन	श्री बाबूलाल जी जैन	जयपुर	प्रथम
33.	सुश्री प्रतिभा जैन	श्री बाबूलाल जी जैन	जयपुर	प्रथम
34.	श्रीमती कमलेश भण्डारी	श्री विमलचन्द जी भण्डारी	जयपुर	प्रथम
35	श्रीमती राजकुमारी सेठिया	श्री भंवरलाल जी सेठिया	बैंगलोर	द्वितीय
36.	श्रीमती विमलाबाई महमवाल	श्री चम्पालाल जी महमवाल	जयपुर	द्वितीय
37.	श्रीमती हीराबाई खारेड़	श्री जयन्तिलाल जी खारेड़	जयपुर	द्वितीय
38.	श्रीमती सूरजबाई भन्साली	श्री मनोहरलाल जी भन्साली	जयपुर	द्वितीय
39.	श्रीमती नगीना देवी गोलेच्छा	श्री त्रिलोक चन्द जी गोलेच्छा	जयपुर	द्वितीय
40.	श्रीमती विमलाबाई झारखूट	श्री रतनचन्द जी झारखूट	जयपुर	द्वितीय
41.	श्रीमती मुन्नीबाई कूकड़ा	श्री गुलाबचन्द जी कूकड़ा	जयपुर	द्वितीय
42	श्रीमती गोपाबाई सुचन्ती	श्री नगालाल जी सुचन्ती	जयपुर	द्वितीय
43.	श्रीमती पुष्पाबाई मेहता		रामगंजमण्डी	द्वितीय
44.	श्रीमती शान्ति बाई मेहता	श्री राजकुमार जी मेहता	रामगंजमण्डी	द्वितीय
45.	श्रीमती भीमाबाई बांठिया	श्री विजयचन्द जी बांठिया	जयपुर	द्वितीय
46.	श्रीमती सुन्दर बाई मेहता	श्री माणकचन्द जी मेहता	जयपुर	द्वितीय
47.	श्रीमती कनक बाई रांगावत	श्री प्रकाशचन्द जी रांगावत	कोटा	द्वितीय
48.	श्रीमती कमलाबाई मंडाविया	श्री माधोलाल जी मंडाविया	कोटा	द्वितीय
49.	श्रीमती [illegible] बाई पुंगलिया	श्री उमरसिंह जी पुंगलिया	नाडेला	द्वितीय
50	श्रीमती [illegible]	श्री [illegible] जी पुंगलिया	नाडेला	द्वितीय
51.	श्रीमती [illegible] बाई [illegible]	श्री [illegible] जी [illegible]	कोटा	द्वितीय

उपधान तपोनुमोदना सहित :

दूरभाष : 207713
209495

किरतूरचन्द विजयचन्द मोगा

155 राधा बाजार स्ट्रीट,

कलकत्ता

उपधान तप की हार्दिक अनुमोदना :
फोन : दुकान : 2377
निवास : 2533
कन्हैयालाल जी हुकमचन्द
क्लॉथ मर्चेन्ट्स
सदर बाजार, बूंदी (राजस्थान)

उपधान तप आराधकों को हार्दिक नमन

श्रीमती फूल कंवर धारीवाल

शास्त्री मार्केट, कोटा (राज०)

दादा गुरुदेव के मालपुरा तीर्थ पर भव्य

उपधान पर महान् तपस्वियों की

उपधान तपस्या का अनुमोदन करते हैं :

फोन : 21234
26007

नरेन्द्र पेपर मार्ट

रंजन एन्टरप्राइजेज

कोटा (राज०)

विनीत :

नरेन्द्र गोला

श्रीमती शीला गोला

श्री महावीराय नमः

जितेन्द्र कोठारी,
अधिशाषी अभियन्ता ।

111/3, बिसलपुर कॉलोनी
देवली (टोंक—राज०) 304804
दूरभाष :—कार्यालय 170
आवास : 160

उपधान तप की भव्य आराधना पर

"जितेन्द्र कोठारी"

"तप से कर्म कटे जीवन के,
तप से है जीवन की शान ।
तप की जग मे महिमा अनुपम,
तप से जीवन का कल्याण ।"

"तपस्वियों का आज हृदय से,
पल-पल सादर अभिनन्दन है ।
"कोठारी जितेन्द्र" कर रहा,
तपस्वियों को वंदन है ।।"

"उपधान तपस्वियों को नमन"

द्वारा

वीरेन्द्रकुमार राजकुमार बाफना

ग्रेन एण्ड कमीशन एजेन्ट

रामगंज मण्डी (कोटा–राज०)

फोन : 68, निवास 223

उपधान तप की हार्दिक अनुमोदना :

सुन्दरलाल सिंघवी

डा० राजेन्द्रसिंह सिंघवी

डा० जितेन्द्र कुमार सिंघवी

कोटा (राजस्थान)

फोन : 27070

With Best Wishes :-
ARVIND SILK MILLS
OM BAUG
A K ROAD, SURAT
Phone 41772